गौतम से तासकी तक

(दस जीवन कथाएँ)

हरपाल सिंह पन्नू

अनुवादक

दीपशिखा

सम्पादक

अरविन्द ऋतुराज

भूमिका

ज़िन्दगी और चिन्तन के सफ़र में से गुजरते हुए हमें अनेक लोग मिल जाते हैं। उनमें से ज्यादातर तो याद ही नहीं रहते और अनेकों को याद रखने की जरूरत भी नहीं होती। ऐसे सफ़र में पन्नू समय और स्थान से पार विचरण करते हुए समय की धूल के नीचे धुंधले हो रहे उलझनों भरे आधुनिक जीवन में गुम हो रहे हीरे-मोतियों को ढूंढ कर हमारे सामने पेश करता है। कई बार उन्हें नयी दृष्टि और नवीन दृष्टिकोण से बहुत प्रिय और मूल्यवान बनाकर हमारे मन-बुद्धि से भी आगे हमारे दिल की गहराई तक पहुँचा देता है जो कोमल हृदय लोगों की तो काया-कल्प करने में सक्षम होते हैं।

इस संग्रह का प्रथम लेख है गौतम बुद्ध। उस बुद्ध के विषय में है जिसका नाम अनेक बार सुना हुआ है, जिसकी संक्षिप्त जानकारी हमें है परन्तु पन्नू द्वारा वर्णित बुद्ध हमारे मन में से होता हुआ हमारे हृदय में उतर जाता है और हम मन ही मन उस बुद्ध के साथ यात्रा करते, उस बुद्ध के महावाक्यों को सुनते समझते हुए उन्हें अपने भीतर कहीं संभालने में समर्थ हो जाते हैं। यह उसके वर्णन की क्षमता है कि गूढ़ ज्ञान की बातें भी वह अंधेरे में उड़ते जुगनुओं की तरह हमारे आस-पास बिखेर कर मनमोहक बना देता है।

राजा मिलिन्द और नागसेन के प्रश्नोत्तर साधारण दिखाई देते हुए भी बहुत मूल्यवान बातों का बोध करवाते हैं, वह भी रोचक भाषा में और मनभावन अंदाज में।

गुरू नानक जी के बारे में हम लोग बचपन से ही सुनते आए हैं और कभी उसे हाथ से पर्वत रोकने वाले, कभी मरदाना को भेड़ बनाने वाली जादूगर बंगाली स्त्रियों को सबक सिखाने वाले, कभी कौडे राक्षस को सही मार्ग दिखाने वाले और कभी मक्के को घुमाने वाले महापुरुष के रूप में जानते हैं। श्रद्धापूर्वक लिखी ये बातें एक विशेष आयु तक ही लुभाती हैं परन्तु पन्नू ने राय बुलार के माध्यम से बाबा नानक जी के जिस रूप का चित्रण किया है, वह उस पैगम्बर का रूप है जो बुद्धि, तर्क, दार्शनिकता, ज्ञान-ध्यान को जीवन में समाहित कर चलता है। बाबा की यात्राओं को लेकर जो वृत्तान्त पन्नू ने इस व्याख्या में सम्बद्ध किया है, वह गुरू नानक बाबा को हमारे लिए अत्यधिक रोचक और प्रिय बना देता है। यह पन्नू की वृत्तान्तक विधियों का चमत्कार है।

बाबा नानक के साथ मरदाना भी हमारी याद में आ खड़ा होता है, रबाब बजाता। परन्तु पन्नू ने उसे बाबा नानक का मित्र, सखा, बन्धु सब कुछ दिखाकर

पहचान करवाई है कि इस मित्रता में न आयु, न जाति, न अमीरी-गरीबी, न ही अधिक ज्ञान-ध्यान कुछ भी बाधा नहीं बनता। मरदाना भी बाबा की रूहानियत में रूह तक भीग कर उसके साथ चलता रहा और अंत में वही मांगा, "मैं मर कर भी तुझसे न बिछड़ुँ," और जब हमने गुरबाणी को गुरू मान लिया तो मरदाना कीर्तन बनकर उनके साथ साथ चल रहा है।

पन्नू, बंदा सिंह बहादुर वाले लेख को प्रो. पूर्ण सिंह की पंक्तियों पर समाप्त करता है कि, "योद्धा को जल्दी जल्दी क्रोध नहीं आता। उसे क्रोध आने में कई वर्ष लग जाते हैं। पंचम पातशाह, नवम पातशाह और साहिबज़ादों सहित हज़ारों मासूमों के वध ने बंदा सिंघ को क्रोधित कर दिया। ऐसे जरनैल जब क्रोधित होते हैं तब उनका क्रोध शांत होने में सदियाँ बीत जाती हैं।" यह सिद्ध करता है कि पन्नू भली-भांति जानता है कि उसने अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए कौन सी बात, किस विद्वान् की, कहाँ से लेनी है। इसलिए वह इतिहास, मिथिहास, धर्म, दर्शन, साहित्य और लोक साहित्य के विचारों और भाषा का सहज ही प्रयोग कर लेता है और वह बात हमें पन्नू की ही प्रतीत होने लगती है।

पन्नू का यह लेख संग्रह गद्य का एक पृथक और विशिष्ट हस्ताक्षर है।

दलीप कौर टिवाणा
बी-13, पंजाबी विश्वविद्यालय

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक के लेख उन महान लोगों के बारे में समय समय पर लिखे गए जिन्होंने मुझे कभी प्रभावित किया। इनमें से कुछ लेख पत्रिकाओं में छपे तो पाठकों से जानकारी मिली कि यह पठनीय सामग्री है। इससे मेरा हौसला बढ़ा।

पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला का मैं वह भाग्यशाली शिक्षक हूँ जिसे अपनी विद्वता और शोधकार्यों के बारे में गलतफहमी नहीं हुई। मेरे पास वह प्रतिभा नहीं है जो मेरे लेखन को दीर्घ समय तक जीवित रख सके। यह सम्भावना अवश्य है कि जिन पूर्वजों के बारे में यह सामग्री तैयार की गयी, उनमें स्वयं ऐसी शक्ति विद्यमान है कि उन्होंने जो कमाई की, वह देर तक, शायद हमेशा के लिए पाठकों के हृदयों में रहेगी। मुझे लगता है पाठक और श्रोता मैं ठीक हूँ। घटनाओं का चयन सही हो जाता है।

मैं नहीं समझता कि इन लेखों में दर्ज सामग्री खोज विवरण के रूप में उपयोगी है क्योंकि तथ्यमूलक शोध करने की बजाय मेरा निशाना भावनामूलक गद्य लेखन था। इसमें मैं कितना सफल रहा हूँ, पाठक बतायेंगे और गलतियों का पता चलेगा तो मैं अगली बार संशोधन भी करूँगा। इसी शैली में लिखी जा रही दूसरी पुस्तक को भी दिशा मिलेगी।

राय बुलार खान साहिब के बारे में और अधिक जानकारी की मांग पाठक वर्ग ने की, विशेषतः जिस मुकद्दमे में भट्टियों ने केस वापिस ले लिया उस बारे में। जितनी सूचना प्राप्त हुई वह दर्ज कर दी गयी। इसी प्रकार मैं मिलिन्द प्रश्न का पंजाबी अनुवाद करने लगा तो नागसेन के बारे में और सामग्री प्राप्त हो गयी। वह दर्ज कर दी गयी।

बाबा फतह सिंघ के जानशीन ये पुस्तक पढ़कर स्वयं ही मेरे पास पहुँच गये। जिस योद्धा ने वज़ीर खान की गर्दन उड़ायी थी उसका परिवार देख सकूंगा, यह चमत्कार इस पुस्तक ने किया।

हरपाल सिंह पन्नू
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।

सम्पादकीय एवं अनुवादकीय

पात्रों के अंग-संग सफर करना किसी भी लेखक के लिए आसान नहीं होता। यह काम तब और कठिन हो जाता है जब पात्र ऐतिहासिक हों जिनके बारे में काफी कहानियाँ लिखी जा चुकी हों।

प्रो. हरपाल सिंह पन्नू के लेखों के पात्र अपने-अपने युग के महान ऐतिहासिक पुरुष और विचारक हैं जिन्होंने समाज को नयी दिशा दी है। यह लेखक की सरल भाषा और मनभावन शैली का कमाल है कि लेख पढ़ते वक्त पाठक अपने को सहज रूप से पात्र के साथ पाते हैं और पात्रों के जीवन की तमाम घटनाएँ स्वाभाविक रूप से उनके ज़िहन में उतर जाती हैं। उसे अनुभव होता है कि वह तत्कालीन समाज में पहुँच गया है और प्रत्यक्ष सब कुछ देख रहा है। पात्र का सुख-दुःख उसे स्वयं का सुख-दुःख प्रतीत होता है। इस तरह सहज रूप से प्रस्तुत घटनाएँ हमारे जीवन को भी सही दिशा देने में कामयाब हो जाती हैं।

लेखक ने पात्रों का एक सुन्दर बाग बनाया है। हर पात्र हमारे सामने एक आदर्श, लक्ष्य और उद्देश्य प्रस्तुत करता है। इनके लेखन का मुख्य उद्देश्य इन महापुरुषों से वर्तमान समाज या जन सामान्य को परिचित करवाना ही नहीं बल्कि ये भी समझाना भी है कि जीवन बहुत जटिल है। आज जो हमारे आदर्श हैं उनका अतीत कैसा रहा है। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक कथन और व्यवहार हमारे लिए अनुकरणीय है।

हमारा मानना है कि जब कोई अनुवादक किसी भी पुस्तक का अनुवाद करता है केवल लिपयान्तरण नहीं करता अपितु लेखक द्वारा उल्लिखत पात्रों के माध्यम से पुस्तक में वर्णित विचारों, भावनाओं, अनुभवों को भी स्वयं में समाहित करता जाता है। ये सभी तत्त्व मिलकर उसके व्यक्तित्व को निखारने एवं उसके विकास में सहायक होते हैं।

मूल रूप से पंजाबी में लिखे गये ये लेख पाठक आसानी से पढ़ सकते हैं। बातचीत की शैली ऐसी है जैसे हम अपने घर-परिवार में आपस में बात करते हों। लेखन में न तो कहीं कठिन शब्द हैं और न संयुक्त वाक्य। यही मधुरता पूरे लेखन में झलकती है।

पंजाबी की मिठास को हिन्दी में बरकरार रखना भी कम चुनौतीपूर्ण काम नहीं है। काफी मंथन करने के बाद शब्दों का चयन किया गया और वाक्यों की रचना की गई है। मूल प्रवाह को अनुवाद में भी बनाए रखने की भरपूर कोशिश की गई

है ताकि हिन्दी भाषी लोग भी पात्रों के साथ वैसा ही सफर कर सकें जैसा पंजाबी पाठक कर रहे हैं।

हमें पूरी उम्मीद है कि यह पुस्तक पाठकों को पसंद आएगी। यदि इसमें कुछ कमियाँ नज़र आएं तो कृप्या अपने सुझाव harpalsinghpannu@gmail.com पर दें।

संपादक
डॉ. अरविन्द ऋतुराज
असिस्टैंट प्रोफैसर
गुरू गोबिन्द सिंह
धर्म अध्ययन विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

अनुवादक
डॉ. दीपशिखा
प्रोजक्ट फेलो
गुरू गोबिन्द सिंह
धर्म अध्ययन विभाग,
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

गौतम बुद्ध

ढाई हजार वर्ष पहले जब विश्व भ्रम और मिथ्या संस्कारों में फंसा हुआ था, महात्मा बुद्ध जैसे वैज्ञानिक सोच वाले व्यक्ति का जन्म एक चमत्कार था। उसने शक्तिशाली बौद्धिकता की रोशनी से प्रत्येक पुराने अंधविश्वास को तोड़ा। वेदों की प्रभुसत्ता को चुनौती देना कोई खेल नहीं था परन्तु उसने ऐसा कर दिखाया। उसने प्रत्येक परम्परा पर प्रहार किया- संस्कृत भाषा की दिव्यता पर, वर्णाश्रम व्यवस्था पर, ब्राह्मणों द्वारा प्रचलित कर्मकाण्डों पर, पुजारी वर्ग द्वारा की जाने वाली लूट पर उसने तीखे हमले किये। बौद्ध परम्परा को भी जैन-परम्परा के समान आर्य परम्परा से स्वतन्त्र अवैदिक श्रमण परम्परा के कारण जाना जाता है। बुद्ध के उपदेश इतने शक्तिशाली थे कि उनको सिंहनाद, यानि शेर की गर्जन कहा जाता है। सम्राट अशोक के लोहे के स्तम्भ पर बने चारों दिशाओं में दहाड़ते चार शेर, बुद्ध की गर्जना के प्रतीक हैं। यह निशान आधुनिक भारत का राष्ट्रीय प्रतीक है जो नोटों और सिक्कों आदि सहित समस्त सरकारी कागज़-पत्रों पर छपा दिखाई देता है। बुद्ध का धर्म-चक्र राष्ट्रीय ध्वज में सुशोभित है।

गौतम का जन्म पूर्व ईसा 560 में हिमालय पर्वत के नज़दीक की वादियों में कपिलवस्तु की रियासत के अधीन लुंबिनी नाम के जंगल में हुआ था। अब यह नेपाल में है। पिता महाराज शुद्धोधन थे और माता का नाम महामाया था। शुद्धोधन साक्यवंश के गणतन्त्र का राजा था। साक्यवंश क्षत्रियों में सम्माननीय खानदान था। महारानी महामाया का पिता कोली रियासत का राजा था और देवदाह उसकी राजधानी थी। परम्परा अनुसार पहले बच्चे के जन्म के वक्त स्त्रियाँ मायके जाया करती थीं। बुद्ध के जन्म से पहले महामाया ने शुद्धोधन से विनती की कि उसे माता-पिता के पास छोड़ आएँ। राजा सहमत हो गया। रथ तैयार कर दिए गए। सैनिकों की एक टुकड़ी और दासियों के साथ काफिला देवदाह नगर की तरफ चल पड़ा।

शायद कुदरत को यही मंजूर था कि जिस बालक को शाही महलों की जगह वनवासी जीवन को चुनना था, उसका जन्म भी जंगल में हो। यात्रा के दौरान महारानी रथ में बैठी थक गई। उसने पैदल चलने की इच्छा जाहिर की। वह पैदल चलने लगी। रथ और दासियां उसके साथ चल रही थीं। उसने झाड़ियों पर सुन्दर फूलों की शाखा को लहराते देखा। महामाया ने बाँह को ऊँचा उठाकर फूलों से भरी शाखा को तोड़ना चाहा तो तेज दर्द आरम्भ हो गया। यहीं जंगल में बच्चे का जन्म हुआ। महारानी

बच्चे सहित वापस कपिलवस्तु आ गई। जन्म के सात दिन बाद राजकुमार का नाम सिद्धार्थ रखा गया। इसी समय माँ परलोक सिधार गई। सिद्धार्थ के पालन-पोषण की जिम्मेदारी उसकी मौसी प्रजापति गौतमी को सौंपी गई जिससे बाद में विवाह कर शुद्धोधन ने रानी बनाया। सिद्धार्थ के नामकरण की रस्म भी दिलचस्प है। अपने समय का प्रसिद्ध ज्योतिष, आसित कपिलवस्तु आया। महल में राजा शुद्धोधन ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया परन्तु बच्चे का चेहरा देखते ही साधु की आँखों में आँसू आ गए। राजा उदास हो गया कि शायद कोई अशुभ घटना होगी, परन्तु साधु ने कहा कि महाराज, ये खुशी के आँसू हैं। मानवता का रखवाला और सृष्टि का सच्चा हमदर्द पैदा हुआ है। दुःख केवल इस बात का है कि मैं और आप वह दिन देखने के लिए जीवित नहीं होंगे जब सारे संसार में इस राजकुमार की कीर्ति फैलेगी। इसी साधु आसित ने बच्चे का नाम सिद्धार्थ रखा। सिद्धार्थ का अर्थ है वह व्यक्ति जिसने अपनी मंजिल तय कर ली हो।

मौसी यह सोच सोच कर बच्चे की तरफ अधिक ध्यान देती कि कहीं यह उस पर दोष न लगे कि बिना माँ के बच्चे को अनदेखा किया जा रहा है। पिता बच्चे की शिक्षा और सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखता। परन्तु सिद्धार्थ एकान्त पसंद स्वभाव का था। अकेला ही बागों में टहलता और विचारों में खोया रहता। "क्या इसको माँ की याद आती है?" पिता सोचता, "परन्तु माँ का तो इसे थोड़ा भी ध्यान नहीं हो सकता क्योंकि माँ तो उस समय परलोक सिधार गई थी जब यह सात दिनों का था। सभी यही बताते हैं कि प्रजापति उसकी माँ है। फिर किस वस्तु की तलाश है सिद्धार्थ को?" पिता सोचता परन्तु कहीं से कोई उत्तर नहीं मिलता।

एक दिन बाग में टहलते हुए गौतम ने आकाश की ओर देखा कि उड़ते हंसों की एक पंक्ति में से एक हंस तड़पता हुआ धरती पर आ गिरा। सिद्धार्थ ने घायल हंस को गोद में उठा लिया। सिद्धार्थ के चचेरे भाई देवदत्त ने हंसों की उड़ रही पंक्ति पर तीर चलाया था जिससे यह हंस घायल हो गिर गया था। देवदत्त आया और कहने लगा- यह हंस मेरा है सिद्धार्थ। मुझे दो। यह मेरे तीर से घायल होकर गिरा है। सिद्धार्थ ने कहा- "हंस मेरा है। इसे मैं रखूँगा।" शिकायत लेकर देवदत्त महाराज शुद्धोधन के पास गया। शुद्धोधन ने पूछा- "सिद्धार्थ, देवदत्त ने बाण चलाकर इस हंस का शिकार किया है इसलिए यह हंस उसका है। आप इस पर अपना हक कैसे जता रहे हो?" सिद्धार्थ ने कहा- "किसी जीव को मारने वाले से अधिक अधिकार बचाने वाला का होता है। मैंने हंस को बचाया, इस कारण यह मेरा है।" पिता बहुत प्रसन्न हुए और हंस सिद्धार्थ को मिला। सिद्धार्थ ने उस घायल हंस का उपचार किया

और उसे प्यार देते हुए आकाश में उड़ा दिया। इस घटना ने महल में हलचल पैदा कर दी कि बालक की रुचियाँ साधारण नहीं हैं। उसकी न्याय शक्ति विलक्षण है।

पिता शुद्धोधन ने सिद्धार्थ के टहलने-घूमने के लिए तीन तालाब बनाए। एक में केवल नीले कमल खिले, इसका नाम नील-कमल रखा गया। दूसरे में लाल कमल खिले, इसका नाम लाल-कमल रखा गया और तीसरे में केवल सफेद कमल खिले, उसका नाम सफेद-कमल रखा गया। राजकुमार के निवास के लिए तीन महल बनाए गए। एक सर्दी के लिए जो कि अंदर से गर्म था। एक गर्मी के लिए जो अन्दर से ठण्डा था। एक बरसात के लिए क्योंकि वर्षा के दिनों मे विषैले जीव, सांप, बिच्छू, मच्छर, मक्खियाँ आदि निकलते थे। इस कारण चार महीने तक इस महल के भीतर ही नृत्य-गायन, गीत-संगीत होता रहता था। उसका पालन-पोषण पूरे शाही ठाठ-बाठ के साथ किया गया। किसी उदास, रोगी या दुःखी व्यक्ति को उसके आसपास जाने न दिया जाता।

यद्यपि राजकुमार के मनोरंजन के लिए हर सुविधा हमेशा मौजूद रहती पर बालक खुश नहीं था। एक दिन सिद्धार्थ ने देखा कि बाग में एक छिपकली एक कीड़े को निगल रही थी तो साँप ने छिपकली को दबोच लिया। अभी छिपकली साँप के मुँह में ही थी कि उड़ती हुई चील नीचे आई और साँप को लेकर उड़ गई। 'क्या यही ज़िन्दगी है' सिद्धार्थ सोचने लगा, 'हिंसा और मौत- क्या यही सबकुछ है बस? इससे बचाव नहीं हो सकता? राजकुमार यह सोच ही रहा था कि पिता ने पूछा, 'क्या सोच रहे हो सिद्धार्थ? क्या करने का इरादा है?' बालक ने उत्तर दिया- 'पिता जी नगर देखने की इच्छा है। महल के बाहर लोगों के बीच जाना चाहता हूँ।

शाहज़ादे को बाहर जाने की आज्ञा नहीं थी परन्तु पिता ने सेवकों को बुलाया और कहा- 'होशियार रहना। कोमल दिल राजकुमार शहर की तरफ जा रहा है। कोई ऐसी चीज़ न दिखाई दे जिसे देखने से राजकुमार उदास हो। भावुक बालक है। ध्यान रखना।'

चन्ना सिद्धार्थ का सारथी था। रास्ते में राजकुमार ने एक बूढ़े व्यक्ति को देखा जिसकी आँखें कमज़ोरी के कारण अन्दर की ओर धंस गई थीं। सिद्धार्थ ने पूछा चन्ने, यह व्यक्ति इस तरह क्यों है? सारथी ने बताया यह बूढ़ा व्यक्ति है और बुढ़ापा सभी को इस तरह जर्जर कर देता है। आप हम सभी एक दिन बूढ़े हो जायेंगे। सिद्धार्थ यह सुनकर उदास हो गया। आगे गए तो कुछ व्यक्ति किसी मृतक की अर्थी ले जा रहे थे। सिद्धार्थ ने इस विषय में पूछा तो चन्ने ने बताया- प्रत्येक व्यक्ति को एक दिन मरना है। मृत्यु से कोई नहीं बच सका; यह सुनकर सिद्धार्थ को दुःख हुआ, 'क्या यही जीवन है?' इतना ही है?' आगे गए तो सिद्धार्थ ने एक साधु को

देखा। सारथी को जब उसके बारे में पूछा तो उसने बताया कि यह तपस्वी है और दुःखों से छुटकारा पाना चाहता है। सिद्धार्थ ने चन्ने को वापस चलने को कहा। सिद्धार्थ ने देखा कि साधु के चेहरे पर निर्मलता थी, शान्ति थी। इस शान्तमयी चेहरे को राजकुमार भुला न सका। यही उसका आदर्श बन गया था। वह वापस महलों में आ गया।

युवा होने तक सिद्धार्थ शस्त्र और शास्त्र दोनों प्रकार की विद्या में निपुण हो गया। उसने सिद्ध कर दिखाया कि यदि उसका स्वभाव गंभीर है तो इसका मतलब यह नहीं कि वह शारीरिक करतबों में पीछे रह गया है। घुड़सवारी, भालेबाज़ी, तीर अंदाजी, तलवारबाज़ी आदि मुकाबलों में वह बढ़-चढ़ कर भाग लेता परन्तु खामोश रहता। एकान्त में रहना पसंद करता। माता-पिता ने वही सोचा जो ऐसे बच्चों के माता-पिता सोचा करते हैं कि सिद्धार्थ का विवाह कर दिया जाए। दुनियादारी में पड़कर उसका मन लग जाएगा। पिता ने गौतम से विवाह के विषय में बात की तो उसने कहा, विवाह करवाने में कोई हर्ज नहीं परन्तु जिसे मैं जानता नहीं उसके साथ विवाह करने का निर्णय कैसे करूँ? उन दिनों यह बात कुछ मुश्किल तो प्रतीत होती थी परन्तु पिता ने इसका उपाय सोच लिया। अनेकों पड़ोसी शाही परिवारों में संदेश भेजे गए कि कपिलवस्तु में शस्त्र-शास्त्रों के मुकाबले होंगे। इनमें भाग लेने के लिए संदेश भेजे गए। जिन राजकुमारियों और राजकुमारों को भाग न लेना हो वे भी दर्शक के रूप में हाजिर रहें। भिन्न- भिन्न खेलों और शिकार का आयोजन किया गया। एक सरल कोमल स्वभाव की राजकुमारी सबसे अलग थी। वह सभी का ध्यान अपनी तरफ खींच रही थी। उसकी शख्सीयत में सहज भाव थे। यह यशोधरा थी। आयोजन का समापन हुआ और अंतिम दिन आ गया। सभी मेहमानों को उपहार दिए गए। बहुमूल्य सौगातें, सोने की, चांदी की, हीरे-जवाहरात जड़ित सौगातें। यशोधरा पीछे खड़ी रही। उसमें कोई जल्दबाज़ी नहीं थी। उसको भेंट में देने के लिए कुछ नहीं बचा। सभी सौगातें खत्म हो गई थीं। सभी उदास हो गए कि यह अच्छा शगुन नहीं हुआ। यशोधरा को गौतम ने अपनी पोशाक पर सुसज्जित चम्पा का फूल उतार कर सत्कार रूप में भेंट किया। यह समझा गया कि यशोधरा को यह भेंट पसंद नहीं आई। परन्तु यशोधरा प्रसन्न थी। उसने कहा- 'इस फूल में कई शताब्दियों तक रहने वाली अमर महक है। मेरे लिए यही काफी है। महाराज शुद्धोधन ने सिद्धार्थ से पूछा, "युवराज, आपका विवाह करना है, यहाँ मौजूद राजकुमारियों में से कोई पसंद आई? यदि नहीं तो हम फिर से कोशिश करेंगे।"

सिद्धार्थ ने कहा, महाराज यशोधरा गम्भीर स्वभाव की सुन्दर राजकुमारी मुझे पसंद है। शुद्धोधन ने यशोधरा के पिता के पास विवाह का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने

सहर्ष स्वीकार कर लिया। यशोधरा ने भी प्रस्ताव को स्वीकार किया। सभी मेहमान और महलवासी इस बात से हैरान थे कि कितनी सादगी से एक बहुत बड़ा फैसला सहज ही सम्पूर्ण हो गया। पूरी ज़िन्दगी गौतम ने बड़े बड़े निर्णय सहज स्वभाव से ही किए।

यशोधरा आदर्श पत्नी सिद्ध हुई। युवराज सिद्धार्थ प्यारा इंसान था। वह तेज बुद्धि और खेलों में काफी उत्साही नौजवान था। एक बार ऐसा मुकाबला हुआ कि पेड़ों की पंक्ति में से घुड़सवार को तलवार से एक पेड़ काट कर आगे जाना था। सिद्धार्थ भी इसमें शामिल हुआ। उसने घोड़े को सरपट दौड़ाया और तलवार से पेड़ के तने पर वार किया। तलवार ऐसे निकल गई जैसे घी में से केश निकल जाता है। कुछ समय तक पेड़ वैसे ही खड़ा रहा। सभी ने समझा कि पेड़ काटा नहीं जा सका। कुछ देर बाद हवा का झोंका आया तो कटा हुआ पेड़ गिर गया। जै जैकार हुई तो सिद्धार्थ ने कहा- ऐसा ही हुआ करेगा। शक्तिशाली पेड़ काटे जाया करेंगे, मेरी तलवार सहज ही उनमें से निकल जाया करेगी। पेड़ों और दर्शकों को देर तक पता नहीं लगेगा कि वे काटे जा चुके हैं। ऐसा ही हुआ करेगा।

दिन बीतते गए। समय अपनी चाल से चलता रहा। यशोधरा ने पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम राहुल रखा गया। सिद्धार्थ दूर कहीं किसी अलग वस्तु की तलाश में था। हर वस्तु, हर व्यक्ति के निकट रहते हुए भी वह उनसे दूर था। वह अपने आप में मस्त रहता, अपनी धुन में मग्न।

एक रात सिद्धार्थ ने संन्यास लेने का निर्णय किया। उसे नींद नहीं आई। वह कभी यशोधरा के चेहरे की तरफ देखता कभी राहुल की तरफ। एक कशमकश उसके अंदर देर तक चलती रही। उसे समझ नहीं आ रहा था कि महल के सुख, पत्नी और पुत्र को छोड़ कर वह क्यों जा रहा है- जाना चाहिए कि नहीं, परन्तु उसने जाने का फैसला कर लिया। चुपचाप उसने आधी रात को सोए हुए छोटे राहुल का माथा चूमा- धीरे से यशोधरा के पैर चूमे- फिर वह तेज़ी से बाहर निकल गया। उसने सारथी को जगाया और कहा कंथक घोड़ा ले आओ। कहीं जाना है। एक घोड़े पर गौतम और दूसरे पर चन्ना सवार होकर जंगल की तरफ चल पड़े। कपिलवस्तु इस आधी रात को गहरी नींद में डूबा हुआ था। जब जंगल के पास पहुँचे तो सूर्योदय होने वाला था। गौतम ने कीमती आभूषण उतार कर चन्ने को सौगात के रूप में देकर कहा- घोड़े वापस ले जाओ और पिता महाराज शुद्धोधन से कहना कि गौतम भिखारी हो गया है। पिता को बताना कि ठीक है सब, गौतम ठीक है परन्तु वह वनवासी हो गया है।

चन्ना रोने लगा। उसने सिद्धार्थ के चरण पकड़े और कहने लगा- यह आप क्या कर रहे हो युवराज? मैं महल में यह समाचार कैसे दूँगा? चलो वापस चलें युवराज गौतम। मैं आपका अंगरक्षक भी हूँ राजकुमार। आपको महल तक पहुँचाना मेरा कर्तव्य है, फिर आपके मन में जो आए करना। युवराज ने कहा- व्यथित मत हो चन्ने। तुम मेरे मित्र हो।' मेरा संदेश महल तक पहुँचाने के लिए मैंने तुमको चुना है। तुम आम व्यक्ति नहीं हो। जाओ। मेरा फैसला अटल है। गौतम ने चन्ने को विदा किया और तलवार से अपने रेशम जैसे केशों को काट कर भिक्षु हो गया।

इस रात जो कुछ भी घटित हुआ, बौद्ध साहित्य में इसे महा-त्याग (The Great Renunciation) कहा जाता है। एक नया सूर्य संसार के धर्मों में उदित होने के लिए अंगड़ाई ले रहा था।

अपने कपड़े उतार कर किसी अजनबी को दे दिए और केवल एक कपड़ा कमर के आस-पास लपेटने के लिए रख लिया। जंगल में अकेला चलता रहा। दूर-दूर तक गया। जहाँ कहीं कुछ मिलता, मांग कर खा लेता और नींद आने पर पेड़ के नीचे सो जाता। चलते-चलते कई दिनों के बाद वह मगध की राजधानी राजगृह (राजगीर) के समीप पहुँच गया। इस नगर को राजा बिम्बिसार ने बसाया था। नगर के बाहर उसने आसन लगाया और तपस्या करनी प्रारम्भ कर दी। राजगृह में समाचार पहुँच गया कि एक सुन्दर राजकुमार भिक्षु होकर तपस्या कर रहा है जिसे देखने के लिए लोग आने लगे। यह खबर राजा बिंबीसार तक भी पहुँची। वह भी दर्शन करने गया और गौतम को देखकर कहने लगा, आपके हाथ तो किसी बड़ी हुकूमत की बागडोर संभालने के लिए बने हुए हैं, हे संन्यासी, भिक्षुओं का यह पात्र आपके हाथ में शोभा नहीं देता। सिद्धार्थ ने कहा- सल्तनत की अपेक्षा निर्मलता और पवित्रता बड़ी शक्तियाँ हैं। यदि महलों में सुख होता तो राजा-महाराजा साधुओं के पास जाकर फरियाद न करते। मेरी आपसे प्रार्थना है कि मुझ पर तरस न खाओ। उन पर तरस करो जिन्हें जिंदगी ने कुचल दिया है। बादशाह ने सत्कार सहित सिर झुकाया और कहा- "मेरी कामना है कि आप जिस चीज़ की तलाश में निकले हो उसे प्राप्त करो। जब आपको वह मिल जाए, मेरा निवेदन है कि फिर यहाँ आना। मैं आपका शिष्य बनना चाहूँगा।" यह घटना ईसा पूर्व 522 की है जब बिंबीसार गौतम से मिला।

वह जंगलों में घूमता फिरता रहा। अनेक साधुओं से मिला अच्छी बातों को सीखा परन्तु उसे तसल्ली नहीं हुई। उसने उपवास करना शुरू कर दिया। पाँच और साधुओं से मिलकर कठिन तप करना शुरू किया। इतना कठिन तप था कि कई बार तो वह बेहोश हो जाता। एक बार समाधि लगाए इतना समय हो गया कि साथ रहने वाले साधुओं ने उसे मृत मान लिया था। छह वर्ष तक उसने कठिन तपस्या की। नदी

के किनारे पर वृक्ष के नीचे एक पत्थर पर उसने अपना आसन बना लिया और चिन्तन करने लगा। सुबह होते ही वह आबादी वाले इलाके में चला जाता। किसी घर के दरवाजे आगे अपनी हथेली फैला कर भिक्षा मांगता। जो भी मिलता- बासी रोटी या दाने, खा कर नदी का जल पी लेता और अगली सुबह तक तपस्या करता। यदि एक घर से भिक्षा नहीं मिलती तो वह बिना कुछ खाए अगले आठ पहर तक तपस्या करता। ऐसे करते करते कई साल बीत गए और वह अस्थियों का पिंजर मात्र रह गया।

एक दिन गौतम ने अपने शिष्यों को उन दिनों को याद करते हुए कहा था, "मैं बहुत कम भोजन पर दिन बिता रहा था। ऐसा करते हुए सप्ताह, महीने और वर्ष बीतते गए। जब मैं महल में से निकला था तो इस तरह का था जैसे मेहनती किसानों ने उपजाऊ भूमि में खाद डालकर गन्ना पैदा किया हो। ऐसा रसदार गन्ना सेहतमंद होने के कारण अच्छा लगता है। उस गन्ने को जेठ महीने की हवाओं में अनेक दिनों के लिए धूप में रख दो या फैंक दो तो उसकी पोरियां फट जाती हैं, वह टेढा हो जाता है, कहीं से हरा, कहीं से काला, कहीं से पीला हो जाता है। मेरी टांगें और बाँहें भी सूखे गन्ने के समान हो गई थीं। एक दिन मेरे पास से कुछ यात्री निकले। एक व्यक्ति कहने लगा, "अरे! देखो कितना पीला रंग है संन्यासी का।" दिन बीतते गए। यात्रियों का एक और समूह उधर से गुजरा तो एक औरत मुझे देखकर भयभीत हो गई और अपने साथ के लोगों से कहने लगी- देखो देखो कितना काला रंग है इस तपस्वी का। मेरे रंग के बारे में मतभेद थे। आप अपनी पीठ पर हाथ फेरते हो तो आपको रीढ़ की हड्डी का अनुभव होता है। मैं पेट पर हाथ फेरता था तो रीढ़ की हड्डी महसूस होती था। जिसे मैं पेट कहता हूँ वहाँ तो गीले रेत पर ऊँट के पैर का केवल एक निशान बचा था - पेट कहाँ रह गया था। एक दिन मैंने बैठे बैठे अपनी बाँहों को देखा, लम्बे लम्बे बाल उग आए थे। दायां हाथ जब मैंने अपनी बायीं बाँह पर फेरा तो सारे बाल झड़ कर धरती पर गिर गए। मेरी त्वचा में ताकत नहीं थी कि वह बालों को पकड़ कर रख सके। शरीर निर्बल हो गया था। जिसे मैं शरीर कहता हूँ- शरीर कहाँ था वह? जैसे झोंपड़ी का स्वामी उजड़ जाए और बहुत समय तक वापस न आए तो झोंपड़ी का घास-फूस सब कुछ उड़ जाता है और कुछ टेढे-मेढे डण्डे दिखाई देते हैं। इस शरीर से उजड़ कर इसका स्वामी कहीं चला गया था- टांगें, बाँहें कहाँ थीं? टेढे, वक्र कुछ डण्डे शेष थे।"

एक दिन वह ध्यान मग्न था कि एक जवान औरत आई और सिद्धार्थ के आगे सत्कार सहित एक कटोरा रखा जिसमें वह खीर बनाकर लाई थी। सिद्धार्थ ने थोड़ी सी खीर खाने के लिए हमेशा की तरह अपना बायां हाथ आगे बढ़ाया तो समीप

ही गायकों का एक समूह गुजरा। रास्ते में चलते समय वे जो गीत गा रहे थे वह इस प्रकार था-

अपनी सारंगी की तारों को इतना मत कसो
कि टूट जाएं।
अपनी सारंगी की तारों को इतना ढीला मत छोड़ो
कि संगीत पैदा न हो।

सिद्धार्थ को प्रतीत हुआ- यही तो जीवन का रहस्य है। ऐशो-आराम से सत्य की प्राप्ति नहीं होगी। न ही यह प्राप्ति भूखे रहने से होगी। यहीं से उसके द्वारा चलाए धर्म के मध्य मार्ग के सिद्धान्त का जन्म होता है। यह औरत निकट की बस्ती से आई थी। गौतम ने खीर खाई। स्त्री को आशीष दी और पूछा कैसे आई हो? क्या कोई दुःख तकलीफ है? उसने कहा, 'जी मेरा नाम सुजाता है। घर में सुख शांति है। कोई दुःख तकलीफ नहीं। मेरी गाय का प्रसव हुआ है। गाय के प्रसव से पहले ही मैंने निश्चित कर लिया था कि जब पहली बार इसका दूध घर में रखूँगी तो खीर बनाकर किसी साधु को खिलाऊँगी। आप का आशीर्वाद लेने आई हूँ।' गौतम ने उसको सदा सुखी रहो का आशीर्वाद दिया। उसके जाने के बाद वह उठा, धीरे-धीरे नदी के पास गया। हाथ और मुँह धोए, पानी पिया और वापस अपने चुने हुए वृक्ष की तरफ बढ़ा। इधर-उधर सूखा घास था। उसने अपने कमज़ोर हाथों से घास इकट्ठा किया, एक छोटा सा गद्दा बनाया। इस आसन पर बैठकर उसने फिर से बंदगी शुरू कर दी। अचानक ही उसका अंदर और बाहर प्रकाशित हो उठा। निर्वाण प्राप्त हो गया था। ये उच्चतम अनुभव एक के बाद एक, उसको सतत प्राप्त हुए और वह हर बार उच्च मंजिल को प्राप्त करता। जिस वस्तु की उसे तलाश थी वह मिल गई थी। अब इसके प्रचार की ज़रूरत थी। मन किया कि अपनी प्राप्ति का रहस्य सबसे पहले अपने गुरूओं को बताए जिन्होंने शुरू में उसे शिक्षा दी थी, परन्तु वह सभी संसार से विदा हो चुके थे।

बुद्ध के साथ जो अन्य पांच साथी तप करते थे, जब उन्होंने देखा कि वह खाने-पीने लगा है तो उसको पापी मान छोड़कर चले गए। बुद्ध ने सोचा, उनको इस नए धर्म का उपदेश दिया जाए। पता चला कि वह बनारस के निकट ही सारनाथ में रहते हैं। गौतम उनके पास गया। इन पांच तपस्वियों को उसने पहले बौद्ध-धर्म का उपदेश दिया। पालि ग्रन्थों में लिखित है- "यहाँ उसने धर्म रथ के पहिए को पहली बार घुमाया (धम्म चक्क पब्बतन सुत्त)" चार आर्य सत्य, अष्टांग मार्ग और निर्वाण सम्बन्धी उपदेश दिए।

अनेकों व्यक्ति बौद्ध संघ में शामिल होने लगे। राजा बिम्बिसार सिद्धार्थ का उपासक (शिष्य) बन गया। अनेक अछूत और विद्वान ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म को

स्वीकार कर लिया। उसके बाद भारत में प्रचलित वैदिक कर्मकाण्डों पर तीखा प्रहार हुआ। बुद्ध ने मागधी और पालि लोक भाषाओं में उपदेश दिए। वैदिक संस्कृत केवल ब्राह्मणों की भाषा बनकर रह गई जो जन साधारण की पहुँच से बाहर थी। भारी संख्या में लोग आकर्षित होने लगे। नियम अधिक कठोर नहीं थे। जो व्यक्ति संघ में रहते हुए यह अनुभव करता कि उसने शामिल होकर गलती की है, उसे संघ को छोड़ने की छूट थी।

निर्वाण प्राप्ति के बाद बहुत समय तक सिद्धार्थ धर्म का प्रचार दूर-दूर तक करता रहा। राजा शुद्धोधन और कपिलवस्तु की प्रजा अपने योगी राजकुमार को देखने के लिए व्याकुल थी। पिता बूढ़ा हो चुका था। उसने बुद्ध को बुलाने के लिए विशेष दूत भेजा। राजदूत ने कहा, ' हे स्वामी, प्रजा आपके प्रवचन सुनने और दर्शन करने की इच्छुक है। महाराज शुद्धोधन ने कहा है एक कमल का फूल लम्बे समय से अंधकार में पड़ा प्रतीक्षा कर रहा है कि इधर भी कोई सूर्य उदित हो और यह कमल खिले।' बुद्ध खामोश रहे तो राजदूत से फिर कहा, महाराज शुद्धोधन ने कहा है कि महलों में से कोई वस्तु युवराज से छिपाई नहीं गई थी। वह स्वयं ही छोड़ गया है, उसकी इच्छा। परन्तु अब एक खज़ाना मिला है जो वह संसार में बांटता फिरता है। क्या हम उस खज़ाने से इस कारण वंचित रहेंगे क्योंकि हम उसके रिश्तेदार हैं?

बुद्ध ने आमंत्रण स्वीकार कर लिया और भिक्षुओं के साथ कपिलवस्तु की ओर चल पड़े। उसने कपिलवस्तु नगर के बाहर आम के बाग में डेरा लगाया। जब पता चला कि युवराज आया है महल में खुशी की लहर दौड़ गई। पिता जाने के लिए तैयार होने लगा तो उसने यशोधरा को संदेश भेजा कि तैयार हो जाओ, युवराज के पास चलेंगे। यशोधरा ने उत्तर भेजा कि वह वहाँ जाने की इच्छुक नहीं।

पिता ने फिर संदेश भेजा तो यशोधरा ने कहा- केवल मैं ही नहीं, राहुल को भी जाने नहीं दिया जाएगा। राजा शुद्धोधन यशोधरा के महल में गया और कहा- पुत्री, जिद्द ठीक नहीं। पता नहीं कैसे वह हमारे देश की तरफ आ गया है। पता नहीं फिर कभी आए या नहीं आए। उसने बहुत दुःख झेले हैं। हमें जाना चाहिए। यशोधरा ने कहा- "महल में से वनवास लेने का निर्णय उसका स्वयं का था पिता जी। अपनी इच्छा से वह वापस आया है। उसका आना या न आना मेरे लिए अर्थहीन है क्योंकि इन फैसलों के लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँ। रही बात दुःख झेलने की। किसी वस्तु की कमी नहीं थी, उसने स्वेच्छा से भूख, प्यास और अन्य दुःख झेले। जो कार्य स्वेच्छा पूर्वक किया जाए उसे करने में क्या दुःख? हम वह अभागे हैं जिन्हें इच्छा न होते हुए दुःख मिले। पता चला है कि वह अपने प्रवचन में कहता है... इच्छित वस्तु न मिले तो दुःख। यदि अनिच्छत वस्तु मिले तो दुःख। सब दुःख ही दुःख है। पिता

जी उसे इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति हुई है और हमें जो वियोग मिला उसे पाने की हमारी इच्छा नहीं थी।"

महाराज ने फिर कहा, परन्तु उसने पूछ लिया कि यशोधरा क्यों नहीं आई तो?

यशोधरा ने कहा ऐसा पूछने की उसको ज़रूरत नहीं। परन्तु पूछ ही लिया तो कहना कि यशोधरा ने कहा था, "मुझ में शाही नेकी का यदि कोई हिस्सा बचा है और गौतम को उस नेकी पर विश्वास है तो वह भिक्षु मेरे दरवाजे पर भिक्षा मांगने यकीनन आएगा।"

बौद्ध कथाएँ कहती हैं कि व्याकुल पिता अपने महामन्त्री और सेनापति समेत सिद्धार्थ के दर्शन करने के लिए चल पड़ा। बुद्ध, भिक्षुओं के बीच में बैठे थे। महामन्त्री, सेनापति और महाराज शुद्धोधन ने इस तपस्वी के चरण छुए। अन्य लोग पीछे हट गए। पिता अपने पुत्र के समीप उसके सामने बैठ गए। काफी समय तक पिता-पुत्र दोनों खामोश रहे। सिद्धार्थ चुप था क्योंकि युगों की अनंत शांति उसके दिल में समायी हुई थी। बात करने या बात सुनने की उसको जल्दी नहीं थी। बूढ़े पिता महाराज शुद्धोधन इस कारण चुप रहे क्योंकि घड़ा पूरी तरह से भर चुका था और किसी भी समय छलक सकता था। मन को काबू करके बोला, "क्या आप हमसे इतनी दूर चले गए हो सिद्धार्थ कि अब हम कभी भी आपको महलों में वापस नहीं बुला सकते?

सिद्धार्थ खामोश रहा।

पिता ने फिर कहा- एक सल्तनत मैं आपके चरणों में समर्पित करना चाहता हूँ युवराज गौतम। स्वीकार करोगे?

गौतम खामोश रहा।

तीसरी बार पिता ने कहा- मैं आपको जानता हूँ सिद्धार्थ। मैं तो आपको बचपन से ही जानता हूँ, सत्य तो यह है युवराज मेरे द्वारा भेंट की गई इस सल्तनत को आप राख की एक चुटकी से अधिक कुछ नहीं समझते। क्या मैंने गलत कहा है गौतम?

साक्यमुनि गौतम ने कहा- "आपकी प्रजा सुखी रहे महाराज। न्याय करने के लिए आप सदैव तत्पर रहो। आपका देश खुशहाल रहे। प्रजा को आप उतना ही प्यार करो जितना आप मुझसे करते रहे हो- अब तक कर रहे हो। प्रजा के भण्डार अन्न से और आपके महल धन से भरे रहें।" यह कहकर बुद्ध चुप हो गए। कुछ समय बाद फिर बोले, 'यशोधरा और राहुल कैसे हैं? वह क्यों नहीं आए महाराज?'

पिता ने कहा- मैंने आने के लिए कहा था परन्तु मना करते हुए यशोधरा ने कहा- "यदि मुझमें नेकी की शान हुई तो वह भिक्षु मेरे दरवाजे पर भिक्षा मांगने अवश्य आएगा।"

सिद्धार्थ ने भिक्षुओं को कहा- "हमें वहाँ जाना होगा।" उसने महाराज को विदा कर दिया और कहा कि संघ महल में आ रहा है। गौतम ने आनन्द और मौदग्लायन को कहा- अब महलों में जायेंगे। पिता महाराज शुद्धोधन, युवरानी यशोधरा और युवराज राहुल जिस प्रकार हमे मिलना चाहें- उसी प्रकार मिलने देना। बाधा नहीं डालना। जो वह करें, जो वह कहें मौन रहकर सुनना। शांत रहना। भिक्षुओं से कहना शांत रहें।

महलों में खुशियों की लहर दौड़ गई। यशोधरा ने राहुल को कीमती आभूषण और बहुत सुन्दर वस्त्र पहनाए। राहुल की उम्र उस समय सात साल थी। युवरानी ने पुत्र से कहा, आपके पिता सिद्धार्थ आ रहे हैं। उनके चरण छूना युवराज।

राहुल ने कहा- रानी माँ, पिता शुद्धोधन के आलावा कोई और भी पिता है मेरा?

माँ ने कहा महाराज शुद्धोधन हम सभी के बड़े पिता हैं। तेरे पिता सिद्धार्थ बहुत समय बाद आज महलों में आयेंगे। जब वह तुझे आशीर्वाद दें तो तुम कहना- आपका पुत्र होने के कारण मैं आपकी दौलत का वारिस हूँ पिता जी, मुझे मेरा अधिकार दो। मैं आपका उत्तराधिकारी हूँ। राहुल पुत्र तुम यही कहना।"

राहलु ने फिर पूछा परन्तु मैं उनको जानता नहीं रानी माँ। सुना है बहुत सारे भिक्षु एक साथ यहाँ आ रहे हैं। मैं पिता जी को पहचानूँगा कैसे? क्या यह अच्छा लगेगा कि मैं उनसे पूछू, आप में से मेरा पिता कौन है?

युवरानी ने कहा- तुझे पूछने की जरूरत नहीं पड़ेगी राहुल। जितने भिक्षु आ रहे हैं- कुछ लोह रंग के हैं, कुछ तांबे रंग के। उनमें से एक है- केवल एक, जिसका सारा शरीर सोने का बना हुआ है। सुनहरी रंग वाला भिक्षु तेरा पिता होगा। सब राजकुमारों में जो कभी शिरोमणि युवराज था, अब वह शिरोमणि भिक्षु है।

मुख्य द्वार पर महाराज शुद्धोधन गौतम मुनि की प्रतीक्षा में मंत्रिमंडल सहित स्वागत करने के लिए खड़े थे। हाथ में भिक्षा पात्र लिए जब सिद्धार्थ मुख्य द्वार पर पहुँचा तो कहा- इस भिक्षु को दान दो यजमान। शुद्धोधन ने कहा- "एक बादशाह पिता के द्वार पर उसका युवराज पुत्र हाथ में भिक्षा पात्र लेकर खड़ा हो- क्या यह ठीक लगता है गौतम? आपको सही लगता है यह? हमारे वंश, साक्यवंश में यह परम्परा नहीं रही युवराज। इस वंश के राजकुमारों ने कभी भिक्षा नहीं मांगी थी।"

गौतम ने कहा- मेरे वंश में इसी प्रकार होता आया है महाराज।

पिता ने पूछा- क्या आप साक्यवंश के राजकुमार नहीं हो गौतम?

गौतम ने कहा- मैं बुद्धवंश में से हूँ। मेरे वंश के लोग ऐसे ही किया करते हैं। यदि वह झोंपड़ी में जन्म लेते हैं तो वहाँ सल्तनतें माथा टेकती हैं और यदि महलों में पैदा हों तो हाथ में भिक्षा पात्र लेकर गलियों में मांगते फिरते हैं। हमारे वंश की यही परम्परा है महाराज। यहाँ महल और झोंपड़ी में कोई अन्तर नहीं।

फिर वह अन्दर चले गए। चलते-चलते यशोधरा के महल के द्वार पर पहुँचे। यशोधरा और हीर मोतियों से सज्जित वस्त्र पहने राहुल उसके स्वागत के लिए खड़े थे। यशोधरा चरण स्पर्श के लिए झुकी और सिद्धार्थ के पैरों के पास भुजाएँ मोड़ कर धरती पर बैठ गई और देर तक वहीं बैठी रही। आँसूओं से उस साधु के चरण धोए।

बुद्ध ने कहा- "इस भिक्षु को दान दो यजमान।"

यशोधरा उठी, राहुल को बांहों में उठाया और कहा इस संसार और पिछले और अगले सभी संसारों में मेरे पास यही सबसे मूल्यवान वस्तु है साक्यमुनि। मैं यह आपको सौंपती हूँ। मेरा दिया दान स्वीकार करो स्वामी।

राहुल ने आगे बढ़कर पिता के चरण छुए। बुद्ध ने आशीष दी। फिर राहुल ने कहा, पिता जी, पुत्र होने के कारण मैं आपकी दौलत का वारिस हूँ। मुझे मेरा अधिकार दो। मैं आपका उत्तराधिकारी हूँ।

बुद्ध ने कहा- युवराज, तुम महाराज शुद्धोधन के उत्तराधिकारी बनो। तुम्हें राज्य मिलेगा-ताज़ तख्त मिलेंगे। मेरे पास तुम्हें देने के लिए क्या है? मिट्टी का पात्र है केवल।

राहुल ने कहा- यह क्या है, मुझे नहीं पता। परन्तु जो कुछ भी आपके पास है, पुत्र होने के कारण मैं उसका अधिकारी हूँ। मैं आपका वारिस हूँ पिता जी।

बुद्ध ने कहा- जिस महल में तुमने जन्म लिया, वहाँ यही परम्परा है राहुल, कि जन्म लेते ही तुम उसके वारिस बनो, परन्तु मेरे संघ में कोई जन्म लेने से ही वारिस नहीं बनता। उसके लिए उसे कमाई करनी पड़ती है।

एक तरफ मौन खड़ी यशोधरा की तरफ देखकर सिद्धार्थ ने कहा, "आप, कमज़ोर हो गई हो युवरानी। आपकी अद्‌भुत सुन्दरता अब नहीं रही। क्या हुआ?" यशोधरा खामोश रही। पिता शुद्धोधन ने कहा, जब आप महल छोड़कर वनवासी हो गए तो यशोधरा देर तक सारथी चन्ने से पूछती रही कि आप जाते हुए क्या क्या कहकर गए थे। फिर इसने चन्ने को कहा मुझे उस स्थान पर ले चलो जहाँ वह बिछुड़े थे। चन्ने ने हाथ जोड़े और वहाँ ले गया जहाँ आपने केश काट कर फेंक दिए थे। यशोधरा ने वह केश संभाल कर रूमाल में बांधे और अपने साथ महल में ले आई और खज़ाने में रख दिए। युवरानी ने अपने केश काट दिए। यशोधरा को किसी साधु

ने बता दिया कि युवराज आठ पहर के बाद कुछ खाता-पीता है- इसने आठ पहर के बाद भोजन लेना आरम्भ कर दिया। जब इसे पता चला कि गौतम मिट्टी के पात्र में खाता है तो इसने मिट्टी के पात्र में भोजन लेना शुरू कर दिया था। दूसरे राज्यों के राजकुमार, राजकुमारियाँ आते- अन्य मेहमान आते, इसे मनोरंजन के लिए कहते- युवरानी चलो सैर करने चले, चलो शिकार करने चले- अकेली मत बैठो युवरानी- हमारे साथ चलो। यह कहा करती- तुम सभी अकेले अकेले हो सकते हो। मैं अकेली नहीं। जब अकेली हुई तो अवश्य आपके साथ चलूँगी।

परिवार को मिलने के बाद वह विदा होने लगा तो छोटा राहुल पीछे-पीछे चल पड़ा। वह महल के दरवाजे से बाहर आए और सड़क पर चलने लगे। राहुल ने पिता सिद्धार्थ की अंगुली पकड़ ली। कपिलवस्तु के लोग सड़कों के किनारे, दाएँ बाएँ खड़े थे छत्त पर बैठे- खिड़कियों तथा दरवाज़ों से देख रहे थे- एक सुन्दर सजा हुआ छोटा राजकुमार गलियों में अपने भिक्षु पिता की अंगुली पकड़े जा रहा था। राहुल कहता जा रहा थाओ श्रमण पिता, आपकी छाया में रहना कितना सुखदायी है।
मेरा प्यारा पिता। मेरा सुन्दर पिता। मेरा भिक्षु पिता।

गंतव्य पर पहुँच राहुल ने फिर से वही प्रार्थना की तो बुद्ध ने कहा- सोना, चांदी, हीरे जवाहरात, यह सब खत्म होने वाला है। मैं तुम्हें ऐसी दौलत दूँगा युवराज जो खत्म नहीं होगी। मैं तुम्हे धर्म देता हूँ। तब उसने राहुल को दीक्षा दी।

पिता शुद्धोधन ने असहमति जताई- नाबालिग बच्चे को उसके अभिभावकों की आज्ञा के बिना संघ में शामिल करना अनुचित है।' बुद्ध ने कहा- आगे से ऐसा नहीं होगा। केवल माता-पिता या अभिभावकों की आज्ञा से ही बच्चे दीक्षा ले सकेंगे। बुद्ध का यह आदेश विनयपिटक में अंकित है।

राहुल बहुत महान विद्वान हुआ। उसने बौद्ध मत के प्रसार में बहुत योगदान दिया। कपिलवस्तु में कौशल का राजा प्रसेनजीत उसका शिष्य बना। जब राजगृह (राजगीर) में बुद्ध बीमार हो गए थे तो प्रसेनजीत ने ही अपने निजी वैद्य उसके उपचार के लिए भेजे थे।

भ्रमण करते हुए गौतम धर्म का संदेश देता रहा। पूरे पैंताली वर्ष तक घूम-घूम कर उसने धर्म का प्रचार किया। उसकी इन यात्राओं के दौरान अनेक दिलचस्प घटनाएँ घटी जो कथाओं के रूप में बौद्ध साहित्य की अनमोल निधि है। कुछ साखियों को इस कारण यहाँ दिया जा रहा है ताकि बौद्ध मत का सत्य आसानी से समझा जा सके।

ब्राह्मण भारद्वाज

भारद्वाज किसान था। एक वर्ष समय पर वर्षा हुई और बहुत अच्छी फसल हुई। उसके सभी भण्डार अनाज से भर गए। उसने यज्ञ करने का निर्णय किया। गौतम बुद्ध उस तरफ आए हुए थे। वे भोजन प्राप्त करने के लिए घर पहुँचे तो भारद्वाज बहुत प्रसन्न हुआ। सत्कार पूर्वक उसने साक्यमुनि को बिठाया तथा अपने हाथों से भोजन को थाली में परोस कर ले आया। खाना बुद्ध के आगे रखा और हाथ जोड़कर प्रार्थना की- हे साक्यमुनि सिद्धार्थ, ब्राह्मण पुत्र भारद्वाज आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता है। मेरी प्रार्थना है कि खाना खाने से पहले प्रश्न का उत्तर दें। बुद्ध ने बैठने का इशारा करते हुए कहा- कहो ब्राह्मण। सामने बैठकर भारद्वाज ने कहा- हे मुनि, मेरे उपजाऊ खेत हैं। मैंने हल चलाया। बीज बोया। फसल उगी तो उसकी रक्षा की, फसल पकने पर उसे काटकर अनाज घर ले आया। मेरे परिश्रम ने मेरा घर अन्न से भर दिया तो इस अन्न को खाने का मैं अधिकारी बना। आप बताओ, आप यह भोजन प्राप्त करने के अधिकारी कैसे बने।

बुद्ध ने कहा- मैं भी किसान हूँ भारद्वाज। मेरा खेत भी बहुत बड़ा है। अत्यधिक विशाल। इसका नाम है मन। तेरी भूमि उपजाऊ भी है और समतल भी। मेरा खेत बंजर था। इसमें कहीं जंगल उगा हुआ था, कहीं अत्यधिक सख्त चट्टानें थीं। मैंने बहुत परिश्रम से इस जंगल को काटा और चट्टानों को तोड़ा। मेरी भूमि बेकार थी और मेरा फैसला था कि मैं इसमें सबसे सूक्ष्म बीज बोऊँगा।

मैंने नेकी का बीज बोया। बुद्धि के खुरपे से विचारों के घास-फूस को उखाड़ा। ज़मीन पर दिन रात हल चलाया, निरन्तर सावधानीपूर्वक इसकी रक्षा की। इस फसल का नाम संघ रखा और जो इसमें से अन्न उत्पन्न हुआ वह धर्म था। मेरी भी बहुत अच्छी फसल हुई है भारद्वाज। मेरे भी भण्डार भरे हुए हैं। भारद्वाज ने कहा- ठीक कहा महाराज। परन्तु मेरे अनाज पर आपका अधिकार कैसे हुआ? साक्यमुनि ने कहा- जैसे तुम मकई देकर गेहूँ ले आते हो, तुम्हारे पास कपास नहीं तो चावल देकर कपास ले आते हो इसी प्रकार हम वस्तुओं का बंटवारा करते हैं। तुमने अपने अनाज में से मुझे कुछ भाग दिया है तो इसके बदले में मैं अपनी फसल में से तुझे तेरा हक़ अवश्य दूँगा भारद्वाज- तुझे तेरा हक मिलेगा भारद्वाज।

अजित

गम्भीर विद्वान अजित, बुद्ध के सम्पर्क में आया। वह बड़ा हठी तपस्वी था। उसने बुद्ध से कहा- स्वामी, मैं सारा संसार घूमा हूँ और अनेक विद्याएँ प्राप्त की हैं। मैंने सभी धर्म ग्रन्थों का पाठ किया है। परन्तु क्या कारण है मेरा मन अशांत है? इसको कैसे शांति मिले?

बुद्ध ने कहा- हे बुद्धिमान अजित, तुम तपस्वी, विद्वान और देश-परदेशों का भ्रमण करने वाले तेजस्वी पुरुष हो। तुम संसार में घूम चुके हो- स्वयं के आस-पास की परिक्रमा भी करो, स्वयं को भी जानो। मुझे पता चला है कि तुम धर्म ग्रन्थों के साथ छेड़छाड़ करते हो। ऐसा मत करो। धर्म ग्रन्थ जंगल में रहने वाले मस्त अजगर के समान होता है जो अपनी मस्ती में चलता रहता है। यदि तुम श्रद्धालु हो तो माथा टेको- इसको चलने दो। यदि तुम्हें यह अच्छा नहीं लगा तो उसी स्थान पर मार दो और फिर आगे बढ़ो। मैंने यही किया था हे विद्वान अजित। धर्म ग्रन्थों के साथ छेड़छाड़ मत करो। तुम्हें शांति मिलेगी।

कृषक की गालियाँ

गाँव में बुद्ध भिक्षा मांगने गए तो घर का स्वामी कृषक क्रोधित हो गया और निकम्मे भिक्षुओं को बेकार कहकर गालियाँ देने लगा। बुद्ध शांत खड़े रहे। जब क्रोधित कृषक गालियाँ देने से रूका तो बुद्ध ने कहा, मित्र यदि तुम मुझे भिक्षा देने के इच्छुक होते, दान लेकर आते, परन्तु तुम्हारी वस्तु को मैं स्वीकार न करता तो फिर वह वस्तु जो तुमने मुझे देनी थी वह किसकी होती? किसान ने कहा- जो वस्तु मेरी थी और आपने मुझसे नहीं ली तो वह मेरी होती। बुद्ध ने कहा- जो गालियाँ तुमने मुझे दी हैं- मैंने इनको लिया नहीं। फिर यह मेरे पास तो हैं नहीं- किसकी हुई? और किसको लगी? किसान शर्मिंदा हुआ, बुद्ध से भूल की क्षमा मांगी।

अछूत लड़की

बुद्ध ने आनन्द को दूर किसी काम के लिए भेजा। आनन्द को प्यास लगी। देर तक चलते-चलते वह एक गाँव के बाहर कुएँ पर पहुँचा जहाँ एक लड़की कपड़े धो रही थी। आनन्द ने उसको पानी पिलाने के लिए कहा। लड़की ने सत्कार पूर्वक प्रणाम किया और कहा- हे महात्मा, आप उच्च कुल से हो। मैं अछूत जाति की लड़की प्रकृति हूँ। कृपा करके रूको। मैं किसी उच्च जाति की लड़की को बुलाकर लाती हूँ जो आपको पानी पिलाए और आपका धर्म भी भ्रष्ट न हो। आनन्द ने कहा- प्रकृति, मैंने जाति नहीं पीनी। प्यास के कारण मैंने तो पानी ही पीना है केवल। तुम ही पानी पिलाओ।

लड़की ने पानी पिलाया और बहुत प्रसन्न हुई। आशीर्वाद देकर आनन्द चला गया। वह पीछे-पीछे चलती गई। पता चला कि आनन्द, बुद्ध का शिष्य है। उसने बुद्ध के पास जाकर प्रार्थना की- हे मुनि- मुझे आनन्द अच्छा लगा है। आप मुझे इसके पास रहने दें। मैं इसकी सेवा करूँगी।

बुद्ध ने कहा- बेटी इस भिक्षु आनन्द जैसे सैंकड़ों भिक्षु तुमने देखे हैं। जो तुम्हें अच्छा लगा वह आनन्द नहीं, इसके भीतर की सहानुभूति, नेकी और धर्म अच्छे लगे हैं। तुम ऐसा करो, इससे सहानुभूति, नेकी और धर्म ले जाओ। आनन्द को मेरे पास रहने दो। तुम नेकी करो, दयालु हृदय बनो, ब्राह्मण तुम्हारे चरण स्पर्श करेंगे। नेकी करोगी तो राजगद्दियों पर बैठी महारानियों की चमक-दमक तुम्हारे सामने फीकी हो जाएगी। तुम बेशक अछूत हो बड़े दानिश्वरों के लिए मंजिल बनोगी।

सारिपुत्त की साखी

बुद्ध प्रवचन करते-करते नालंदा चले गए जहाँ विद्वान सारिपुत्त रहता था। वह बौद्ध वचन सुनने के लिए संगत में आया और बुद्ध वाणी सुनकर मग्न हो गया। सभा समाप्त हुई तो वह बुद्ध के पास चला गया, सत्कारपूर्वक प्रणाम करके कहा- हे महामुनि, मैं सारिपुत्त हूँ। जो आपके बारे में पता चला था- आप वही हो। आपके जैसा न कोई हुआ, न है, न होगा। आप जैसी महानता किसी और के हिस्से में नहीं आई स्वामी।

बुद्ध ने कहा- सारिपुत्त तुम्हारी वाणी सुन्दर है। मैंने सुना है कि तुम विद्वान हो। मधुर वाणी से जुबान भी मधुर हो जाती है और सुनने वाले के कानों को भी रस प्राप्त होता है। परन्तु क्या इसमें कुछ सत्य भी है सारिपुत्त जो तुमने कहा?

सारिपुत्त ने कहा- हाँ साक्यमुनि। सत्य यही है।

बुद्ध ने कहा- हे बुद्धिमान सारिपुत्त, इसका अर्थ यह है कि तुम भूतकाल के सभी बौद्धों को जान गए हो?

सारिपुत्त ने कहा- नहीं जी। मैं भूतकाल के सभी बौद्धों को नहीं जानता।

भगवान फिर बोले- तो सारिपुत्त तुम भविष्य में पैदा होने वाले सभी बौद्धों को जानते हो?

सारिपुत्त ने कहा- ऐसा भी नहीं महाराज। मैं भविष्य के सभी बौद्धो को कैसे जान सकता हूँ?

बुद्ध ने फिर पूछा- तो वर्तमान काल में विचरण करते सभी बौद्धों को अवश्य जानते होगे?

सारिपुत्त ने कहा- ऐसा भी नहीं महामुनि?

बुद्ध ने कहा- अच्छा, सारिपुत्त, अंतिम प्रश्न। यह बताओ तुम्हारे सामने गौतम नाम का जो बुद्ध इस समय खड़ा है, क्या इसे जान गए हो?

सारिपुत्त ने कहा- हे श्रमण, मैं सम्पूर्ण रूप से आपको नहीं जानता। मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं आपको जान गया हूँ।

बुद्ध ने कहा सामान्य व्यक्तियों के लिए भी मिथ्या वचन बोलना उचित नहीं है विद्वानों के लिए तो यह निंदनीय है। हे बुद्धिमान सारिपुत्त, तुमने झूठ क्यों कहा?

सारिपुत्त ने कहा मैंने जो कहा वह श्रद्धावश कहा। आप में मेरी श्रद्धा उत्पन्न हो गई महाराज।

बुद्ध ने कहा- श्रद्धा कीमती और प्रिय वस्तु है। परन्तु इसकी जड़ गहरी होनी चाहिए सारिपुत्त। सुन्दर शब्दों का प्रयोग जिह्वा और कानों को रस अवश्य देता है परन्तु इसकी आयु भी लम्बी होनी चाहिए सारिपुत्त। मिथ्या वचनों की आयु लम्बी नहीं होती। श्रद्धा की जड़ ज्ञान में होनी चाहिए।

गुप्त भेद रखने वाले लोग

सिद्धार्थ ने कहाहमें अकसर भ्रम हो जाता है कि किसी संत के पास दैवी शक्ति है जो दिखाई नहीं देती क्योंकि वह प्रकट नहीं करता। तीन प्रकार के लोग ऐसे होते हैं जो भेद नहीं बताते- सब गोपनीय रखते हैं। इनमें से पहले स्थान पर स्त्रियाँ हैं जो छिपाती अधिक है, प्रकट कम करती हैं। दूसरे स्थान पर पुजारी आते हैं। वह भी छिपाते अधिक हैं और दिखाते कम हैं। तीसरे स्थान पर है 'झूठा सिद्धान्त। यह भी अधिकतर गुप्त रहता है, दिखाई कम देता है। धर्म सूर्य के समान संसार में चमकता है। उसमें कुछ भी, अंश मात्र भी गुप्त नहीं।"

निंदक ब्राह्मण

अंब लठिका नामक नगर में बुद्ध ने प्रवेश किया तो उनके पास कुछ भिक्षु आए जो बहुत क्रुद्ध थे। कहने लगे "हे नाथ, एक ब्राह्मण आपकी निंदा कर रहा था। वह कह रहा था गौतम गप्पी है जिसे न धर्म का पता है न संगत का। हमें बहुत क्रोध आया।" बुद्ध ने कहा- भाइयों यदि कोई मेरे विरूद्ध, धर्म विरूद्ध या संघ के विरुद्ध बोले तो सुनकर क्रोध क्यों करते हो? क्रोध आपके अंदर स्थित सूक्ष्म चित्त को तो हानि पहुँचाएगा ही, यह आपको न्याय करने के योग्य भी नहीं छोड़ेगा कि आपकी आलोचना करने वाला व्यक्ति ठीक कहता है या गलत। क्रोध नहीं करना। आलोचक को ध्यान से सुनो। शायद वह ठीक कहता हो। यदि वह ठीक कह रहा हो तो स्वयं को सुधारो। यदि गलत कह रहा हो तब भी क्रोध मत करो।

ब्राह्मण ने आपके साथ न्याय नहीं किया था। मैं तुम्हें इस योग्य बनाऊँगा कि तुम्हारे हाथों ब्राह्मण को न्याय मिले। क्रोध करने वाले व्यक्ति न्याय नहीं कर सकते, उपासको।

विद्वान

बुद्ध ने कहा- जो विद्वान ऋषि ब्रह्म के बारे में व्याख्यान देते हैं, उपदेश करते हैं, उनको ब्रह्म का कोई पता नहीं। वह जान कुर्बान करने वाले ऐसे आशिक हैं जिन्होंने अपनी महबूबा को कभी देखा नहीं। उन्होंने चढ़ने के लिए सीढ़ी तो बना ली है परन्तु जिस महल पर चढ़ना है वह महल अभी बना नहीं। वह दरिया पार करना चाहते हैं परन्तु उनकी इच्छा है दरिया का दूसरा किनारा चलकर उनकी तरफ आ जाए। आप इनको विद्वान कहोगे?

प्रसेनजीत

राजा प्रसेनजीत बुद्ध के पास आकर कहने लगा जी मन कैसे शांत हो? महलों में सभी सुख-सुविधाएँ होने के बाद भी मन में बेचैनी है। बुद्ध ने कहा- जिस वृक्ष को आग लगी हो प्रसेनजीत, क्या कभी देखा है कि पक्षी उस पर बैठकर गा रहे हों? जहाँ वासनाओं की प्रबलता हो वहाँ सत्य के पक्षियों का घोंसला नहीं बन सकता। बेशक स्वयं को कोई महात्मा कहलाता घूमे वासनाएँ कायम हैं तो शांति नहीं मिल सकती। आग बुझ जाएगी तो हरे-भरे वृक्षों पर पक्षी गीत गायेंगे।

मालुंक्यपुत्त

मालुंक्यपुत्त बुद्ध के डेरे में आया और कहा"हे साक्यमुनि, आपने पारब्रह्म के विषय में कुछ नहीं बताया। संसार अमर है कि नाशवान, सीमित है कि अनन्त?

बुद्ध ने कहा, "विचारों की एक श्रृंखला को छोड़ दूसरी पकड़ लेना, एक परम्परा का त्याग कर दूसरी में चले जाना, यह धर्म नहीं मालुंक्यपुत्त। तुम एक दर्शनशास्त्र सीखो। दूसरा कुछ भी न सीखो, तब भी जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु, दुःख, विलाप, संताप और उदासी कायम रहेगी। शब्दों और संकल्पों की विचित्र दार्शनिकता का मैंने आश्रय नहीं लिया क्योंकि दुःख दूर करने के लिए यह सहायक नहीं होता।

अंतिम कुछ दिन

पूर्व ईसवी 480 में वैशाली, सुखी और खुशहाल लोगों की रौनक वाला एक समृद्ध नगर था। लिच्छवी वंश के छह राजाओं ने अपने-अपने राज्यों को मिलाकर एक सामूहिक गणतन्त्र की स्थापना की जिसे लिच्छवी गणराज्य कहते थे। इस गणराज्य की राजधानी वैशाली थी। इस गणराज्य के मुखिया को लिच्छवी राज्य-प्रमुख कहा जाता था। राज्य-प्रमुख अत्यधिक शक्तिशाली महाराजा बन गया था।

साक्यवंश का युवराज गौतम जो एक अंधेरी निर्जन रात्रि में युवावस्था में कपिलवस्तु के महल त्याग भिक्षु बन गया था, इन दिनों राजगृह (राजगीर) नामक नगर में ठहरा हुआ था। लोग उसे साक्यमुनि, तथागत, महामुनि, महात्मा बुद्ध आदि अनेक नामों से सम्बोधित करते। उसे पता था कि अब संसार में से विदा होने का

समय आ गया है। वह राजगृह (राजगीर) की बजाए कुशीनगर में देह त्यागने का इच्छुक था, जिस नगर को वह प्रेमपूर्वक कुसीनार कहा करता था। इस नगर को वह प्रेम क्यों करता था और उसने वहाँ शरीर त्यागने का निर्णय क्यों किया, किसी को पता नहीं। उसने आनन्द को बुलाया और कहा कुसीनार जाना है आनन्द। वैशाली के रास्ते से होते हुए चलेंगे। वह चल पड़े और वैशाली नगर पहुँच गए। बुद्ध कमज़ोर हो चुके थे। वैशाली पहुँच कर आनन्द ने कुछ दिन विश्राम करने के लिए कहा तो वह मान गए।

सावत्थी (संस्कृत श्रावस्ती) नगर की सुन्दरी, नर्तकी और गायिका अमरपाली, वैशाली में रह रही थी। यहाँ उसका बहुत बड़ा बाग था जिसमें आलीशान हवेली थी तथा हवेली में बहुत सारा धन। इस नर्तकी को निमंत्रण देने का सामर्थ्य केवल राजाओं के पास ही रह गया था। लोग उसके नृत्य और गायन को पसंद करते परन्तु यह काम सम्माननीय नहीं था, इसलिए दूर रहते। वह बुद्ध के पास आई। माथा टेका और प्रार्थना की कि बुद्ध भिक्षुओं सहित उसकी हवेली में आकर भोजन ग्रहण करें। महाश्रमण ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की तो वह प्रसन्नतापूर्वक वापस चली गई।

यह समाचार लिच्छवी सम्राट को मिला तो उसे दुःख हुआ। धन देकर जिस लड़की को कोई भी नाचने के लिए बुला सकता है, साक्यमुनि सिद्धार्थ उसके घर जायेंगे? साधु-संत उस तरफ नहीं जाते थे। राजा और राजकुमार नहीं जाते, मन होता तो उसे अपने पास बुला लेते हैं। परन्तु यह साधु जो युवराज भी है, अमरपाली की हवेली में जाएगा? लिच्छवी सम्राट को दुःख हुआ। उसने फैसला किया कि वह बुद्ध को वहाँ नहीं जाने देगा, परन्तु उसके पास इतना साहस नहीं था कि जाए और मना कर दे, परन्तु वह रोकेगा। वह बुद्ध के पास गया। चरण स्पर्श किए। बुद्ध ने बैठने का इशारा किया तो वह धरती पर बैठ गया। कुछ समय पश्चात कहने लगा- "हे साक्यमुनि, मेरी इच्छा है कि आप को खाना खिलाऊँ संघ सहित। क्या स्वीकार करोगे?" बुद्ध ने स्वीकृति में सिर हिलाया। सिद्धार्थ ने फिर पूछा, "किस दिन?" लिच्छवी ने वही दिन कहा जो अमरपाली के लिए निश्चित हुआ था।

बुद्ध ने कहा- मित्र, इस दिन अमरपाली की हवेली जाऊँगा। कोई अन्य दिन बताओ।

लिच्छवी ने कहा- तो आज अमरपाली बड़ी है, हे महाराज? हम सभी उससे छोटे रह गए हैं?"

बुद्ध ने कहा- अमरपाली बड़ी नहीं है। आप और मैं भी बड़े नहीं है। धर्म बड़ा है। वचन, धर्म का मूल है। मैं वहाँ वचन अनुसार जाऊँगा। आप भी मेरे साथ चलना, संघ चलेगा।"

लिच्छवी सम्राट अमरपाली के पास गया और कहने लगा- अमरपाली यदि तुम बुद्ध को भोजन खिलाने का निमंत्रण वापस ले लो तो महल में मैं यह सेवा कर सकता हूँ। इसके लिए मैं तुम्हें एक लाख रूपये देने के लिए तैयार हूँ।

अमरपाली ने कहा- लाख रूपये तो क्या लाख देश भी उस भोजन के बदले में नहीं लूँगी महाराज। वह यहाँ मेरे घर आएँगे। यह अमूल्य सौगात है।

सभी अमरपाली की हवेली में भोजन करने गए। वापस आने लगे तो अमरपाली ने हाथ जोड़कर कहा- "मेरी एक प्रार्थना है स्वामी। यह समृद्ध बाग मैं आपके चरणों में भेंट करती हूँ। मेरा अन्य कोई ठिकाना नहीं है। जितने समय तक सांसें चल रही हैं तब तक इस कोठी में रहने की आज्ञा दे दो। मेरे बाद कोठी, सामान, धन, बाग आपका हो।" बुद्ध ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार किया और बाग संघ को दे दिया।

धीरे-धीरे चलते गए तो वैशाली नगर की सीमा पार कर गए। बुद्ध रूके। वापस वैशाली की तरफ देखने लगे। आनन्द ने कहा- सफ़र खत्म करना है भगवान चलें? बुद्ध ने कहा- "भले व्यक्तियों का नगर वैशाली। सुन्दर बागों का नगर। मेरी पुत्री अमरपाली का नगर। मैं इस नगर को दोबारा कभी नहीं देख सकूँगा आज के बाद। कुछ समय और देखने की आज्ञा दे दोगे आनन्द?"

आनन्द की छलकती आँखों की तरफ ध्यान देने की अपेक्षा बुद्ध ने वैशाली को सुखी रहने का आशीर्वाद दिया, फिर चल पड़े। कुसीनार के मार्ग पर चल रहे थे तो रास्ते में पावा गाँव आया जहाँ चुण्ड लुहार, एक उपासक ने भोजन करने की प्रार्थना की। बुद्ध की इच्छा भोजन करने की नहीं थी। स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था परन्तु चुण्ड बार-बार प्रार्थना करने लगा कि संघ के चरण घर में अवश्य पड़ें। सभी भिक्षु गए। जरूरत के अनुसार सभी ने खाना खाया। बुद्ध ने कम खाया। भोजन करने के बाद पेट में भयंकर दर्द हुआ। खून के दस्त शुरू हो गए। सभी ने मिलकर सेवा संभाल की। महात्मा का दर्द रूका तो उसने कहा- चलें? आनन्द का मन कुछ दिन ठहरने का था क्योंकि जाने वाली अवस्था नहीं थी। परन्तु वह चुपचाप चल पड़ा। साथ में अन्य कौन कौन थे पता नहीं।

दोपहर के समय हिरणावती नदी के तट पर पहुँचे। बुद्ध थक गये थे। लेट गये। आनन्द ने उनका सिर अपनी गोद में रख लिया। बुद्ध ने कहा "भूलना मत आनन्द। एक काम करना है। इधर कुसीनार से जब मुक्त हो जाओ तो वैशाली नगर जाना। नगर तेरे दर्शन के लिए उमड़ पड़ेगा। लोग तुझसे जानना चाहेंगे कि गौतम भिक्षु जाते हुए क्या-क्या कहकर गया है। तुम चुण्ड लुहार के घर जाना। उसको सांत्वना देना। उसे कहना घबराए नहीं। उसे कहना कि तथागत तुम्हें रास्ते-रास्ते

आशीष देता गया है। भिक्षुओं को कहना कि संदेह न करें। चुण्ड हमारा मित्र है। वह आदरणीय उपासक है। दो भोजन सदैव अमर रहेंगे। जो भोजन सुजाता लेकर आई थी, जिसके बाद तथागत को ज्ञान प्राप्त हुआ था वह भोजन अत्यन्त पवित्र था। फिर वह भोजन जिसे खाने के बाद तथागत चला जायेगा हमेशा के लिए। इन दोनों भोजनों को जो सम्मान प्राप्त है, वह किसी धन, सम्पत्ति या शक्ति को नहीं। सुजाता और चुण्ड को अनन्त सुख मिलेगा।" फिर चल पड़े। चलते चलते संध्या से पहले कुसीनार दिखाई देने लगा। बुद्ध ने कहा- कुसीनार आ गया है आनन्द। यहाँ सामने साल के वृक्षों का जो समूह है, यहीं ठहरेंगे। और आगे नहीं जाना। चारों तरफ शांति थी। बुद्ध ने कहा चटाई बिछा दो, देह और सिर, उत्तर की तरफ रखना। आनन्द ने घासफूस की बनी चटाई धरती पर बिछा दी। बुद्ध उस पर लेट गए। नगरवासियों और भिक्षुओं को एक दूसरे से पता लगता गया कि तथागत कुसीनार की सीमा में आ गये हैं, और वह अस्वस्थ हैं। आनन्द ने कह दिया था कि सभी दूर से ही दर्शन करे। चारों तरफ से लोग आ-आ कर बैठ रहे थे। सभी खामोश थे।

एक श्रद्धालु तथागत के दर्शन के लिए आया। वह बुद्ध के चरण स्पर्श करने का इच्छुक था। आनन्द ने उसे रोक दिया। उसने मिन्नतें करनी शुरू कर दी जिसे बुद्ध ने सुन लिया। बुद्ध ने धीरे से कहा- आने दो आनन्द। वह आगे बढ़ा। प्रणाम करके कहा- जी मैं सुभद्र ब्राह्मण हूँ। हे मुनि, कृपा करके बता दोगे कि हम कहाँ से आए हैं, क्यों आए हैं और कहाँ जायेंगे? आनन्द की इच्छा नहीं थी कि इस समय प्रश्न किए जाएं। बुद्ध ने कहा- इन सभी प्रश्नों के उत्तर मेरे पास हैं सुभद्र। यदि मैं प्रकट कर दूँ तब भी संसार में दुःख रहेंगे। मेरा सम्बन्ध दुःख के साथ है, उसी का शिकार करना चाहा। अन्य कोई इच्छा शेष नहीं। दार्शनिक यह बातें करते रहेंगे। आपको समुद्र बड़ा लगता है। मुझे लगता है कि पशु-पक्षियों और मनुष्यों ने आज तक जितने आँसू बहाए हैं, वह समुद्र से अधिक हैं। दुःखों की समाप्ति के लिए तथागत धरती पर आया।

बुद्ध ने आनन्द की तरफ नज़र घुमाई। आनन्द ने कहा- स्वामी कुछ और बताओ हमें।

बुद्ध ने आस-पास बैठे भिक्षुओं से कहा- "मित्रों, जब युवावस्था में मैं सोच रहा था कि महल त्याग कर संन्यास धारण करूँ या न, मार देवता प्रकट हुआ (बौद्ध साहित्य में यमराज को मार कहा जाता है)। कहने लगा- "हे गौतम, तुम तीक्ष्ण बुद्धि और आत्मविश्वासी युवक हो। मेरी बातें मानों और संन्यासी मत बनो। तुम सात देशों के छत्रपति महाराज बनो।"

मैंने यमराज की बात सुनकर दुविधा को त्याग दिया और तुरंत संन्यास लेने का निर्णय कर जंगल की तरफ चल पड़ा। जंगलों में वर्षों इतनी तपस्या की कि मृत्यु के समीप पहुँच गया। तभी मार का देवता फिर प्रकट हुआ और कहने लगा- “हे मुनि, आपका कठिन संघर्ष सफल हुआ। चलो अब धरती छोड़ो। सात स्वर्ग तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं- राज्य करो।”

मैंने मार से कहा- यदि यह बात है तो मैं मरूँगा नहीं, जीऊँगा। धरती पर रहूँगा- जब तक सभी जीवों का कल्याण नहीं होता यहीं रहूँगा। तब मैंने सुजाता द्वारा लाई गई खीर खाई और सांसों की टूटती जंजीर को दोबारा अपने हाथों में पकड़ा। सात स्वर्गों के लोभ में मैंने शरीर का त्याग नहीं किया।

और, अब मार फिर आया है। अब कह रहा है “गौतम मुनि, शरीर नश्वर है। इसके कण खण्डित होंगे। आपको शरीर त्याग देना चाहिए हे साक्यमुनि।”

अब मैं इसकी बात मानूँगा। अब इसने न तो सात देशों का लोभ दिखाया है न ही सात स्वर्गों का। अब इसने अटल सत्य बोला है। सत्य तो सत्य है- बेशक शत्रु ने ही बोला हो। हे मित्रों अब मार का कहना मानना चाहिए। अब मुझे यहाँ से चले जाना चाहिए।

आनन्द की आँखों में आँसू आ गए- उसने साथी भिक्षुओं को धीरे से कहा- मैंने तो अभी सीखना शुरू किया था थोड़ा थोड़ा- अभी सम्पूर्णता बहुत दूर है और हमारा स्वामी जा रहा है हमारे पास से- हमारा दयालु मुनि।

बुद्ध ने कहा- आनन्द! इधर सामने आओ। उदास क्यों हो? आनन्द ने कहा- “स्वामी अज्ञानता का अंधकार चारो ओर फैला हुआ है। नाशवान संसार के प्राणियों को प्रकाश की अभी आवश्यकता है। तथागत भयंकर तूफान में हमारे लिए दीपक बने अब यह दीया बुझने लगा है।

बुद्ध ने कहा- बस आनन्द बस। मन व्याकुल मत करो। सभी को पता है हम अब विदा होंगे। मैं बताता रहा हूँ कि सबसे प्यारी वस्तुएँ, सबसे प्रिय मित्र, बिछुड़ेंगे। मूर्ख कहता है- “यह मैं हूँ- मैं हूँ यहाँ।” बुद्धिमान व्यक्ति इधर-उधर देखता है। न कहीं उसे मैं दिखाई देती है न मैं का ठिकाना। आनन्द यह शरीर क्यों संभाल कर रखें जब अत्यन्त सुन्दर शरीर, पंथ, वह पंथ जिसमें धर्म समाहित हो गया है, सर्वदा रहेगा। धर्म-काया स्थिर रहेगी। विश्वास रखो। मैं सन्तुष्ट हूँ। जो कार्य मुझे सौंपा गया था वह करके जा रहा हूँ। इसी की जरूरत थी। संसार में पैदा होने वाला मैं पहला बुद्ध नहीं हूँ। न मैं आखिरी बुद्ध हूँ। सत्य प्रकट करने के लिए मैं तुम लोगों के बीच आ उतरा। गौतम नहीं रहेगा। बुद्ध हमेशा रहेगा क्योंकि सत्य का नाम बुद्ध

है और सत्य कभी मरता नहीं। जो सत्य के मार्ग पर चलेगा वह मेरा विद्यार्थी होगा- मैं उसको पढाऊँगा। मैं, जो कि बुद्ध हूँ, सदैव तुम्हारे अंग-संग रहूँगा।

आनन्द ने कहा- अंतिम समय कुछ और भी बताओ महाराज।

बुद्ध ने धीरे-धीरे कहा- आनन्द, समस्त आयु जो भी बताया, एक या अनेक, अपने दोनों हाथ फैलाकर बताया। इस साधु ने कभी मुट्ठी बंद नहीं की। जो मिला बांट दिया। कुछ विशेष नहीं है इस समय मेरे पास। कोई वस्तु गुप्त नहीं रखी मैंने कभी।

आनन्द ने पूछा- आपके बगैर क्या करेंगे हम स्वामी?

बुद्ध ने कहा- उन मिश्रित कणों से ही मेरा शरीर बना है जिन कणों से तुम्हारा शरीर बना। यह विशेष नहीं है। यह कण अवश्य खण्डित होंगे। हौंसला नहीं हारना।

आनन्द ने फिर पूछा- हे साक्यमुनि, आपके बाद कौन हमारी अगुवाई करेगा? बुद्ध ने कहा- धर्म। धर्म आपका सारथी बने। अपने अंधकारमय रास्तों में स्वयं दीपक बनना। अपने नाक में नथ अवश्य डालना परन्तु रस्सी अपने हाथ में पकड़ कर रखना। घोड़े की लगाम और नाव की पतवार स्वयं पकड़ना। कभी लगे तुम निर्बल हो, कभी किसी की शरण में जाने का मन करे तो चले जाना परन्तु बेगाने की शरण में नहीं, अपने शरणार्थी स्वयं बनना।

वह रूका। फिर कहने लगा- जो भिक्षु मेरे साथ रहे हैं उन्हें आज वरदान भी देना है शाप भी। वरदान यह कि मेरे साथी भिक्षु जो भी करें, जो कहें, संघ उसमें हस्तक्षेप न करे। यह उनका वरदान है। परन्तु वह जो कहें, या जो वह करें, वह मानने योग्य या करने योग्य नहीं होगा। करना वह जो संघ (संगत) कहे। संघ के निर्णय सर्वोत्तम होंगे।

साक्यमुनि कुछ देर चुप रहा- फिर बोला, "देखो भिक्षुओं, तथागत यहाँ से जाने वाला है। मेरी इच्छा है कि तुम कहो-

"सभी तत्त्व बूढ़े, जर्जर हो जाते हैं।
सभी तत्त्व चतुर्दिक में घुल जाते हैं।
जो अमर है उसकी तलाश करो।
मुक्ति की प्राप्ति के लिए पूरी ताकत से परिश्रम करो।"

धीरे-धीरे वह धरती से जाने लगा। उसने धर्म की सभी समाधियाँ पार कर लीं। फिर हमेशा के लिए आँखें बंद कर ली। आनन्द ने कहा- "हे श्रमणों, हे भिक्षुओं, हे उपासकों, हमारे पास से हमारा मित्र चला गया है।" भिक्षु विलाप करने लगे। बड़ों ने सांत्वना दी। पावा और कुशीनार का राजा मल्लस पुष्पमाला, सुन्दर वस्त्र, आहुतियाँ

लेकर महायोगी को श्रद्धांजलि देने के लिए सबसे पहले आया। मल्लस ने कहा- तथागत ने आखिरी बार हमें याद किया, यह कर्ज कैसे-उतारेंगे हम? फिर वह बोला हमें तथागत ने याद किया, कितना धनी कर गया है हमें वह। हमारे जैसा कौन धनी है इस संसार में? जैसे-जैसे खबर पहुँचती गई लोग दर्शन के लिए पंक्तिबद्ध आते रहे। सात दिनों के लिए उसकी मृतक देह को दर्शन के लिए संभाला गया। अमरपाली अपने संगीत मण्डल सहित आई। माथा टेका और समीप बैठकर भजन गाने लगी। उसका सारा समूह पूरा सप्ताह वहीं रहा। अमरपाली निरंतर गाती रही।

जब अर्थी शमशान घाट की तरफ लेकर चले तो अमरपाली काफिले के आगे हो गई। शमशान घाट तक नाचती गई और साथी गाते रहे।

अस्थियाँ लेने मगध का राजा अजातशत्रु आया। वैशाली गणतन्त्र के छह राजा आए और अस्थियाँ लेने के लिए प्रार्थना की। कपिलवस्तु के साक्य आए, अल्लकलप का बयूली, रामगाम का राजा कोलियस, पावा का राजा मल्लस और पिप्लीवण का राजा मौर्य आया।

अस्थियाँ चुनते समय उपाली ने ये श्रद्धांजलि भेंट की- "हे भिक्षुओं, श्रमणों, साधुओं और गृहस्थियों, हमारा मित्र हमसे बिछुड़ा नहीं है। लाखों आँखों में वह रोशनी बन कर ठहर गया है। आँखों वाले उसे देख लिया करेंगे। अनेकों राजा-महाराजा आए हैं जो अस्थियाँ लेने के लिए प्रार्थना कर रहे थे। हम उन्हें अस्थियाँ देंगे। वह कह रहे थे कि राजधानियों में अस्थियाँ का सम्मान कर वह बौद्ध स्तूपों, मठों का निर्माण करेंगे। परन्तु हमारे सिद्धार्थ को यदि ईंटे और चूना पसंद होते तो वह कपिलवस्तु के महलों का त्याग न करता। हमारे मन उसके निवास स्थान बनेंगे।

हमारे लिए एक मुश्किल पैदा कर गया है साक्यमुनि। पहले अपने हृदयों में हम स्वयं रहते थे इसलिए जैसे भी ये घर थे, ठीक थे। परन्तु अब इन घरों में तथागत का निवास होगा। इसलिए हृदयों के यह महल साफ रखने होंगे। परिश्रम करना होगा। लगातार सावधान रहना होगा।

हे भिक्षुओं, हे गृहस्थियों! अब तुम सभी अपने-अपने स्थानों पर चले जाओ। धरती पर मंदार के पुष्पों की भारी वर्षा हुई है। घुटने-घुटने तक बिखरे पुष्पों में से निकल कर जाना होगा। गृहस्थी घर जाएँ, भिक्षु जंगलों में। आप सभी, जब अपने अपने स्थानों पर पहुँचोगे तो रंगों और सुगन्धियों से भीगे हुए पहुँचोगे। तथागत सहायक हों।"

उपाली के बाद बुद्ध के शिष्य और उनके मित्र अनुरूद्ध ने ये शब्द कहे-

"समस्त सृष्टि का उदय, अंत और उद्देश, सत्य है। अपने निवास के लिए वह अनेक संसार निर्मित करता है। सत्य कभी शृंगार नहीं करता। वह एक है और अखण्ड है। मृत्यु की शक्ति से स्वतन्त्र, सर्वव्यापक और अनन्त शानों से लदा हुआ है वह। विश्व में बहुत सारे रंग-बिरंगे सत्य नहीं हैं। प्रत्येक काल में प्रत्येक स्थान पर वह अकेला रहा और अकालिक रहा। उसका कोई ठिकाना नहीं था।

"सृष्टि के प्रारम्भ में सूर्य, धरती और चन्द्रमा का मुख दिखाई दिया। वायुमण्डल के गर्दगुबार से ग्रस्त सत्य ने अनन्त प्रकाश प्रकट किया। परन्तु अभी उसको देखने वाली कोई आँख नहीं थी, सुनने वाला कोई कान नहीं था, उसके अर्थ समझने वाला कोई मन नहीं था। सृष्टि के इस असीमित प्रसार में सत्य को कोई ऐसा स्थान न मिला जहाँ वह आनन्द से निवास करता।

"युग बीते और विकास के अनेक पड़ावों में से चेतना प्रकट हुई। जीवन ने नव संसार का सृजन किया जिसमें प्रबल भावनाएँ थीं, असीम वासना थी और एक अजय शक्ति लहराने लगी। विश्व पृथक समूहों में विभाजित हो गया। सुख के साथ दुःख, आत्म के साथ अनात्म, मित्रता के साथ शत्रुता, प्रेम के साथ द्वेष, सभी समान रूप से विकसित हुए और वृद्धि हुई। भावनाओं के इस दौर में सत्य थरथराया और अत्यधिक शक्तिशाली होते हुए भी उसे विश्व में कोई ऐसा स्थान न मिला जहाँ वह दो क्षण शांति से ठहर सकता।

"जीवन संग्राम में से दर्शन का जन्म हुआ। दर्शन ने आत्मा को मार्ग दिखाना प्रारम्भ कर दिया। समस्त रचना के बीच बैठकर दर्शन ने अपने सिर पर सत्ता का मुकुट पहन लिया। पशुओं पर और सभी तत्त्वों पर दर्शन ने विजय प्राप्त की। परन्तु साथ-साथ दर्शन ने द्वेष, हवस और अहंकार की अग्नि में और इंधन फेंक कर आग को भड़काया। दर्शन के दुर्ग की सत्य ने अनेक बार मरम्मत की। परन्तु इस दुर्ग में कोई स्थान ऐसा न था जहाँ वह स्थायी, शांत ठिकाना बना सकता।

सत्य ने दर्शन में ठहरना चाहा तो देखा कि दर्शन द्विधारी छूरा है जो पहले निर्माण करता है फिर काटता है। सत्य ने कहा- दर्शन मेरा विश्राम स्थल है। कुछ समय यहाँ विश्राम करूँगा। फिर चला जाऊँगा, क्योंकि यह मेरा घर नहीं हैं। यद्यपि दर्शन से सत्य का कुछ बोध होता है परन्तु विशुद्ध दर्शन खाली पलंग है जिस पर जब सत्य बैठ गया तो अमर लौकिक सरकार प्रकट होती है।

दर्शन ने अनेक बार प्रयास किए कि आत्म को बलवान करके सभी जीवों में द्वेष, वासना और पापों का नाश कर सके, परन्तु इन प्रयासों को करते करते दर्शन थक गया, टूट गया और मनुष्य उसके मलबे के नीचे दब गए। तब सत्य, बुद्ध

बनकर विश्व में प्रकाशित हुआ जहाँ उसे पूर्ण विश्राम मिला। उसने निर्णय किया कि यही उसका ठिकाना बने।

हे बुद्ध! सत्य का और कहीं ठिकाना होता यह वहाँ जाता। परन्तु यह तुम्हारे पास आया है। कभी इसने सृष्टि और भावनाओं में रूकना चाहा था परन्तु यह स्थान इसको अच्छा नहीं लगा। वह यहाँ से चला गया था परन्तु इसके कदमों के निशान वहाँ अवशेष हैं।

सत्य ने बुद्ध द्वारा मनुष्यों और देवताओं से कहा, वस्तुओं को उनके वास्तविक रूप में देखो। उसने दर्शन से कहा तुम प्यार बन जाओ। जब मेरे सामने आयो तो करुणा बनकर आओ। दर्शन तत्काल दया बन गया। सत्य प्रसन्न हुआ- युगों बाद उसे, एक खानाबदोश को, रहने के लिए अच्छा घर मिला जिसका नाम उसने बुद्ध रखा।

बुद्ध! हे कृपालु बुद्ध, हे पवित्र बुद्ध, हे सम्पूर्ण बुद्ध, तुम्हारे द्वारा अभिव्यक्त सत्य धरती पर प्रसरित हुआ और राज्य करने लगा। दर अनंत हैं यद्यपि, परन्तु हे बुद्ध, सत्य तेरी शरण में आया है। इसका अन्य कोई ठिकाना नहीं। इस खानाबदोश पर रहम करो।

यह तथागत के वचन हैं। यह हुसनल चिराग और साहिब-दिमाग की वाणी है। हमारे नाम लिखी हुई यह बुद्ध की वसीयत है।

हे बुद्ध, हमें अपने शिष्यों के रूप में स्वीकार करो। हे बुद्ध, भटके हुए व्यक्तियों को वापस घर ले आओ।"

बुद्ध की मृत्यु के बाद अमरपाली किसी राजमहल में गाने नहीं गई। वह बौद्धगाथाएँ गाती। बौद्ध स्तुति गाती। बदनाम हवेली आदर्श बौद्ध-आश्रम बन गई। भिक्षु, गृहस्थी, पुरुष, स्त्रियाँ उसे सुनने के लिए जाते, अकसर कहा करती, "राजकुमार, धनी सेठ, राजा-महाराजा मुझे निमंत्रण देते, अधिक धन देते, सत्कार देते। परन्तु अच्छे न लगते। कैसा था हमारा यह भिक्षु कि हम अपना सब कुछ उसके चरणों में समर्पित करते समय बार-बार सोचते कि वह स्वीकार करेगा या नहीं। महल त्याग कर ठूठा हाथ में पकड़ा परन्तु वह भिक्षु कब बना? हमारे हृदय उसकी राजधानियाँ बने। एक कपिलवस्तु छोड़कर उसने लाखों हृदयों में अपने महल बनाए और राज्य करने लगा। चालाक निकला गौतम नाम का यह भिक्षु। बुद्धम् शरणम् गच्छामि।"

कुछ बौद्ध वाक्य

- मनुष्यों का जीवन छोटा है। कोई ऐसा नहीं जिसके पास मृत्यु न आई हो।
- जिस ब्रह्म के विषय में कहा गया है उसका एक दिन एक हज़ार वर्ष के बराबर है, उसने भी यही कहा था कि उसका जीवन थोड़े समय का है।

- जीवन तुषार बूंद की तरह है, पानी पर बुलबुले के समान, धूप में घास के ऊपर तुषार बूंद की जितनी उम्र है, इतना ही जीवन पथ है मनुष्य का।
- जितनी मन के एक ख्याल की अवधि है, जितना लम्बा पथ रथ के पहिए का एक चक्कर तय करता है- जीवन मार्ग इतना ही है बस।
- पिछले क्षण में जीवन की शक्ति थी, अगला पल मौत की शक्ति हो जाएगा। सुख-दुःख से भरा जीवन एक क्षण में आँख झपकते ही बीत जाता है।
- जीवन और मृत्यु, यादें हैं पल भर की - अन्य कुछ नहीं। जीवन एक छोटा विचार ही तो है बस, और क्या है?
- पर्वत के शिखर से नीचे गिरता पत्थर जीवन की तरह है। हलचल आने पर वह सोचने लगता है कि जीवन धड़क रहा है। वास्तव में उसकी यात्रा मृत्यु की तरफ रवानगी है।
- अस्तित्व का विराम ही निर्वाण है। विश्व पल-पल घुल रहा है। विश्व पल-पल मिट रहा है।
- एक पल और एक युग में कोई अन्तर नहीं। जिस भाग्यशाली पल ने यह भेद जान लिया वह पल स्वयं युग हो गया। जिस अभागे युग को इस बात की समझ नहीं आई वह पल के समान हुआ।
- सौभाग्यशाली हैं वह जिन्होंने अपना क्षण पहचान कर उसको पकड़ लिया। रोएँगे वह जिनके हाथों से उनका पल निकल गया।
- अखण्डित दिखाई दे रहे तत्त्व खण्डित होंगे और घुल जायेंगे। तलाश करो जो अमर है- धर्म के सिवा कुछ भी अमर नहीं। सत्य के सिवा कुछ भी स्थिर नहीं।

कनफिउशियस

जीवन और उपदेश

ईसवी सन से साढे पाँच सौ साल पहले चीन के तीसरे साम्राज्य वंश का अंत समीप आ रहा था। सामाजिक स्थितियाँ अशांत थीं। केन्द्रीय सत्ता विखण्डित हो रही थी और जागीरदारियाँ छोटी रियासतें बनाने लगी थीं। इस रियासती प्रबन्ध में लोगों को लूटा जाने लगा। शक्तिशाली लोगों के पास छल कपट से धन बढ़ने लगा और निर्धनों की स्थिति दयनीय हो गई। निर्धन किसान और मज़दूर पथरीली धरती पर जीवित रहने के लिए संघर्ष कर रहे थे, सत्ता का पतन हो चुका था और सदाचार दिवालेपन का शिकार हो गया था।

कनफिउशियस ने न तो किसी नए धर्म की नींव रखी, न किसी पुराने धर्म में सुधार किया। उसने देशवासियों को वह खुशहाल भूतकाल याद दिलाया जब लोग छोटी-मोटी धार्मिक परम्पराओं को निभाते थे और शांति से सोते थे। उसने अपने विद्यार्थियों और श्रोताओं को विश्वास दिलाया कि गुजरा हुआ अच्छा समय फिर से वापस बुलाया जा सकता है। महात्मा ने पुराने क्लासीकल (शास्त्रीय) ग्रन्थों का सम्पादन किया। उसका युग चीन की बौद्धिकता का शिरोमणि काल है। उसने अपने सदाचार शास्त्र का निर्माण वैज्ञानिक स्तर पर किया।

महात्मा कनफिउशियस का जन्म एक निर्धन परिवार में 551 ईसवी पूर्व में हुआ। यह परिवार शातुंग पैनिनलसुला के नीचे लू रियासत में कभी बहुत समृद्ध एवं प्रतिष्ठित परिवार था और राजसी कार्यो में भागीदार था परन्तु रियासत में बगावत हो गई और कनफिउशियस के पूर्वज यहाँ से जान बचाकर चले गए और शरणार्थी हो गए। जन्म के कुछ समय बाद पिता की मृत्यु हो गई और संकटों का सामना करते हुए माँ ने बच्चे का पालन-पोषण किया। कनफिउशियस की रचनाओं में

अंकित है, "मैंने निर्धन परिवार में जन्म लिया तथा बड़ा हुआ, इस कारण वह सभी काम कर लेता हूँ जो घटिया समझे जाते हैं और जिन्हें प्रतिष्ठित लोग करना पसंद नहीं करते। निर्धनता ने मुझे रूह तक घायल किया हुआ है और यह घाव अभी तक ठीक नहीं हुए।"

चीनी भाषा में उसका नाम को-फू-ज़ू है। माँ ने कठिन परिस्थितियों में भी बच्चे की शिक्षा पूर्ण कराने में कोई कमी न रखी। गाँव के अध्यापक से पढ़ना-लिखना सीखा, फिर उसका झुकाव कविता और प्राचीन इतिहास में हो गया। वह चीन के शास्त्रीय संगीत की गहराई तक पहुँचा। वह कुशल वीणा वादक था और पुरातन लोक-गीतों की धुनों को गाकर प्रसन्न होता। पन्द्रह वर्ष की आयु में उसने स्वयं से एक दृढ़ निर्णय किया कि वह केवल अध्ययन और अध्यापन करेगा। यही कार्य उसने पूरी आयु किया। उसे शिकार खेलने का शौक था परन्तु वह अपने विद्यार्थियों से कहा करता कि शिकार करते समय या खेलते समय धोखा नहीं करना और विपदा में भी सच्चाई का साथ नहीं छोड़ता।

बीस वर्ष की आयु में टैक्स ग्रहण कर्त्ता के रूप में नौकरी शुरू की और विवाह करवाया। विवाह सफल नहीं हुआ परन्तु वह कहा करता था, "इस का एक लाभ भी हुआ। घर में पुत्र का जन्म हुआ तो मुझे तसल्ली हो गई कि अब घर की जिम्मेवारियाँ मेरा पुत्र संभाल लेगा और मैं कुछ पढ़ सकूँगा। 25 वर्ष की आयु में अपनी माँ की मृत्यु के बाद वह इतना उदास हो गया कि तीन वर्ष दुःख में डूबा रहा। न पढ़ सकता था और न ही पढ़ा सकता था। गाने लगता तो वीणा का सुर आवाज़ से मेल न खाता।

आखिर उसने स्वयं को संभाला और अध्यापन कार्य शुरू कर दिया। इतिहास, काव्य, राजनीति, नैतिक शास्त्र, संगीत और धर्म शिक्षा उसके विषय थे। विद्यार्थी उसके आस-पास घूमते रहते। अनेक तो वर्षों तक उसके साथ ही रहे। उच्च घरानों के बच्चे उसके पास सीखने के लिए आते परन्तु महात्मा कहा करता, "समाज जिस हद तक पतित हो चुका है, केवल विद्या प्राप्त करने से ही इसका उपचार नहीं होगा। हमें सत्ता संभालनी होगी, खुद शासन नहीं करेंगे तो बर्बाद हो जायेंगे।"

एक अवसर ऐसा भी आया कि जब उसे 'लू' नामक रियासत में लोक निर्माण विभाग का मन्त्री नियुक्त किया गया। फिर वह चीफ जस्टिस बना और बाद में प्रधान मन्त्री। उसने इतनी सफलतापूर्वक प्रबन्ध चलाया कि विरोधियों ने ईर्ष्या वश उसकी बदनामी करनी शुरू कर दी। षड्यन्त्र रचे जाने लगे। अंत में महात्मा ने सत्ता छोड़ दी।

पृष्ठभूमि

पुरातन चीन, नगर-राजाओं का एक समूह था। प्रत्येक शहर का एक राजा होता था और आस-पास के खेत और गाँव उसकी रियासत के भाग होते थे। शहरों में धनी और शिक्षित लोग रहते थे और गाँवों में अशिक्षित निर्धन मज़दूर। शहरों के आस-पास बड़ी-बड़ी इमारतें बनायी जातीं। शाम होते ही दरवाज़े बंद हो जाते ताकि चोरों और डकैतों से बचा जा सके। डाकुओं को गाँवों पर हमला करके क्या मिलना था, जहाँ लोग रोटी के लिए भी तरसते थे। नगर को राजधानी या दौलतखाना कहा जाता था और इन शब्दों का प्रयोग आज तक हमारी सभ्यता में आमतौर पर किया जाता है।

सिक्कों का प्रयोग आम नहीं होता था। लेन-देन वस्तुओं के साथ किया जाता था। कौड़ियों और सीपियों का प्रयोग कुछ छोटे सिक्कों के स्थान पर किया जाता था। मूल्यवान पत्थर, सोना, चांदी, पशु और रेशम, पैसे की अदायगी के साधन थे। ईसवी से 1200 वर्ष पहले के चांदी के खुदे हुए सिक्के मिले हैं। जो सिक्के बनाए जाते थे, उनमें राज चिह्न अंकित होता था। समान मूल्य और एक ही धातु से बने हुए 18 सिक्के तोले गए तो देखा कि उनका वज़न अलग अलग निकला। दो से चार ग्राम तक के वज़न की बढ़ोतरी और कमी सिद्ध करती है कि मामूली सा हिसाब-किताब था। कीमती धातुओं की कमी होने के कारण कभी-कभी सफेद हिरण की खाल के टुकड़ों पर मोहर लगा कर करंसी का काम लिया जाता था। करंसी इतनी भारी थी कि आयात-निर्यात पर बहुत व्यय हो जाता था। करंसी पर बादशाह का अधिकार था।

लोगों के लिए राजा ईश्वर के समान था। उसकी इच्छा अनुसार सरकार चलती। लिखित कानून कोई नहीं था। दरियाओं में से छोटी-छोटी नहरें निकाल कर सिंचाई की जाती। यह राजा की इच्छानुसार होता। प्राचीन चीन के लोकगीतों में राजा की स्तुति मिलती है। राज्य की प्रशंसा में भजन रचे और गाये जाते। राजा को सम्बोधित एक भजन है-

तुम हमें जीवन देने वाले हो,
तुम हमारे अन्नदाता हो,
तुम्हारी खुशी हो तो फसलें उगती हैं,
तुम्हारी नाराज़गी हमारी मौत है।

लोगों का रूहों और देवताओं में विश्वास था। ईश्वर एक है ऐसा विचार अभी पैदा नहीं हुआ था। अच्छे, सच्चे, भले लोगों को दुःख सहते देख कनफिउशियस ने कहा था कि देवताओं की इच्छा संतुलित नहीं है। यह उसका कुदरती शक्तियों के खिलाफ रोष था। यदि देवता राज्य कार्यों में सहायक होते, सफलता देते, फसलें

अच्छी होती, तब राजा उनकी पूजा करता और उनका सम्मान बढ़ा देता परन्तु यदि देवता राजा और प्रजा को हानि पहुँचाते तो राजा उनका सम्मान कम कर देता। एक राजा ने तो क्रोधित होकर तासी पर्वत के देवता को कोड़ों से मारा (काल्पनिक.... हवा में कोड़ा उछाल के)। किसी राजा की हार-जीत का कारण देवता को माना जाता था। विजयी राजा के देवता शक्तिशाली माने जाते थे और पराजित राजा के निर्बल। बाढ़ आ जाती या अकाल पड़ जाता तो यह माना जाता कि देवता, राजा का कहना मानने से हट गए हैं, अर्थात राजा में चमत्कार दिखाने की शक्तियाँ नहीं रहीं। राजा लोगों के सामने तप करता और अपने पापों की क्षमा मांगता। यह परम्परा आधुनिक काल में भी चलती रही। यहाँ तक कि 1832 ईसवी में अकाल पड़ गया था, राजा ने लोगों के सामने गुनाह कबूल किए तो वर्षा हुई। प्राचीन समय में ऐसे मौके भी आए कि राजा को आत्महत्या करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

मैक्सवेबर लिखता है कि चीन की रूहानियत में पैगंबरों ने कभी कोई इंकलाब नहीं लाया। साधारण लोग पूजा पाठ नहीं करते थे क्योंकि उन्हें पूजा करनी नहीं आती थी। पुजारी या बादशाह इस तरह परम्परा को निभाते थे। मुक्ति का सिद्धान्त या विश्वास प्रचलित नहीं था।

कनफिउशियस ने सर्वप्रथम यह कहा कि धर्म सभी लोगों के लिए बहुत जरूरी है। केवल राजा या पुजारी के हाथ में धर्म देना अनुचित है। विश्वास किए बिना संसार के नियमित कार्य नहीं चल सकते। राजा के लिए अनिवार्य है कि वह लोगों को रोटी बेशक न दे... धर्म दे, न्याय दे... नहीं तो उसका राज्य चल नहीं सकेगा। देवताओं की भीड़ में राजा शिरोमणि देवता होता था। वह आकाश पुत्र कहलाता था।

चीनी भाषा में धर्म के लिए कोई उचित शब्द नहीं मिलता। एक शब्द है 'सिद्धान्त', वह सिद्धान्त जो विद्वानों ने बनाए। दूसरा शब्द है 'रस्म'। सिद्धान्त और रस्में धार्मिक हैं या वैसे ही सामान्य सामाजिक परम्पराएँ हैं, कुछ पता नहीं चलता। कनफिउशियस ने जो भी मत पेश किया उसे चीन में किसी धर्म का नाम नहीं दिया गया, बल्कि विद्वानों के नियम कहा जाता है।

रस्म-रिवाज़ जो भी रहे, चीनी लोगों ने अपना सम्बन्ध दृश्यमान जगत के साथ रखा। लम्बी आयु और खुशहाल जीवन की इच्छाएँ कीं। जो व्यक्ति मुखिया बनाए गए वह नियमों में पक्के रहते और चीनियों के विश्वास अनुसार वह कभी नहीं मरते। मृत्यु पर विजय बड़ी से बड़ी प्राप्ति मानी गई। संतान प्राप्ति, धन की इच्छा, स्वास्थ्य और अच्छा भोजन प्रार्थनाओं द्वारा मांगा जाता। मिश्रवासियों के रस्म-रिवाज़ विपरीत थे। मिश्र के लोगों द्वारा मंमी बनाकर शव संभालने का भाव यह

था कि इनमें अभी जान है और इन्हें सुख-दुःख का अनुभव होता है। इसी कारण शवों के समीप खाने-पीने की वस्तुएँ रखी जाती थीं। चीनियों के लिए मृत्यु के बाद और कुछ नहीं था। इसी कारण वह मृत्यु को अधिक से अधिक दूर रखना चाहते थे। कनफिउशियस का विचार है कि मृत्यु के बाद आत्मा भाप के समान उड़ जाती है, गर्द गुबार में मिल कर नष्ट हो जाती है।

कनफिउशियस का पुनर्जन्म और परमात्मा में कोई विश्वास नहीं था। इस आधार पर उसे शंकावादी या नास्तिक कहा जा सकता है। राज्य का धर्म सीधा-सादा था। बलि देना, प्रार्थना करना, संगीत और नृत्य, धर्म के अंग थे। कनफिउशियस के सिद्धान्तों में व्यक्तिगत प्रार्थना का कोई स्थान नहीं है। वह जब बीमार हुआ तो अपने स्वास्थ्य के लिए शिष्यों को प्रार्थना करने से रोक दिया। स्वयं कई-कई वर्ष तक प्रार्थना नहीं करता था। कहा जाता है कि उसके अस्वस्थ होने पर राजाओं और राज्य के उच्च अधिकारियों ने उसके लिए प्रार्थनाएँ की थीं।

जीवन का सुख कनफिउशियस ने धर्म में से नहीं बल्कि सदाचार के नियमों में से ढूंढने का प्रयास किया। उसके सिद्धान्तों में प्रभु की देन नामक कोई कल्पना नहीं थी। प्रार्थना द्वारा गुनाह माफ़ किए जाने में कनफिउशियस का विश्वास नहीं था। वह कहता था कि मनुष्य चाहता है कि मरने के बाद उसे याद रखा जाए। नेक व्यक्तियों को लोग याद रखते भी हैं, परन्तु इसका किसी प्रकार की मुक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं।

कनफिउशियस के नैतिक शास्त्र और बुद्ध मत के नैतिक शास्त्र में काफी समानता है। दोनों का ईश्वर से कोई सम्बन्ध नहीं। चीनी महात्मा इस संसार के कुदरती नियमों से समझौता करने का इच्छुक है और चाहता है कि व्यक्ति अपनी जगह पहचाने। जब कुदरत की इच्छा का विरोध होने लगे तब संकट आते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में बहुत वर्षा हुई तो इसका कारण यह बताया गया कि पुलिस ने अत्याचार किए थे, इस कारण प्रकृति क्रोधित हो गई। राजा का कर्तव्य है अनपढ़ गरीब प्रजा पर बच्चों के समान कृपा करे क्योंकि प्रकृति की अनहोनियों का कारण उच्च अधिकारी होते हैं परन्तु इसकी सज़ा आम जनता को भुगतनी पड़ती है।

महात्मा कहा करता था, विद्या प्राप्त करने का लाभ यही है कि विद्वान प्रकृति के कानून का पता लगाता है, उनके अनुसार स्वयं चलता है और दूसरों को चलने की प्रेरणा देता है। प्रकृति का विरोध करना ही छल है। इसके परिणाम भयंकर होते हैं। अतः ज्ञान प्रत्येक विपदा की जड़ काटता है। जहाँ अज्ञानता होगी, कुदरत का विधान वहाँ भंग होगा और संकट आयेंगे, तबाही होगी।

महात्मा का विचार था कि नेक व्यक्तियों पर जादू का कोई प्रभाव नहीं होता। नेकी महान है, अमर और शक्तिशाली है। जो व्यक्ति संयमी जीवन बिता रहा है उसे भूतों से भयभीत होने की जरूरत नहीं। जब उच्च अधिकारियों के पास नेकी न रहे तब आत्माएँ बलवान हो जाती हैं और दुःखी करती हैं। कनफिउशियस एकांत में तपस्या कर सिद्धियाँ प्राप्त करने का विरोधी था और कहा करता था कि यह सस्ती शोहरत है। हाँ, कभी-कभी कहा करता था कि आत्मविश्वासी जीवन बिताने वाले व्यक्ति भविष्य का संकेत प्राप्त कर सकते हैं।

इस महात्मा के सिद्धान्त बुद्ध मत से इस आधार पर अलग थे कि वह बुद्ध के समान इच्छाओं का त्याग करने के लिए नहीं कहता था, केवल निरर्थक इच्छाओं का त्याग करने के लिए कहता था। दूसरा अंतर यह है कि निर्वाण (मुक्ति) की कोई जरूरत नहीं। संसार से मुक्त न हो, इसमें शामिल रहो, इसमें मिल जाओ, संसार को नेक व्यक्तियों की अधिक जरूरत है और उनका कण-कण इस धरती में समा जाना चाहिए।

कनफिउशियस को न आत्मा के बचाव की चिन्ता है न पुनर्जन्म की परवाह। दोनों सिद्धान्त उसके लिए अजनबी हैं। वह आत्मसंयम पर बल देता है। उसका कहना है बुराई की चिन्ता नहीं क्योंकि यह मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। आदमी का कभी पतन नहीं हो सकता यदि वह स्वयं चेतन रहे। पवित्र जीवन में आई हुई दरार बुराई है, अन्य कहीं बुराई नहीं।

महात्मा कनफिउशियस उस व्यक्ति की प्रशंसा करता है जिसको पिता ने न सुनने योग्य और न ही सहने योग्य बातें कह दी परन्तु पुत्र ने क्रोध नहीं जताया। पुत्र खुले दिल वाला निकला। परन्तु पिता ने क्रोध किया था तो अपनी जिम्मेवारी निभाते हुए ऐसा किया था। पुत्र के साथ उसकी कोई शत्रुता तो थी नहीं। महात्मा जब राज्यमन्त्री था तब कानून को संयमपूर्वक लागू किया। वह कहता था, किसी पर रोब डालना, हुक्म चलाना घटिया चिंतन से भी अधिक बुरा है और व्यर्थ ही खर्च करना कंजूसी से भी अधिक बुरा कार्य है। यह बात नहीं कि कंजूसी करना अच्छी बात है, यह तो व्यक्ति को जानवर बना देती है, परन्तु अय्याशी इससे भी बुरी है। आदर्श सरकार वह है जिसके नागरिक निर्धनता में शर्म अनुभव करें, परन्तु सरकारी प्रबन्ध यदि बुरा है तो धनी होना भी शर्मनाक है।

महात्मा ने कहा कि सरकारी कर्मचारी यदि सीधे या किसी भी तरह लाभदायक निजी व्यवसाय करते हैं उनको तुरंत रोका जाए। यह अनैतिक कार्य है। कर्मचारी अपनी पदवी का दुरूपयोग करेगा। महात्मा के लाभ-हानि के सिद्धान्त, मांग

और पूर्ति के सिद्धान्त, आधुनिक अर्थ-शास्त्र के सिद्धान्तों से काफी समानता रखते हैं। ब्याज को मूलधन का बच्चा कहा जाता है।

यह कनफिउशियस के क्रियात्मक दर्शन का ही प्रभाव था कि चीन में अनेक बार बौद्धों के मठ बंद करवाए गए क्योंकि वहाँ ऐसे बेकार व्यक्ति रहते थे, जो समाज पर बोझ थे। महात्मा, यदि शाही ठाठ-बाठ और अय्याशी के विरूद्ध थे तो वह तप और संसार त्याग जैसे सिद्धान्तों का भी विरोध करते थे। कर्म-काण्ड से उसे सख्त घृणा थी। उसका कथन है, "बादशाह धार्मिक रस्में निभाते हैं ताकि उनका शासन सलामत रहे। यदि रस्में निभाने से सरकारें बन सकतीं तो पुजारी संसार के बादशाह होते, यदि रस्में निभाते निभाते सत्ता नष्ट हो गई, तो फिर क्यों करते हो यह सभी आडम्बर?" वह चीन के सभी धर्मो और सम्प्रदाओं से पहले हुआ है परन्तु इतनी प्राचीनता के बावजूद भी उसके विचारों में नवीनता है।

वह संगीत का सम्मान करता था। उसने कहा कि जहाँ कहीं तीन व्यक्ति इकट्ठे हो, वहाँ मेरा मालिक होता है। कनफिउशियस के प्रभाव के कारण सरकार कर्मचारियों को नियुक्त करने के लिए परीक्षाएँ लेने लगी। नौकरी करने का इच्छुक बेशक 90 वर्ष का बुजुर्ग ही क्यों न हो परीक्षा पास करनी जरूरी थी। वह कहा करता था कि पढ़ाई-लिखाई के बिना व्यक्ति बांझ हो जाता है। वह जब भी बातें करता तो पुरातन विद्वानों के विवरण अवश्य देता। एक बार किसी ने कहा, क्यों देते हो?" महात्मा ने कहा, मैं तुम्हारे घर भोजन करने गया तो सिरका आप पड़ोसियों के घर से मांग कर लाये, तो भी मेरे मन में आपके प्रति सम्मान था, पड़ोसियों के प्रति नहीं।

पाँच मुख्य सद्गुण

कनफिउशियस के सिद्धान्त सदाचार शास्त्र के नियम ही थे जो बार-बार मनुष्य को नेक बनने की प्रेरणा देते थे। महात्मा के समय का चीनी समाज बुरी तरह भ्रष्ट हो चुका था परन्तु महात्मा का विश्वास था कि मूल रूप से व्यक्ति नेक है। कुछ समय से मनुष्य बुरा हो गया है, बुराई कुछ समय के लिए ही है, उसके सुधरने की संभावना है। मनुष्य के सामने दो रास्ते होते हैं नेकी का और बुराई का। वह किसी भी मार्ग का चयन कर लेता है, परन्तु चयनित रास्ता वह कभी छोड़ता ही नहीं, ऐसी बात नहीं। वह फिर से वापस लौट सकता है। उसे बुराई की तरफ बढ़ने से रोकना है। उसने कहा था, "जो व्यक्ति नेकी के मार्ग पर नहीं चलता था, यदि मैं उसे बुरा करने से रोकता तो बहुत समय तक मैं बेचैन अवश्य रहता, ऐसा करते हुए मैंने अनेक बार स्वयं कठिनाइयों को जन्म दिया परन्तु यह कठिनाइयाँ मुझे शांति देती। मैं सुखपूर्वक सोता क्योंकि मैं नेक हूँ।" महात्मा ने पाँच सद्गुण निश्चित किए।

उसकी रचनाओं में अनेक बार 'ली' शब्द का प्रयोग किया गया है। चीन के काफी प्राचीन शब्द ऐसे हैं जिनका उचित अर्थ करना और उसके समान अर्थ वाले शब्द ढूंढना कठिन है। 'ली' ऐसा ही शब्द है। इसका अर्थ है उचितता, श्रेष्ठता, शराफत। धार्मिक रस्मों को भी 'ली' कहा गया है, यहाँ तक कि संगीत के लिए भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है। लिन यू तांग के शब्दों में 'ली' आदर्श सामाजिक कानून है जहाँ प्रत्येक चीज़ अपने स्थान पर स्थित हो। समाज, धर्म और सदाचार के मार्ग पर चले।

सामंत आई ने कनफिउशियस से पूछा, "महात्मा जी 'ली' किसे कहा जाता है? आप हमेशा कहा करते हो कि यह बहुत महत्त्वपूर्ण वस्तु है।" महात्मा ने कहा, "मुझे पता नहीं चलता यह क्या है। मैं अभी समझ नहीं सका इसे।" आई ने फिर कहा, "फिर आप इसके विषय में आम बात करते हो तो कुछ बताएँ।" महात्मा ने कहा, "मैं केवल यह जानता हूँ कि जीने के लिए व्यक्तियों को जिन वस्तुओं की जरूरत होती है, ली उनमें से सबसे जरूरी है। इसके बोध के अभाव में न तो पूजा हो सकती है, न विश्व की शक्तियों को समझा जा सकता है। बादशाहों का मन्त्रियों के प्रति, शासकों का प्रजा के प्रति, पुरुषों का स्त्रियों के प्रति, माता-पिता का बच्चों के प्रति क्या कर्तव्य है और क्या अधिकार है, यह ली निश्चित करती है। इस कारण प्रत्येक सभ्य मानव ली का सम्मान करता है।"

सू यू के साथ बातचीत करते हुए कनफिउशियस ने कहा, "ली समाज को गठित करती है। इससे सुख प्राप्त होता है। यह हमारा कवच है। इससे हमें मानसिक और शारीरिक सुरक्षा प्राप्त होती है।" सू यू ने फिर पूछा, "क्या ली इतनी जरूरी है?" महात्मा ने कहा, "प्राचीन राजाओं ने मानवीय स्वभाव को समतल रखने के लिए ली का प्रयोग किया और विश्व को जाना। जिसने ली को ग्रहण किया वह पार हो गया जिसने त्याग दिया वह मर गया।" ली का आधार स्वर्ग में है, रूप का निर्माण धरती पर किया जाता है और अंतिम संस्कार के समय, पित्रों की पूजा के समय, बाण चलाते समय, पगड़ी बांधते समय, न्यायलायों और राजनीतिक सम्बन्धों में प्रत्येक स्थान पर ली का आश्रय लिया जाता है। इसी कारण साधुओं ने ली को उत्तम कहा। ली के साथ परिवार, देश और संसार उचित रूप से चलता है। पाँच मानवीय रिश्तों पर ली का अधिकार है। मानवीय रिश्ते यह हैं-

बादशाह का प्रजा से रिश्ता
पिता का पुत्र से रिश्ता
पति का पत्नी से रिश्ता
भाइयों का आपस में और मित्रों का परस्पर रिश्ता

बड़ों का छोटों से रिश्ता।

यद्यपि कई और रिश्ते मानवों के मध्य बने हुए हैं, परन्तु केन्द्रीय महत्त्व रखने वाले यह पाँच रिश्ते हैं। मानवता की मंजिल विश्व व्यापक एकस्वरता है। मानव का धरती से धरती का आकाश से स्वर मिले तो विश्व उद्देश्य का बोध होता है।

महात्मा के अनुसार बुजुर्ग सुखी रहते हैं क्योंकि उन्होंने प्रकृति के साथ अपनी हैसियत निश्चित की हुई है। बड़े और छोटे यदि सभी अपनी अपनी हैसियत को जानते हों और इसे स्वीकार कर लें तो गड़बड़ होने का प्रश्न ही नहीं उठता। ताओवादियों ने महात्मा की इन बातों का उपहास उड़ाया परन्तु उसने दृढ़तापूर्वक सही को सही कहा। उसने कहा, दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार करो जैसा आप चाहते हो कि वह आपसे करें।

उसने कहा- जीवन में चार गुण निभाने योग्य हैं। जिनमें से मैं एक भी निभा नहीं सका। मुझे अपनी मां की सेवा उस प्रकार करनी चाहिए थी जैसा कि मैं सोचता हूँ कि मेरे बच्चे मेरी करें। मैंने ऐसा नहीं किया। मुझे अपने बादशाह का सत्कार करना चाहिए था जैसा कि मैं अपने अधीन वज़ीर से स्वयं के लिए आशा करता हूँ। बड़े भाई का सम्मान करना चाहिए। मित्रों का सम्मान करना चाहिए, परन्तु मैं कुछ नहीं कर सका। उससे पूछा गया कि जो बुरा करते हैं उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए? उसने कहा, जो नेक हैं उनके साथ नेकी करो, जो बुरे हैं उनके साथ न्याय करो। बुरों को न्याय के साथ निपटाओ क्योंकि यदि बुरे के साथ भला करते रहोगे तो शायद उसका हौंसला बढ़ जाए और वह सुधर नहीं सकेगा।

पाँच महान कर्तव्य

लाई ची ने कनफिउशियस के अध्ययन के बाद निम्नलिखित पाँच कर्तव्य निश्चित किए :-

पिता में दयालुता और पुत्र में संतान जैसी शुद्धता।
बड़े भाई में सौहार्दता और छोटे में विनम्रता।
पति का न्यायपूर्ण व्यवहार और पत्नी का आज्ञाकारी होना।
बड़ों में मानवीय सहानुभूति और छोटों में आदरभाव।
शासकों में उदारता और प्रजा में वफादारी।

जिस समाज में यह गुण है वहाँ ली है, वहाँ सुख है, वहाँ सहज है। ऐसे वातावरण में लोगों के आन्तरिक सद्गुण प्रकट होते हैं। न झगड़ा, न व्याकुलता, न

अन्याय दिखाई देता है। मित्रों में खुशी होती है। घर में खुशहाली होती है और राज्य में शांति। कनफिउशियस के काव्य संग्रह में वर्णित है-

जब पत्नियाँ, पुत्र और उनके बुर्जुग एक हों,
ऐसे होता है जैसे साज़ एकसुर हों।
भाइयों का मेल हो तो शांति हो,
संगीत की तारें ढीली नहीं होतीं।
खुशी और मिलाप का दीया घर में जलता है।
बच्चों के जन्म से रंगीन दिन आते हैं।

महात्मा निरर्थक चर्चा से सहमत नहीं थे। उसने अध्यात्मवाद सम्बन्धी काल्पनिक उड़ान नहीं भरी। जो कहा जीवन के लिए उपयोगी ही कहा। प्रत्येक समाज की छोटी से छोटी इकाई परिवार है, और परिवार पर संस्कृति निर्भर करती है। परिवार ठीक हो तो राष्ट्र ठीक होता है। चीन में परिवार के प्रति वफादारी से बड़ा अन्य कोई गुण नहीं माना जाता। आज की तरह यह नहीं था कि बालिग होने के बाद कोई भी अपनी मर्ज़ी कर सके, परिवार के साथ रहे या न। मौत तक परिवार की जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। पिता की आज्ञा का पालन करना है, पिता की मृत्यु के बाद बड़े भाई की आज्ञा का पालन करना है। पिता और बड़े भाई को भी त्याग के उच्च आदर्श कायम करने पड़ते हैं, तभी छोटे आज्ञा का पालन करेंगे। यदि संतान सही नहीं है तो इसके लिए पिता ही उत्तरदायी है क्योंकि उसने परिवार की तरफ पूरा ध्यान नहीं दिया, जितने समय तक पिता जीवित रहा, देखो किसके लिए जीया। जब चला गया तो देखो कैसे बिछुड़ा।

मिंग वू ने पुत्र के कर्तव्य पूछे तो महात्मा ने कहा, माता-पिता को तब कष्ट दो जब आप अस्वस्थ हो। वैसे कभी नहीं।

सू यू ने पुत्र के कर्तव्यों के विषय में पूछा तो महात्मा ने कहा, "जो व्यक्ति माता पिता को भोजन दे आजकल वही अच्छा समझा जाता है, भोजन तो हम अपने कुत्तों और घोड़ों को भी खिलाते हैं। यदि माता-पिता का आदर नहीं किया केवल रोटी ही दी, तो क्या अंतर हुआ उनमें और पशुओं में?

महात्मा ने कहा, "जब माता पिता जीवित हों तो उनकी आज्ञा लेकर ही घर से बाहर जाओ और वहीं जाओ जहाँ बताकर जा रहे हो।

कनफिउशियस अनुसार जीते जी माता पिता का सम्मान करना और उनकी मौत के बाद उनके दिखाए मार्ग पर चलना चाहिए। आज भी चीन में झूले से लेकर मृत्यु की शय्या तक माता पिता और संतान का रिश्ता अटूट और

सम्माननीय समझा जाता है। इस रिश्ते ने संसार को पवित्र बनाया और संसार में से मुसीबतों को कम किया।

स्पष्ट है कि वह अध्यात्मवादी नहीं था। चीन में ईश्वरवादी, रहस्यवादी या रूहानी झुकाव कम ही देखने को मिला है। कनफिउशियस का सिद्धान्त शुरू हुआ, फिर बौद्ध मत का प्रकाश हुआ और अंत में मार्क्सवाद को स्वीकृति दी गई। ... इन सभी मतों का ईश्वर से कोई सम्बन्ध नहीं। कनफिउशियस से पूर्व भी सदाचारक नियमावली का सत्कार अधिक था और धार्मिक परम्पराओं का दर्जा दूसरा था। महात्मा ने विश्वव्यापी नियमों को ताओ कहा। ताओ मानवीय जीवन को उसी प्रकार प्रभावित करता है, जैसे सूर्य ऋतुओं को। कथन है, नैतिक नियम पुरुष-स्त्रियों के लिए प्रकाशित हुआ और धरती आकाश पर छा गया। समस्त प्रकृति कानून में बंधी है। न कोई चमत्कार है न अनहोनी। घटनाएँ अनुशासन में रही हैं। यदि प्रकृति में आपको कार्य-कारण की स्पष्ट विधि दृष्टिगत नहीं हो रही तो आप अंधे हैं। प्रकृति में कोई समस्या नहीं, कोई उलझन नहीं। विश्व का एक निश्चित नियम है, अन्य कुछ नहीं।

479 पूर्व ईसवी सन् में इस महान दार्शनिक का देहांत हो गया। उसके अपूर्ण कार्यों को उसके विद्यार्थियों ने पूरा किया। महात्मा की शिक्षाओं, यादों और विचारों को सम्पादित किया गया। कनफिउशियस द्वारा रचित और कनफिउशियस के बारे में रचित साहित्य चीन की महान बौद्धिक निधि है जिस पर संसार को गर्व है।

कनफिउशियस की रचनाओं का संक्षिप्त विवरण

पचपन वर्ष की आयु में कनफिउशियस तीन शिष्यों को लेकर तेरह वर्ष तक स्थान-स्थान पर नौकरी की तलाश में घूमता रहा। चीनी रियासतों के राजा उसकी विद्वता और ईमानदारी से परिचित थे, परन्तु यह वस्तुएँ राजाओं के लिए किस काम की? सम्मान करने की अपेक्षा उसे संदेहात्मक दृष्टि से देखा जाने लगा। भ्रष्ट अधिकारी उसे समीप भी न आने देते, कुछ स्थानों पर उस पर हमले किए गए और उसे जान बचाकर भागना पड़ा। सुरक्षा के लिए वह अंगरक्षक रखता रहा। यह दशा देख एक व्यक्ति ने कहा, “महात्मा, सर्वज्ञाता होने के बाद भी क्या मिला आपको?” महात्मा ने उत्तर दिया, “तुम बताओ फिर क्या करूँ? किसी धनी के रथ का सारथी बन जाऊँ या धनुष चलाना शुरू करूँ?”

उसका एक विद्यार्थी सामंत आई के दरबार में काफी प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त हुआ तो उसने अपने अध्यापक का बहुत सम्मान किया। सामंत ने महात्मा को दरबार में बुला लिया। महत्त्वपूर्ण विषयों पर अकसर विचार-विमर्श करता। यह 484 ईसवी पूर्व की बात है जब उसकी आयु 67 वर्ष की थी। अधिकतर समय वह तब भी अध्यापन कार्य करता। उसने पुरातन चीनी ग्रन्थों को सम्पादित करने का महान कार्य पूरा किया। उसने सभी रचनाओं को भिन्न-भिन्न संग्रहों में एकत्रित किया। इन ग्रन्थों को *कनफिउशियस क्लासिकल* कहा जाता है। ये ग्रन्थ हैं :-

1. शूचिंग (इतिहास)
2. शीचिंग (काव्य संग्रह)
3. ली काई (धर्म ग्रन्थ)
4. आई चिंग (परिवर्तनों का ग्रन्थ)
5. चून चिऊ (बसंत-पतझड़ के वृत्तान्त)

1. शूचिंग

इतिहास का वह ग्रन्थ है जिस में 2400 ईसवी पूर्व, यानी आज से कोई साढे चार हजार वर्ष पहले से लेकर कनफिउशियस के समय तक के वृत्तान्त दर्ज हैं। दस्तावेज़ का रिकार्ड पूरे तथ्यों सहित दिया गया है इस पुस्तक में वर्णित है कि स्वप्न देखा गया है कि समस्त संसार की एक ही सत्ता हो और बादशाह नेक हो।

2. शीचिंग

इस पुस्तक में कविताएँ हैं। ये कविताएँ धार्मिक कम और समाज सुधारक अधिक हैं।

3. ली काई

इस पुस्तक में धार्मिक परम्पराओं का वर्णन है। बताया गया है कि क्या करने से परिवार ठीक ढंग से चल सकता है। नेक बनने के नियम और सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

4. आई चिंग

इस ग्रन्थ में प्राकृतिक परिवर्तनों का लेखा-जोखा है। ऋतुएँ कैसे परिवर्तित होती हैं, दिन-रात कैसे आते हैं, आदि विषयों पर लिखा गया है। पुस्तक के नाम से प्रतीत होता है कि इसमें वैज्ञानिक नियमों को सुलझाया गया है परन्तु ऐसी कोई बात नहीं। अधिकतर बातें समझ में नहीं आतीं।

इसमें राजनीति का भी उल्लेख है। 'लू' नामक रियासत, जिस में कनफिउशियस रहता था, उसके प्रबन्ध के विषय में लिखा है। अधिकतर महत्त्व इस

पक्ष को दिया गया है कि राजा नेक हों और संसार में नैतिकता का प्रभुत्व हो और आकाश इसको नियंत्रित करे।

5. चून चिऊ

इस ग्रन्थ में छह ऋतुओं की तरह प्रकृति चित्रण का विवरण है। चून चिऊ सहित इन पाँच ग्रन्थों को पंच-पातशाह (The Five Kings) भी कहा जाता है। यह चीन के बहुत ही सम्माननीय ग्रन्थ हैं।

इन पाँच क्लासिकल ग्रन्थों के अतिरिक्त चार अन्य पुस्तकें, कनफिउशियस के युग से सम्बन्धित हैं। इन पुस्तकों को 'चार शू'(The Four Shu) कहा जाता है इनके नाम हैं -

6. लू यू (The Lue-Yu)
7. ता शू (The Ta Hseuth)
8. चुंग युंग (The Chung-Yung)
9. मिंग जू (The Meng-tzu)

ये चार ग्रन्थ महात्मा कनफिउशियस की रचनाएँ नहीं। यह उसके विद्यार्थियों द्वारा सम्पादित पुस्तकें हैं। जो कुछ पढ़ाया करता था, कैसे उसके विचार थे और संवाद थे, उनको संग्रहित किया गया। इस प्रकार पहले पाँच ग्रन्थ, मूल ग्रन्थ (Original Sources) और पिछले चार ग्रन्थ (Secondary Literature) गौण साहित्य हुए।

चीन के लोग कभी बाल की खाल निकालने वाली प्रवृत्ति के नहीं रहे। वह कार्य से मतलब रखते थे और शांति प्रिय लोग थे। प्राचीन समय से लेकर अब तक इनका यही स्वभाव रहा है। कनफिउशियस को शताब्दियों तक इसी कारण पसंद किया गया क्योंकि वह कार्य को महत्त्व देता था। बौद्ध मत का प्रसार काफी तेज़ी से चीन में हुआ और आज तक लोगों के मन पर इसका प्रभाव है। यह भी इस कारण कि बुद्ध ने अध्यात्मवादी कोई रहस्यात्मक दर्शन प्रस्तुत नहीं किया अपितु नेक बनने का मार्ग ही बताया था। यही कारण है कि चीन के साधुओं और संतों ने भारतीय उपनिषद्कारों या अद्वैतवादियों जैसा गूढ़ ज्ञान नहीं दिया।

उक्त अंकित पांच क्लासिकल ग्रन्थों और चार सम्पादित ग्रन्थों में से कुछ विवरण देने उचित होंगे ताकि यह ज्ञात हो सके कि इन पुस्तकों में अध्ययन सामग्री किस प्रकार की है।

1. शूचिंग ग्रन्थ में से कुछ पंक्तियाँ

तेरहवें वर्ष की बसंत ऋतु में विशाल सभा हुई जिसमें एक बादशाह मांग चिंग अपने जागीरदारों और मित्रों के विशाल संगठन को सम्बोधित करता है। वह

एक युद्ध करना चाहता है क्योंकि उसका ख्याल है कि इसके अतिरिक्त अब कोई उपाय नहीं। वह निम्नलिखित शब्द कहता है-

'हे मेरी रियासतों पर पीढ़ी दर पीढ़ी राज्य करने वाले मित्र, मेरे सभी अफसर, मेरे प्रबन्ध में सहायता करने वाले दानिश्वर, मेरी घोषणा ध्यानपूर्वक सुनो।

"आकाश और धरती प्राणियों के माता-पिता हैं। सभी प्राणियों का प्रधान मनुष्य है। मनुष्यों में सबसे योग्य व्यक्ति ही महान सम्राट बनता है और वही लोगों का पिता है। परन्तु अब क्या हुआ कि शांग देश का राजा आकाश का सम्मान नहीं करता और प्रजा पर अत्याचार कर रहा है। वह मदिरा के नशे में डूबा रहता है और काम- वासनाओं में लिप्त रहता है। उसने लोगों के साथ ज्यादती करनी आरम्भ कर दी है। अपराधियों को दण्ड देने की बजाए वह उनके रिश्तेदारों, सगे- सम्बन्धियों को दण्ड दे रहा है। उसकी रियासत में सभी पदवियों पर रिश्तेदार ही नियुक्त होते हैं। महल बनवाने, दुर्ग निर्माण, उद्यान निर्माण, शाही मार्गों का निर्माण, झीलें खुदवानी, अय्याशी का साज़-सामान तैयार करवाना बस यही उसका एक काम रह गया था। यह आपके लिए बहुत दुःखदायी परिस्थितियाँ हैं क्योंकि आप प्रजा के हितैषी, रक्षक हो। भले, नेक व्यक्तियों को उसने आग में जला दिया है। गर्भवती स्त्रियों के पेट चीर दिए हैं, ऐसे कार्य किए हैं कि आकाश भय से कांप रहा है। उसने मेरे आदरणीय पित्रों पर अत्याचार करना चाहा है परन्तु उस क्रूर निर्दयी राजा की इच्छा पूरी नहीं हो सकी।

"इन कारणों से मैं आपका बच्चा, पारम्परिक राजा हूँ और हमने शांग को अनेक बार समझाया कि ऐसा न करे परन्तु उसे अपने किए का कोई पश्चात्ताप नहीं। वह पत्थर दिल बन चुका है। वह पालथी मार कर बैठा रहता है, न कभी धर्म का स्मरण किया न ही मंदिर गया। उसने कभी प्रार्थना नहीं की, कभी बलि नहीं दी। उसकी रियासत डाकूओं का घर बन चुकी है और फिर भी वह कहता है, "प्रजा मेरी है, हुकूमत मेरी है।" कभी नेक बनने के विषय में उसने सोचा ही नहीं।

"ईश्वर ने जन सेवा करने के लिए उसे जिम्मेदारी दी परन्तु दीन लोगों का उसने कोई ख्याल न रखा; कौन अपराधी है, कितना अपराधी है, आप स्वयं ही हिसाब लगा लो और क्या कहना है।

"यदि दो राज्यों की ताकत एक समान हो, तो यह देखना होता है कि दोनों में से सही कौन है। शांग के पास लाखों अफ़सर हैं, यानि कि उसके पास लाखों दिमाग हैं। मेरे पास केवल तीन हजार अफ़सर हैं परन्तु इनका मन एक है क्योंकि शुद्ध हैं। शांग के प्रशासन की पूर्णतः जांच की जा चुकी है। ईश्वर ने इस सत्ता को

खत्म करने की आज्ञा दे दी है। यदि मैं ईश्वर आज्ञा का पालन नहीं करूँगा तो मैं भी शांग की तरह अपराधी ही कहलाऊँगा।

मैं आपका बच्चा हर वक्त चिन्ताग्रस्त रहता हूँ। मुझे अपने स्वर्गीय पित्रों का आदेश प्राप्त हुआ है। मैंने ईश्वर के समक्ष बलि दे दी है। मैंने महान पृथ्वी की सेवा करने वाली समस्त रस्मों को पूरा कर लिया है। मैं आप सभी की अगुआई करता हूँ ताकि प्रकृति के आदेशानुसार अपराधियों को दण्ड दे सकूं। प्रकृति हमारी रक्षा करेगी। लोग जो चाहते हैं, प्रकृति वह दे देती है। मेरी सहायता करो। चार सागरों के मध्य जो भी मलिन है, अशुद्ध है, आओं उसे शुद्ध करें, स्वच्छ करें... सर्वदा के लिए पवित्र करें। अब निर्णय करने का समय आ गया है यह क्षण बीत न जाए।"

उपरोक्त भाषण ईसा मसीह के जन्म से हज़ार वर्ष पूर्व का है।

2. शी चिंग

यह काव्य संग्रह है। अनेक विषयों पर शायरी की गई है। जीवन के सभी पक्षों को सम्मिलित कर लिया गया है।

एक कविता उदाहरण स्वरूप दे रहें हैं। इस कविता का गायन तब किया जाता है जब किसी व्यक्ति या स्थान को पवित्र करना हो :

हम सत्कारपूर्वक आकाश से आशीष मांगते हैं।
देखो कैसे शान से चमक रहा है आकाश।
चारों सागरों के मध्य घिरी धरती पर लोग एकता में हैं।
देश लम्बे समय से इसी कारण अमन में है।
श्रद्धापूर्ण हम बलि देते हैं।
कुदरत के नियमों की पालना करने से हवाएँ चलनी
प्रारम्भ हो जाती हैं।
आकाश का रहस्यमय कानून हम पर रहम करे।
मेरा छोटा अहं कभी नेक बनेगा और बड़ा होगा।
कुदरत के कार्य हम पूरे करेंगे।

3. ली काई

इस पुस्तक का सम्मान धर्म ग्रन्थ रूप में किया जाता है जिसमें कनफिउशियस ने तत्कालिक और उससे पूर्व के धार्मिक कर्मकाण्डों का वर्णन किया है। मनुष्य के धार्मिक कर्तव्यों का बोध करवाया है। परिवार के प्रति उसकी क्या जिम्मेदारियाँ हैं, यह स्पष्ट किया गया है, समस्त कर्मकाण्डों का विवरण देते हुए महात्मा अपने विचारों का भी उल्लेख साथ-साथ करता जाता है। वह अनेक बार कहता है कि संस्कारों का कोई महत्त्व नहीं। मनुष्यों को रस्मों के पीछे छिपी भावना को समझना चाहिए।

पुत्रों को चाहिए कि वह माता पिता की सेवा करें। मुर्गे की पहली बांग के समय ही अपने हाथ धोएं और कुल्ला करें, केशों को व्यवस्थित करें, सिर को रेशमी कपड़े से ढकें। फिर काली जाकेटें पहनें, घुटने ढक लें, कमर के आस-पास कपड़े बांध लें और इस कपड़े पर प्रयुक्त होने वाले चाकू, छूरी लटका लें। बूटों के फीते बंधे होने चाहिए। ऐसा व्यवहार माता पिता को सुख प्रदान करता है।

-उसने कहा, उत्तर और पूर्व के गंवार लोगों ने अपने राजकुमारों और राजाओं को सुरक्षित रखा है। इस पक्ष से वह चीन की तरह बरबाद नहीं हुए।

-किसी ने पूछा, 'जी बलि देने का क्या अभिप्राय है? उसने कहा, "मुझे पता नहीं। जिसे पता है वह आकाश के नीचे सभी वस्तुओं पर सरलता से अधिकार कायम कर सकता है," यह कहकर महात्मा ने अपनी हथेली पर अंगुली रख दी।

-शू कुंग ने कहा, 'महात्मा हर महीने के नवीन चन्द्रमा को मुझे एक भेड़ की बलि देनी पड़ती है। मैं इस नुकसान के कारण दुःखी हूँ। महात्मा ने कहा - तुम भेड़ों के नुकसान के कारण रोते हो, मैं निरर्थक रस्मों पर रोता हूँ।

उसने कहा- राजदरबार में जिस प्रकार की धार्मिक रस्में निभाई जाती हैं उन्हें देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे यहाँ सभी व्यक्ति पागल हैं।

-महात्मा ने कहा, राज्याभिषेक के समय गीत संगीत में पूरी सुन्दरता है और पूरी अच्छाई भी। युद्ध में जाते समय का नाद सुन्दर तो लगता है परन्तु अच्छा नहीं।

इस ग्रन्थ का अधिकतर भाग नष्ट हो गया।

479 ई. पूर्व में जब उसका निधन हुआ तो वह अपने कार्य और प्राप्तियों से सन्तुष्ट नहीं था। हाँ निधन के बाद उसके विद्यार्थियों ने अत्यधिक आत्मविश्वास से चीन के बौद्धिक और राजनीतिक निर्माण का कार्य आरम्भ किया। उसके विचार हज़ारों वर्ष बीत जाने के बाद भी आज तक चीनी समाज को प्रभावित कर रहे हैं।

महात्मा ने कहा- ऊँची-ऊँची पदवियों पर विराजमान तंग हृदय, श्रद्धा के अभाव में निभाई जाने वाली धार्मिक रस्में, मन में दुःख न होते हुए भी शोक की अभिव्यक्ति... बस यही सब कुछ है जो न मैं देख सकता हूँ न सहन कर सकता हूँ।

4. आई चिंग के प्रसंग

कनफिउशियस द्वारा रचित यह ग्रन्थ भी एक काव्य संग्रह है। रचनाओं में नैतिक, रूहानी और राजनैतिक विचार संग्रहित हैं। इस संग्रह में 1200 ईसा पूर्व तक की रचनाएँ प्राप्त होती हैं। अधिकतर रचनाएँ महात्मा द्वारा रचित हैं। नीचे कुछ अनुवादित भाग दिए जा रहे हैं।

(क) अध्याय छठा

अच्छे मनुष्य के गुण महान मनुष्य वह है जो कुदरत के साथ एकरूप है। उसके गुण धरती और आकाश के समान हों। आभा चन्द्र सूर्य जैसी हो, अनुशासन चार ऋतुओं जैसा हो, अच्छाई और बुराई में स्वर्ग-नरक के समान अंतर देखता हो, वह कुदरत की अगुआई भी कर सकता है और कुदरत उसकी किसी बात का बुरा नहीं मानती।

(ख) ब्रह्माण्ड के सिद्धान्त

इस अध्याय में अनेक स्थानों पर ली शब्द का प्रयोग किया गया है। लिखा है, "ली कुदरत में काम कर रही है। उसने सूर्य को शक्ति दी, सूर्य ने ऋतुओं की सृजना की।"

सभी शक्तियाँ पूर्व में से उत्पन्न होती हैं। सूर्य सृजन कर्त्ता है। सभी वस्तुओं पर उचित नियंत्रण ही समझदारी है। "लाई" वह शक्ति है जो चमक-दमक देती है, जब साधुओं ने कुदरत का आदेश सुनना हो तो वह दक्षिण दिशा की तरफ मुख कर लेते हैं। जड़ और चेतन वस्तुएँ आपस में टकराती रहती हैं।

-नेक व्यक्ति नेकी करके सन्तुष्ट है, परन्तु चतुर व्यक्ति इस कारण नेकी करता है क्योंकि वह लाभदायक है।

-किसी ने पूछा, 'मालिक यह बात सही है कि नेक व्यक्ति को पता है कि किससे प्यार और किससे द्वेष करना है।" महात्मा ने कहा, जिस मनुष्य में अंश मात्र भी नेकी है वह नफ़रत नहीं करता।

-प्रत्येक मनुष्य में कई कमियाँ हैं। उन कमियों की तरफ देखना ही नेकी है। यही पन्थ है।

-जब राजा अपने हृदयों पर सदाचार का आभूषण धारण कर लेते हैं तो आम लोग उनके कदमों में स्वयं को समर्पित कर देते हैं। जब राजा केवल दण्ड देने के विषय में ही सोचते हैं, तब लोग क्षमा मांगने वाले भिखारी हो जाते हैं।

-यदि धार्मिक रस्में निभाने से ही शासन चलता है तो मेरे पास इस विषय में कहने के लिए शब्द नहीं हैं। यदि आपको पता है कि रस्मों के रहते हुए भी सल्तनतें नष्ट हो गईं थीं तो फिर क्यों करते हो यह पाखण्ड?

-यदि राजगद्दी पर नहीं हूँ तो इस बात की मुझे चिंता नहीं। मुझे चिन्ता तब होती यदि मैं राजगद्दी के योग्य न होता। मैं प्रसिद्ध नहीं हुआ। मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मैं स्वयं को गुणी बनाने के लिए चिंतित हूँ।

-उदार मनुष्य सोचता है कि सही क्या है। दुष्ट सोचता है कि लाभदायक क्या है।

-क्रोध आने पर बदला लेने की सोच स्वाभाविक है। प्रशंसनीय है वे व्यक्ति जो बदला ले सकते हैं किन्तु बदला लेना भूल गए।

-मालिक ने कहा, नेकी तुम्हें अकेला नहीं रहने देती। यदि तुम उदार हो निर्जन वन में चले जाना, तुम्हारे आस-पास मेले लग जायेंगे, भीड़ जमा हो जाएगी। अजमाकर देखना।

5. चून चिऊ

यह ग्रन्थ महात्मा द्वारा रचित है। इसमें उन्होंने पारम्परिक रियासत लू का और जागीरदारों का वृत्तान्त वर्णित किया है। आम व्यक्ति के लिए यह घटनाओं की शृंखला है परन्तु समझदार व्यक्ति इसमें से अन्य बहुत कुछ खोज लेता है। महात्मा स्वयं इस ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखता है, "शहज़ादे हूआन के समय से लेकर मैंने तथ्य प्रस्तुत किए है, शैली ऐतिहासिक है, परन्तु उसके अर्थों का निर्णय स्वयं मेरे हाथों में है।" बुद्धिमान् व्यक्ति आम विवरणों में से भी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त कर लेता है। एक स्थान पर महात्मा लिखता है, "वी रियासत के लोगों ने चयू राजकुमार का वध कर दिया।" दूसरे स्थान पर लिखता है, "चयू राजकुमार ने आत्महत्या की है।" अभिप्राय यह है कि उस राजकुमार ने स्वयं ऐसे बुरे काम किए हैं जो आत्मघाती थे और उसे मरना ही था। उसे उचित दण्ड मिला। वैसे हिबरू धर्म ग्रन्थ 'किंगज़' के समान यह प्रतीकमयी इतिहास में है जिसमें यह विश्वास दृढ़ है कि "सर्व शक्तिमान परमात्मा मानवीय कार्यों में हस्तक्षेप करता है।"

उक्त वर्णित पाँच ग्रन्थ महात्मा ने और चार पुस्तकों की रचना विद्यार्थियों ने इस प्रकार की जैसे अरस्तू के संवाद प्लेटो ने लिखे। यह भी महात्मा द्वारा लिखित हैं परन्तु उनकी मृत्यु के बाद रची गई। यद्यपि पहले पाँच ग्रन्थ अधिक विश्वसनीय हैं, पिछले चार ग्रन्थों की प्रमाणिकता पर प्रश्न उठते रहे हैं। कुछ भी है जिन लोगों ने महात्मा के चरणों में बैठकर विद्या प्राप्त की, उन्होंने अपने गुरू की मृत्यु के बाद उसके चिंतन सागर को संभालने का प्रयास किया। ऐसे प्रयास करते समय हमेशा ही कुछ कमियों का रह जाना स्वाभाविक है परन्तु इन चार रचनाओं में भी हमें कनफिउशियस की पवित्र आत्मा के दर्शन होते हैं।

'लू यू' ग्रन्थ चीन में बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसमें कहावतें और मुहावरें अधिक हैं जिस कारण अनुवादकों को अन्य भाषाओं में अनुवाद करते समय कठिनाइयाँ सामने आई क्योंकि सही भावना को प्रकट करना कठिन कार्य है। प्रोफैसर ऐडवर्ड ने एक कथन का अनुवाद इस प्रकार किया है, "यदि तुम्हें सुबह सत्य का पता चल जाए तो शाम को तुम बिना पश्चात्ताप किए मर सकते हो।" परन्तु हफ़ (Hughes) कहता है कि यह महात्मा की शब्दावली नहीं। उसका बात करने का ढंग कुछ इस

प्रकार था, "प्रातः धर्म को जानना, शाम को मृत्यु को गोद में सो जाना, इसमें बुरा क्या है?"

कुछ अन्य कथन इस प्रकार हैं :

-उच्च जाति का मनुष्य निजात्मा पर ध्यान केन्द्रित करता है। आम व्यक्ति धरती पर ध्यान केन्द्रित करता है।

-जिस व्यक्ति को सेवा करनी है वह मानवता का कभी त्याग नहीं करता। किसी भी स्थिति में वह ज़मीर का सौदा नहीं करता। वह मरना पसंद करता है किन्तु सौदेबाज़ी नहीं।

वांग सन्नशिया ने पूछा, मालिक इसका क्या अर्थ है- मंदिर की तरफ ध्यान देने की अपेक्षा चूल्हे की तरफ ध्यान दो? उसने कहा- यह कथन उचित नहीं है। जिस व्यक्ति ने आकाश की छाया के नीचे पाप किए हों, वह, फिर प्रार्थना कहाँ करे?

चुंग ने पूछा, मानवता किसे कहते हैं? उसने कहा- लोगों में इस तरह रहो जैसे आप किसी बड़े मेहमान के सामने हों। लोगों को उनकी जिम्मेदारियों का बोध इस प्रकार करवाओ जैसे कि आप बलिदान दे रहे हो। तब न तो राज्य में तुम्हारे विषय में किसी को कोई शिकायत होगी न तुम्हारे भाईचारे में।

-गुणी व्यक्तियों में न ऊँच-नीच होती है न जात-पात।

-तुम अपनी शक्ति से शक्तिशाली जरनल और उसकी सेना को पराजित कर सकते हो, निहत्थे कर सकते हो, परन्तु एक साधारण व्यक्ति के मन में बैठे वहम को निकालना कठिन कार्य है, बहुत कठिन।

-उदार व्यक्ति स्वयं से प्रश्न करता है, स्वयं को दोषी ठहराता है। आम व्यक्ति दूसरों पर किन्तु परन्तु करके दूसरों को दोषी ठहराते हैं।

-यदि नेक बनने के रास्तें में निर्धनता बाधा बने तो निर्धनता को धिक्कार। यदि नेक बनने के रास्तें में धन अवरोध पैदा करे तो वैभवता को धिक्कार। परन्तु यदि दोनों के होते हुए या दोनों के अभाव में भी नेकी की जा सकती है तो निर्धनता और अमीरी को दोष देने वाले को धिक्कार।

कनफिउशियस के कथन आम हैं परन्तु यह अंतकरणः में प्रवेश कर जाते हैं। कहीं कहीं वह दार्शनिक प्रतीत होता है, समुद्र जितना गहरा और शांत। कहीं कहीं वह महाकवि प्रतीत होता है तेज तर्रार और आकाश तक ऊँचा। कभी वह हमें बुजुर्ग पिता लगता है जो हमारा भला करने के लिए हमें प्यार से समझाता है और कभी क्रोधित हो जाता है। परन्तु वह हमसे नफ़रत नहीं करता, हमें छोड़ता नहीं। उसने अपनी अंगुली हमारे छोटे से हाथ में दी हुई है। हमें अनेक बार पता नहीं चलता

कि वह कहाँ ले जायेगा। परन्तु हमें उसके साथ चलने में आनन्द आता है। हम उसके साथ चलते चलते दूर निकल आए परन्तु थके नहीं।

-"नेकी आपको अकेले नहीं रहने देती। यदि तुम अकेले हो तो निर्जन स्थान पर जाकर बैठ जाओ, तुम्हारे आस-पास भीड़ इकट्ठा हो जाएगी, मेले लग जायेंगे।

उसने एक दिन कहा, "धर्म का कोई लाभ नहीं। मैं तो समुद्र पार कर दूसरी तरफ जाऊँगा। मुझे उम्मीद है कि तुम मेरे साथ चलोगे।" जू लू उसी समय तैयार हो गया। उसने कहा, "ऐसे हो तुम सब। शारीरिक शक्ति और साहस दिखाने के लिए सदैव तत्पर। मुझे लगता है कि समझदार व्यक्तियों के दर्शन मुझे कभी नहीं होंगे।

"मुझे मिंग चीह अच्छा लगता है क्योंकि वह शेखी नहीं मारता। जब उनके गाँव पर हमला हुआ तो वह सबके बाद गाँव से निकला। मैंने उसके साहस की दाद देते हुए कहा कि तुम कायरों के समान इधर उधर नहीं भागे। तुम शत्रु से भयभीत नहीं हुए। मिंग ने उत्तर दिया, "मालिक मैं इस कारण पीछे नहीं रहा कि मैं साहसी था। मैं बीमार था और मेरा घोड़ा बूढ़ा था। हम भाग ही नहीं सके।"

ज़ू कुंग ने पूछा, "मान लो किसी के पास कीमती हीरा है। उस व्यक्ति को हीरा कपड़े लपेट कर संदूक में छिपा देना चाहिए या सुनार को दिखाकर उचित कीमत ले लेनी चाहिए?" महात्मा ने कहा, "कपड़ों में न लपेटो। गुणी व्यक्तियों को दिखाओ और कीमत लो। देखो मैं बहुत देर से प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि कोई गुणी पारखी आए और मेरी कीमत लगाए।

सत्य यह है कि इस महान फकीर का मूल्य लगाना सरल नहीं। कोई उस जैसा महान हो तभी उसे समझ सकता है। उसके विचार और रचनाएँ अंधेरे में प्रज्वलित दीपक के समान हैं जो हमें भटकने नहीं देता।

-कहा, "कुंग चांग को बेशक बंदी बना लिया गया था परन्तु वह अच्छा व्यक्ति है। मैं अपनी पुत्री का विवाह उससे करूँगा।

-नान जुंग के विषय में कहा जिस देश में न्याय है उस देश में इसकी ताकत को अनदेखा नहीं किया जा सकता। जिस देश में अन्याय है, नान जुंग कोप से बचने में समर्थ है। इसी कारण मैं अपनी भतीजी का विवाह इससे ही करूँगा।

-ज़ू कुंग ने पूछा, "मालिक मेरे विषय में तुम्हारा क्या विचार है? महात्मा ने कहा- तुम घड़े हो। ज़ू कुंग ने पूछा- क्या काम आने वाला घड़ा? मालिक ने कहा- वह, जो श्मशानघाट में जाकर तोड़ा जाता है।

किसी ने कहा, "जान युंग अच्छा व्यक्ति है परन्तु वक्ता अच्छा नहीं। मालिक ने कहा- उसे अच्छा वक्ता होने की क्या आवश्यकता है? व्यर्थ की बातें

करके दूसरों को छोटा दिखाने में कौन सा बड़प्पन है? जान युग अच्छा है कि बुरा मुझे पता नहीं क्योंकि मैं उसे जानता नहीं परन्तु उसे जाकर बताओ कि जो अच्छे है उनको अच्छे वक्ता होने की आवश्यकता नहीं होती।

-ज़ू कुंग ने महात्मा से पूछा- जी, हूई के विषय में आपका क्या विचार है?

महात्मा ने कहा- मैं दस बातें करता हूँ वह एक समझता है। एक के आधार पर अन्य बातों के विषय में अनुमान लगाने लगता है। जब वह दस में से एक समझ सका है तो एक की सहायता से दस कैसे समझ सकेगा?

-साई यू सारा दिन सोया रहता। उसके विषय में महात्मा ने कहा, मैं गली हुई लकड़ी पर शिल्पकारी कैसे करूँ? सूखे गारे पर खुरपा फेर फेर कर कोई समतल नहीं कर सकता।

-ज़ू लू जब महात्मा की कोई अच्छी बात सुनता तो उसको जीवन में उपयोग करने का असफल यत्न करता परन्तु साथ ही भयभीत रहता कि कहीं महात्मा अब कोई अच्छी बात न बता दे और फिर से परिश्रम करना पड़ेगा।

-चाई वेन ज़ू बात करने से पूर्व तीन बार सोचता। महात्मा ने कहा, दो बार सोचना बहुत होता है।

-जब महात्मा चिन्न शहर में था वह कहने लगा, चलो चले। चलो वापस चलें। घर में बच्चे बेपरवाह और मंदबुद्धि हो गए हैं। वह सभ्यता के ऐश्वर्य द्वारा स्वयं को सज्जित कर रहे हैं परन्तु सभ्यता क्या है, इसका उन्हें पता नहीं।

-मालिक ने कहा, मैं ऐसे व्यक्ति की तलाश में घूम रहा हूँ जो स्वयं के गुनाहों को पहचान कर अपनी अदालत में स्वयं पर मुकदमा चलाए और स्वयं को दोषी मानकर दण्ड दे।

पुस्तक छठी

-आप सब को पता है कि घर से बाहर जाएं तो दरवाज़े से ही जाते हैं। इसी प्रकार संसार का केवल एक ही द्वार है- वह है पन्थ।

कहा- कुछ नेकी के विषय में जानते हैं। कुछ नेकी करते हैं। कुछ नेकी करते हुए प्रसन्न भी होते हैं।

-हमें हमारे बुजुर्गों ने कहा था, बुराई का उपकार नेकी करके चुकाना। ठीक कहा। इसी प्रकार करेंगे हम। परन्तु हे दानिश्वरों, जिन्होंने हमारे साथ नेकी की है उनका उपकार कैसे चुकाएँ?

पुस्तक सातवीं

कहा- मैंने वही तुम्हें बताया जो मैंने सीखा। मैंने अपनी तरफ से कुछ भी नहीं बताया। मैंने पूरी वफादारी से पुरातन बुजुर्ग विद्वानों का सम्मान किया। जो

कहने योग्य था, मैंने साहसपूर्वक कहा। मैं खामोश बैठा रहता और नोट करता कि मुझे क्या बताया जा रहा है। न मैं पढ़ने से थक सकता हूँ न पढ़ाने से। मैं गर्व से कह सकता हूँ कि मुझमें यह गुण हैं। परन्तु कभी कभी जब मुझे लगता है कि मैं सदाचार से पीछे हट रहा हूँ, या विद्या में निपुण नहीं हूँ या कोई विद्वान वहाँ किसी स्थान पर है, मैं उसे मिलने नहीं जाता और वह व्यक्ति अच्छा नहीं परन्तु मैंने उसे ठीक करने का प्रयास नहीं किया, यही विचार मुझे देर तक परेशान करते रहते हैं।

-जो मन शिक्षा के लिए व्याकुल हो रहा हो, मैं उसे पढ़ाता हूँ, उसे पढ़ाता हूँ जिसके मन में उत्तेजना के बुलबुले उठ रहे हों। जब मैं चादर का एक कोना पकड़ूँ तो विद्यार्थी अन्य तीन कोनें स्वयं ही पकड़ लें... तो मैं लगातार पढ़ाता रहता हूँ, नहीं तो चुपचाप चला जाता हूँ।

-मुझे जीवित रहने के लिए और समय मिल जाए तो मैं पचास वर्ष और अध्ययन करूँ। तभी मैं गलतियाँ करने से मुक्त हो सकता हूँ।

-जब वह बीमार था तो जू लू ने पूछा- जी मैं आपके लिए पश्चात्ताप की रस्म निभा आऊँ। मालिक ने कहा- “क्या ऐसी भी कोई रस्म होती है? जू लू ने कहा- हाँ जी, आकाश और धरती की रूहों को साक्षी मान कर पश्चात्ताप की रस्म निभाने से लाभ होता है। महात्मा ने कहा- तब रहने दो। धरती और आकाश को साक्षी मानकर मैं बहुत समय से पश्चात्ताप कर रहा हूँ। रस्म की बजाय, पश्चात्ताप करता हूँ।

-लाखों की संख्या में व्यक्तियों को मैं अपना अनुयायी बना सकता हूँ। परन्तु यदि तुम कहो तो ये बातें इन लोगों को समझा भी दूँ यह नहीं हो सकता।

उसने कहा- इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करो जैसे कि तुम किसी का अनुसरण कर रहे हो परन्तु उस तक पहुँच नहीं पाते। तुम्हें उसके गुम हो जाने का भय हमेशा रहे।

-किसी ने पूछा, जी आपने विद्या ग्रहण की? उसने कहा- न तो कोई परी किताब देने आई और न ही कोई देवता आशीष देकर गया। हाँ दरियाओं के पास समुद्र तक पहुँचने का नक्शा नहीं होता परन्तु वह पहुँच जाते हैं।

-उसने पूर्व के जंगली कबीलों में जाने का निर्णय किया तो किसी ने कहा- मालिक वे गंवार हैं। न उनमें बुद्धि है न कोमलता। आपके लिए मुश्किलें पैदा करेंगे। महात्मा ने कहा- देखना। मैं जाऊँगा... न बुद्धि की कमी मिलेगी न कोमलता की। सूक्ष्मता में आप उनका मुकाबला नहीं कर सकोगे।

-उसने कहा, ऐसी शाखाएँ बहुत हैं जिन पर फूल नहीं लगते, तो क्या हुआ? दुःख तो उन शाखाओं का है जो फूलों से भर गईं परन्तु फल नहीं लगे।

-उसने कहा बच्चों का सत्कार करो। क्या पता वह कल क्या बन जाएँ? मेरे पास जब कोई पचास वर्ष का कुरूप व्यक्ति आता है, मुझे वह अच्छा नहीं लगता। पचास वर्ष तक मैंने उसे बहुत लम्बा समय दिया था, वह अच्छे कामों से अपनी कुरूपता दूर करके सुन्दर हो सकता था।

-महात्मा ने गीत सुनाया -

हमने पकड़ी चैरी के फूलों से लदी शाखा
परन्तु निकल गई हाथों से, चली गई दूर।
यह बात नहीं मैं तुम्हें प्यार नहीं करता,
क्या करूँ, तुम दूर बहुत हो।

गाने के बाद कहने लगा- मैं उसे प्यार नहीं करता। प्यार होता तो दूरियों की चिन्ता न करता? फिर कौन सी दूरी, दूरी होती?

नागसेन

ईसवी सन् प्रारम्भ होने से कुछ समय पहले या कुछ समय बाद नागसेन के विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ मिलिंद-प्रश्न की रचना सयालकोट शहर में हुई। उस शहर का नाम तब साकल था। इस आधार पर यह रचना लगभग दो हज़ार वर्ष पुरानी है। पुराने समय से, अन्य जातियों के अतिरिक्त यूनानियों ने भी पुरातन पंजाब पर आक्रमण किए, कभी लूट का सामान ले जाते, कभी स्थायी राज्य स्थापित करते। मिलिंद, अलैगज़ैंडरिया का शासक था जिसका पूरा नाम मीनांदर था परन्तु पालि में मिलिंद लिखा प्राप्त होता है। ग्रन्थ का नाम मिलिंद-पञ्ह है, पालि में पञ्ह का अर्थ प्रश्न है।

उसका राज्य अमन शांति का और न्यायपूर्ण था, लोग खुशहाल थे, इसका प्रमाण नागसेन स्वयं देता है। तत्कालिक पुरातन पंजाब पूर्णतः बौद्ध पंजाब था। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि जिस धरती पर मिलिंद-प्रश्न ग्रन्थ की रचना हुई वहाँ से वह सदा के लिए लुप्त हो गया। न लोग इस ग्रन्थ को जानते थे न इसके रचयिता को। कॉलेज में पढ़ते समय मैंने पहली बार इस ग्रन्थ का नाम सुना था और 1975 में इसका अध्ययन किया। तब से मेरे मन में एक अभिलाषा थी कि इसका अनुवाद पंजाबी भाषा में हो। पंजाब से सरकते सरकते यह दक्षिण भारत में पहुँच गया और वहाँ से श्री लंका गया। दक्षिणी भारतीयों और लंका निवासियों ने इसका अपनी भाषा

सिंघली में अनुवाद भी किया और स्टैंडर्ड टेक्स्ट भी बनाई। दुनियाभर में आज जो पाण्डुलिपि प्रयोग में आती है वह लंका की ही मूल पुस्तक है। राईस डेविडज़ और मैक्समूलर ने जब अंग्रेजी के दो भागों में इस ग्रन्थ का सम्पादन और अनुवाद किया, उन्होंने लंका की सैंचियों को आधार बनाया क्योंकि अन्य भाषाओं में प्राप्त मिलिंद प्रश्न ग्रन्थ का आधार भी सिंघली ग्रन्थ ही थे। लंका में पुनः इसका पालि में अनुवाद कर बरमा और आसाम में इसकी सैंचियाँ भेजी गई।

मिलिंद पञ्ह की प्रतिष्ठा पालि त्रिपिटक (बौद्ध धर्म ग्रन्थ, सुत्त पिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक) के बाद अन्य समस्त बौद्ध साहित्य से शिरोमणि है। नागसेन, महात्मा बुद्ध से पाँच शताब्दियों के बाद हुआ और नागसेन से पाँच सौ वर्ष बाद सर्वप्रमाणित बौद्ध विद्वान बुद्धघोष हुआ जिसकी अट्ठकथा रचना सम्माननीय है। बुद्धघोष की विद्वता के विषय में कहीं कोई विवाद नहीं, परन्तु अपने ग्रन्थ में वह स्थान स्थान पर नागसेन का वर्णन करते हुए लिखता है कि उसका कोई मुकाबला नहीं, वह हमारी सुप्रीम कोर्ट है। जब बुद्धघोष (पाँचवी सदी) किसी समकालीन विवाद का समाधान करने के लिए तर्क का स्पर्श करता है, यदि उस विषय से सम्बन्धित उसे नागसेन की कोई पंक्ति मिल जाए तो वह आगे संवाद करता ही नहीं, इस प्रकार लिख देता है- “हमारे अग्रज नागसेन ने इस विषय में निर्णय कर दिया है तो हम इतने मूर्ख नहीं कि आगे अपने और विचार दें।” माना गया है कि कुल बौद्ध साहित्य की गद्य में और दार्शनिक तर्क युक्ति में उसकी कला अंतिम शिखर का स्पर्श करती है।

सिंघली भाषा में सर्वप्रथम 1877 ईसवी में मिलिंद प्रश्न आठ भागों में प्रकाशित हुआ। जिन पाँच विद्वानों ने यह काम पूर्ण किया, वह हैं करोली पीरी, अब्राहिम लिवेरा, लूई मेंदी, विजेरतन, नंदीमदी अमरशेखर और चारली अरनौली। इस पुस्तक की पाण्डुलिपि पालि से सिंघली में लंका के राजा कीर्ति श्रीराग के निर्देशन अधीन 1747 ईसवी में तैयार की गई और समकालीन बौद्ध विद्वानों ने इस में अपना अपना योगदान दिया। “यह ग्रन्थ जिसकी कोई समानता नहीं, जो बौद्ध सिद्धान्त के बोध के लिए बुद्धिमानों के लिए सदैव सहायक होगा, जिसके अध्ययन उपरान्त दुविधा समाप्त हो जाएगी और ज्ञान का प्रकाश फैल जाएगा। इसमें समय समय पर अनुवाद करते हुए जो कमियाँ आ गई हैं उनकों दूर करके नवीन रूप से प्रकाशित करने का कार्य विद्वान महोती वत्त गुणानंद करेंगे।” यह घोषणा बौद्ध संघ के प्रमुख भिक्षु संघराग विलीवित्त सरनकर ने की।

पहली शताब्दी ईसवी से लेकर 1747 ईसवी तक इस ग्रन्थ का कोई इतिहास नहीं मिलता, अर्थात् किस किस विद्वान द्वारा कौन कौन से देश में और

कौन कौन सी भाषा में अनुवादित हुआ, इस विषय में कोई संकेत प्राप्त नहीं होते। जिस स्थान पर इस ग्रन्थ की रचना हुई वहाँ के निवासी ग्रन्थ और ग्रन्थकार दोनों को नहीं जानते। श्रीलंका में यह लोक साहित्य बनकर साखियों के रूप में आज तक सुनाया जाता है। पंजाबियों का हरि सिंह नलूए पर गर्व करना अच्छी बात है, परन्तु नागसेन का नाम भूल जाना शर्मनाक है। बुद्धघोष जब अपने ग्रन्थ की रचना कर रहा था, उसके सामने नागसेन का ग्रन्थ रखा था जिसमें से वह विवरण तो देता है, परन्तु ग्रन्थ का विगत पांच शताब्दियों के इतिहास के विषय में वह भी नहीं बताता कि कहाँ कहाँ से होता हुआ वह इसके पास पहुँचा। यूरोप में इसकी सात प्रमाणित पाण्डुलिपियाँ पड़ी हैं जो सभी लंका द्वारा वहाँ पहुँची।

इस ग्रन्थ की आलोचना यह कहकर भी की गई कि न कोई संवाद मिलिंद और नागसेन में हुआ, न ही इस प्रकार की कोई ऐतिहासिक घटना घटी। आलोचकों ने कहा कि अपने मत को दार्शनिक विधि द्वारा और स्पष्ट करने के लिए कल्पित संगोष्ठि में कल्पित प्रश्न और कल्पित उत्तर निर्मित कर लिए गए हैं। इस प्रकार का साहित्यिक रोमांस प्रत्येक धर्म में कहीं कम और कहीं अधिक चलता ही रहता है। इस शंका के प्रमाण में यह गवाही दी जाती है कि ग्रन्थ में मिलिंद की अपेक्षा नागसेन शक्तिशाली नायक के रूप में प्रकट होता है। यह तो होना ही था। पहली बात यह कि मिलिंद दार्शनिक था ही नहीं, यह बात नागसेन के समक्ष वह स्वयं निरूत्तर होते हुए स्वीकार करता है। दूसरे, बौद्ध आचार्यों ने अपने ग्रन्थ में यदि नागसेन को महानायक दिखाया है, मिलिंद को नहीं तो इसका महत्त्व कम कैसे हो गया? हां, मैं इसे बहादुरी मानता हूँ कि नागसेन सहित अन्य भिक्षु मिलिंद की प्रजा थे। वर्तमान विद्वानों जैसे होते तो वह महाराज का गुणगान बढ़ा-चढ़ा कर करते। वह नागसेन को प्रणाम करते हैं, मिलिंद का स्थान बौद्धिकता में दूसरे स्थान पर रखा गया है।

निस्संदेह जिन दिनों ग्रन्थ की रचना हुई, उस समय यूनानी मीनांदर उत्तर पश्चिमी भारत का राजा था। उसका नाम मिलिंद लिख देना वहाँ की भाषायी रुचि का परिणाम है। संस्कृत के चन्द्र को चन्द, इन्द्र को इन्द (केते इन्द चन्द सूर केते-जपुजी) लिखने की परम्परा है। यहाँ तो दिमित्रोस देवमंती हो गया है। पलूटारक ने मिलिंद का ज़िक्र अत्यधिक सम्मानपूर्वक किया है और लिखा है कि अस्थियाँ चुगने की रस्म के समय मिलिंद सहित अन्य अनेक राजाओं ने अस्थियों में से हिस्सा मांगा ताकि उन पर बौद्ध स्तूप बना सके। यह सम्मान इससे पूर्व केवल सिद्धार्थ की अस्थियों को मिला था। इस तथ्य से यह भी संकेत मिलता है कि नागसेन के प्रभावाधीन

मिलिंद बौद्ध हो गया हो क्योंकि अस्थियाँ ले जाने का उद्देश्य धार्मिक है राजनीतिक नहीं।

अब तक मिलिंद के 22 सिक्के मिले हैं जो काबुल, मथुरा, कश्मीर और गुजरात तक के इलाकों तक फैले हुए हैं। आठ सिक्कों पर मिलिंद की अर्थी अंकित है जिसका अभिप्राय यह कि मौत के बाद भी उसका सम्मान हुआ और सिक्का चला। युवा मिलिंद से लेकर बुजुर्ग मिलिंद के चेहरे बने मिले हैं। सिक्कों के एक तरफ यूनानी और दूसरी तरफ पालि भाषा है। छलांग लगाता घोड़ा, डालफिन मछली, देवता, दो सींग वाला ऊँट, चिंघाड़ता हाथी, भालू, पहिए और वृक्ष का पत्ता आदि चिह्न भिन्न-भिन्न सिक्कों के ऊपर हैं। उल्लू और बैल के सिर भी है। पहिए को छोड़कर कोई चिह्न बौद्धी नहीं, वैदिक हैं।

नागसेन ने जिन नदियों का वर्णन किया है, वह हैं गंगा, यमुना, रावी, व्यास, चेनाब, सरस्वती। मैक्समूलर यह प्रमाणित रूप से कहता है कि नागसेन पंजाब का निवासी था। उसकी वास्तविक जन्मभूमि, अर्थात् किस शहर या गाँव का था इस सम्बन्धी कुछ भी ज्ञात नहीं परन्तु पंजाबी होने में सन्देह नहीं। मैक्समूलर उसे शांत सागर में तैरता हुआ बड़ा और भारी जहाज़ कहता है जो डगमगाता नहीं, जिसे दिशाओं सम्बन्धी भ्रम नहीं, जिसके यात्री और उनका सामान सुरक्षित है। यह काफिला मुक्तिद्वार तक पहुँचने के लिए दृढ़ है।

पुस्तक के पहले अध्याय का नाम है बाह्य कथा, अर्थात् मूल पाठ के साथ जिसका सम्बन्ध नहीं, यह आस-पास की जान-पहचान है जो धीरे-धीरे विषय की तरफ बढ़ेगी। बाह्य, यानी बाहरी। वस्तु के चारों तरफ परिक्रमा करेंगे, वस्तु के भीतर प्रवेश करना अभी दूर है। सुन्दर धरती, सुन्दर वादियाँ, उद्यान, जल की कोई कमी नहीं, झीलें, तालाब, दरिया, पर्वतों और जंगलों के मध्य घिरा हुआ स्वर्ग है यह। कुशल कलाकारों ने इसके डिजाईन बनाए हैं। लोगों को पता नहीं कि ज्यादती क्या होती है, कोई शत्रु नहीं, कोई तकलीफ नहीं। सुरक्षा दीवार है, ऊँचे मीनार और बुलंद दरवाज़े हैं। मध्य में सफेद रंग का शाही महल है, बिल्कुल शांत।

गलियाँ, चौराहे और बाज़ार स्वच्छ योजनाबन्दी का परिणाम हैं। कीमती सामान से दुकानें भरी हुई हैं। हिमालय पर्वत के सदृश आकाश को चूमती इमारतें हैं। गलियों में से हाथी, घोड़े, रथ, पैदल चलते पुरुष, सुन्दर स्त्रियों के काफिले गुज़रते दिखाई देतें हैं। ब्राह्मण, धनी, कारीगर और सेवक, हर प्रकार के लोग। किसी भी धर्म का विद्वान् वहाँ पहुँचे, मुस्कराते हुए मधुर वाणी से उसका स्वागत किया जाता है। बनारस के रेशम से लेकर हर किस्म का कपड़ा, इत्र, फूल सज़े हुए दिखाई देते हैं। प्रत्येक प्रकार के आभूषणों से सज्जित दुकानें हैं, कुशल व्यापारी हैं। तांबे, पत्थर,

चांदी और सोने की आभा गगन को चकाचौंध कर रही है, खज़ाने ही खज़ाने। खाने-पीने की वस्तुओं के भण्डार भरे हुए हैं, मिठाइयों और शरबतों का ढेर। मुकाबला करना हो तो धनी यह उत्तराकुरू जैसा और शान देवताओं के शहर अलकमंड जैसी है।

सियालकोट सम्बन्धी उक्त कथन के बाद नागसेन लिखता है- छह खण्डों में हम अपना ग्रन्थ बांटेंगे :

1. पहला भाग पुब्ब-कथा (पुब्ब-जोग शब्द का भी प्रयोग किया है, यानी पिछले जन्म की कथा)
2. मिलिंद और सामान्य प्रश्न
3. प्रमुख व्यक्तियों सम्बन्धी प्रश्न
4. स्वयं विरोधी कथनों सम्बन्धी प्रश्न
5. अस्पष्ट समस्याओं सम्बन्धी प्रश्न
6. प्रश्न जो रूपकों से सम्बन्धित हैं।

पूर्व कथा (यानी नागसेन के पिछले जन्म की कहानी) यहाँ से प्रारम्भ होती है।

'बहुत समय पहले गंगा नदी के तट पर बौद्ध आश्रम हुआ करता था जहाँ भिक्षु धर्म और विद्या ग्रहण किया करते थे। आश्रम की सफाई करने के लिए एक उपासक नित्य नियम अनुसार हाथ में झाड़ू लेकर प्रातः ही आता। उसके होठों पर बुद्ध का सिमरन होता और हाथ काम करते रहते। कूड़े का ढेर आश्रम की तरफ बढ़ता आ रहा था। इस अशिक्षित सफ़ाई सेवक को कितनी बार कहा कि कूड़ा दूर फेंके और पहले कूड़े के ढेर को वहाँ से हटा दे परन्तु उसने ध्यान नहीं दिया। दो तीन बार कहने से भी कुछ असर न हुआ तो महासेन (नागसेन का पूर्व नाम) ने उसके मुख पर झाड़ू मारा। यह गंवार व्यक्ति कूड़े का ढेर वहाँ से हटाता गया और साथ ही साथ रोते हुए यह कहता रहा- "प्रत्येक जन्म में बार-बार सफ़ाई करता रहा तो मुझे निर्वाण मिलेगा, मैं सूर्य के समान चमकूंगा एक दिन।"

काम समाप्त कर वह गंगा में स्नान करने गया। नदी को पूर्ण वेग से प्रवाहित होते देख उसने कहा, "हे साक्यमुनि पिता, प्रत्येक जन्म में सेवा करूँगा, सही बात को सही कहूँगा, समय पर कहूँगा जो कुछ भी मेरे साथ घटित हो क्या तुम मुझे इस दरिया जितनी शक्ति दोगे फिर?"

जिस महासेन भिक्षु ने सफ़ाई सेवक को पीटा था, उसने उसका यह कथन सुना तो हैरान हो गया कि यह बेकार, गंवार व्यक्ति क्या क्या मांग रहा है। उसके मन में आया कि मैं भी इसके समान प्रार्थना करूँ, इसकी वाणी में बरकत है। स्नान करके भिक्षु ने प्रार्थना की- हे सिद्धार्थ पिता, प्रत्येक जन्म में मुझे यह शक्ति दो कि मैं गूढ़ रहस्य प्रकट कर सकूँ, कठिन से कठिन प्रश्न का उत्तर मेरे पास हो। दरिया

जैसे प्रत्येक वस्तु को अपने साथ बहा ले जाता है, वैसे मेरे प्रवाह में भी सभी बह जाएँ।”

दोनों की प्रार्थनाएँ सुनकर बुद्ध बहुत प्रसन्न हुए, कहा- यह संसार में फिर से जन्म लेंगे। सूक्ष्म बौद्ध-धर्म और दर्शन की अनसुलझी गांठों को खोलेंगे, इन दोनों के प्रश्नोत्तर रूपकों और अलंकारों की वर्षा करेंगे। समय बीतने से धर्म में जो अंधकार व्याप्त होगा, ये दोनों वहाँ प्रकाश करेंगे।

बुद्ध के आशीर्वाद द्वारा गंवार सफ़ाई सेवक पुनः जन्म लेकर स्यालकोट का बादशाह हुआ जिसका नाम मिलिंद था। बहुत पारखी, विद्वान पुरुष, भूत-भविष्य के विषय में जानने के लिए उत्सुक, षट्दर्शन, गणित, संगीत, वेद, पुराण और इतिहास का ज्ञाता था। युद्ध नीति और राजनीति तो उसका व्यवसाय ही था, उसे शायरी, तन्त्रकला और नक्षत्रों का ज्ञान था। उसके साथ विचार-विमर्श करना दुर्गम कार्य था। भारत देश में उसके समान शारीरिक सामर्थ्य, चेतनता और धन अन्य किसी के पास नहीं था। सेनाओं की कोई गणना नहीं थी।

एक दिन आस-पास बैठे राजदरबारियों से उसने कहा- मेरी जिज्ञासा सन्तुष्ट करने वाला कोई विद्वान दिखाई नहीं देता। राजमन्त्री ने आह भरकर कहा- हाँ महाराज। स्यालकोट विद्वानों से वंचित हो गया है।

हिमालय में तपस्या करते हुए बौद्ध साधुओं के पास यह समाचार पहुँचा। यह वह भिक्षु थे जो जीवन मुक्त हो चुके थे। जुगंधर पर्वत पर अस्सगुत ने सभा बुलाई और कहा- मित्रों, कोई ऐसा है जो मिलिंद की शंका का निवारण कर सके?

सब तरफ खामोशी छा गई। पुनः अस्सगुत ने प्रश्न किया परन्तु निरूत्तर। पुनः उसने संघ को सम्बोधित करते हुए कहा- स्वर्ग में विज्ञांत महल के पूर्व की हवेली में केतमती में मुक्त हुआ देव रहता है जिसका नाम महासेन है। केवल उसी में यह सामर्थ्य है।

ब्रह्मज्ञानियों की यह सभा उड़ी ताकि स्वर्ग में महासेन के दरबार में उपस्थित हो सके। देवों के राजा शक्क ने पूछा- भूलोक के साधुओं की मण्डली इधर द्युलोक की तरफ क्या करने आ रही है अस्सगुत?

अस्सगुत ने कहा- धरती पर प्रतापी राजा मिलिंद स्वयं विद्वान होते हुए भी और जानने के इच्छुक हैं महाराज। उनकी तृषा शांत करने वाला वहाँ कोई नहीं। शक्क ने कहा- यहाँ महासेन नामक देव इस योग्य हैं। परन्तु मिलिंद की जिज्ञासा पूर्ति के लिए उन्हें पुनः मानव जन्म धारण करना होगा।

इस मण्डली सहित शक्क महासेन के पास गया, गले मिला और कहा, इन साधुओं की प्रार्थना है कि एक बार फिर से भूलोक में जाओ महासेन। महासेन ने

कहा- न मित्रों। कर्मों से बहुत मुश्किल से मुक्ति मिली है। क्यों उन्हीं बन्धनों में जाएँ जहाँ से परिश्रम करके बाहर निकले?

सक्क ने अस्सगुत से कहा- दया करो महासेन। हमें नहीं, संघ को, धर्म को आपकी जरूरत है। आपके जैसा कोई अन्य होता तो हम उसके पास चले जाते। तथागत के धर्म को पुनः जीवित करने के लिए भूलोक में पधारो महासेन।

दयालु महासेन ने स्वीकृति दे दी क्योंकि संघ को उसकी सेवा चाहिए थी। अस्सगुत ने रोहण को कहा- कजंगल नामक गाँव में एक ब्राह्मण रहता है जिसका नाम सोनुत्तर है। उसके घर पुत्र जन्म लेगा जिसका नाम वह नागसेन रखेंगे। सात वर्ष दस मास तक उसके घर भिक्षा मांगने के लिए जाना प्रतिदिन। इस तरह सम्बन्ध बनेगा कि तुम्हारे द्वारा बच्चा संघ में प्रवेश करे। जब वह संघ में प्रवेश ले लेगा तब तुम्हारा कर्त्तव्य पूरा होगा।

सोनोत्तर ब्राह्मण की स्त्री ने पुत्र को जन्म दिया तो तीन चमत्कार हुए। हथियार आग की लपटों में जल गए, अकाल पड़ा हुआ था, बहुत वर्षा हुई और भरपूर फसल हुई। रोहण प्रतिदिन ब्राह्मण के घर जाता, भिक्षा तो क्या मिलनी थी, कोई उसकी तरफ देखता भी नहीं था, प्रणाम करना, या शीश झुकाना तो दूर की बात थी। उल्टे, उसका अपमान किया जाता।

एक दिन रास्ते में वापस जाते हुए रोहण को ब्राह्मण मिला तो पूछा- भिक्षु हमारे घर से मिला कुछ? हाँ, मिला यजमान।" ब्राह्मण क्रोधित हो घर आया और परिवार से पूछा कि रोहण को क्या दिया? सभी ने कहा- कुछ देने का प्रश्न ही नहीं। ठीक है, कल भिक्षु आएगा तो अपमानित करूँगा कि झूठ क्यों बोला।

अगले दिन सुबह आया तो ब्राह्मण ने रोक कर कहा- झूठ बोलना भिक्षुओं के लिए उचित है रोहण? रोहण ने कहा- कदापि नहीं जी। फिर तुमने यह क्यों कहा कि मेरे घर से तुम्हें कुछ मिला है यद्यपि यह सत्य नहीं। रोहण ने कहा- मुझे इस घर से वस्तु तो क्या कभी अच्छा शब्द भी नहीं मिला था। कल मालकिन ने मिठासपूर्वक कहा- अगले घर जाओ भंते (भाई)। ये मधुर शब्द मेरे लिए बहुत उत्तम भिक्षा हैं महाराज। पहली बार आपके घर से मिले यह मधुर वचन।

ब्राह्मण हैरान हो गया। किस मिट्टी का बना हुआ है यह भिक्षु? थोड़ी सी मौखिक बात से भी कितना कृतज्ञ है। इसको यदि दान दिया जाए, तो कितनी आशीषें देगा। खाने के लिए ब्राह्मण ने रोहण को कढ़ी चावल भेंट किए जो उसने स्वयं खाने थे और कहा- प्रतिदिन आया करो भिक्षु महाराज।

प्रतिदिन रोहण आता, खाना खाता, आशीर्वाद देता और कोई न कोई बौद्ध वाक्य सुनाकर जाता। जब पुत्र नागसेन सात वर्ष का हुआ, पिता ने पूछा- नागसेन

पुत्र, अब यह विद्या जो पारम्परिक रूप से हमारे घर आई है, तुम्हें सिखानी प्रारम्भ करें?

-पिता जी वह कौन सी विद्या है? नागसेन ने पूछा।

-वेद ज्ञान पुत्र? अन्य विद्याएँ तो ऐसे ही फज़ूल की कला हैं।

-ठीक है पिता जी, सीखूँगा? पुत्र ने कहा।

नागसेन को विद्वान् ब्राह्मण के पास भेजा गया, नागसेन बहुत ही परिश्रमी था उसने शीघ्र ही वेदवाणी को न केवल कण्ठस्थ किया, इसके अर्थ, व्याकरण और शब्दों के गूढ़ भेद को भी समझ गया। अध्यापक और पिता मान गए कि उनके पास सीखाने के लिए अन्य कोई विद्या शेष नहीं रही।

आज्ञा लेकर वह जंगल में गया और अंतर्ध्यान हो गया। वह और विद्या प्राप्त करने का अभिलाषी था। रोहण अपने वत्तनी नामक आश्रम में समाधिस्थ था तो नागसेन की जिज्ञासा उस तक पहुँची। रोहण उठा और नागसेन को मिलने के लिए चल पड़ा। नागसेन ने सत्कारपूर्वक रोहण के समक्ष प्रार्थना की कि मुझे वह विद्या दो जो आपके पास है। रोहण ने कहा- जो संघ में प्रवेश नहीं करता, उसे हम अपनी विद्या नहीं देते। संघ में प्रवेश होने के लिए माता पिता की आज्ञा लेकर आओ। माता पिता ने पुत्र को आज्ञा दी तब उसने संघ में प्रवेश किया। यहाँ उसने शीघ्रता पूर्वक सभी बौद्ध ग्रन्थों को कण्ठस्थ किया और उनके सभी भेदों का ज्ञाता हो गया। अभिधम्म के सातों ग्रन्थों का जब उसने मौखिक उच्चारण किया तब पृथ्वी कांपी, देवताओं ने जैकार की, आकाश में से मंदार और चन्दन के पुष्पों के पराग की वर्षा हुई।

नागसेन को सम्पूर्ण भिक्षु के रूप में जब चीवर पहनाया गया तब उसकी आयु बीस वर्ष की थी। उसने मन में कहा- मेरा गुरू रोहण कैसा मूर्ख है। अन्य बौद्धवाणी को छोड़कर सर्वप्रथम अभिधम्म की शिक्षा दे दी।

अंतर्द्रष्टा रोहण ने नागसेन को बुलाया और धिक्कारा। नागसेन ने क्षमा मांगते हुए कहा- आगे से ऐसा कोई विचार मन में नहीं आने दूँगा गुरू जी। इस बार क्षमा कर दो।

रोहण ने कहा- मुफ्त में क्षमा नहीं दी जाएगी। तुम्हें एक कार्य सौंपना है। वह पूरा करोगे तो क्षमा मिलेगी। स्यालकोट जाओ। वहाँ जाकर बादशाह मिलिंद को मिलो और बताओ उसकी जिज्ञासा पूर्ति के लिए आए हो।

“आपके आशीर्वाद के कारण केवल मिलिंद की नहीं अपितु संसार के समस्त महाराजाओं की जिज्ञासा सन्तुष्ट कर सकूँगा। आशीर्वाद दो गुरू जी।”

रोहण ने आशीष देते हुए कहा- अस्सगुत्त बड़े हैं। उनका आशीर्वाद लेकर जाओ। जब चरण स्पर्श कर माथा टेकोगे तो वह तुमसे तुम्हारे गुरू के बारे में पूछेंगे। तुम मेरा नाम बताना। फिर वह तुमसे पूछेंगे, "यह बताओ कि मैं कौन हूँ? तुम कहना- मेरे गुरू जी जानते हैं कि आप कौन हैं?

नागसेन अस्सगुत के पास गया और निर्देशानुसार व्यवहार किया। उसे वहाँ ठहरने की आज्ञा मिली। प्रत्येक प्रातः वह अस्सगुत की कुटिया में झाड़ू लगाता, पानी का घड़ा भरता और दातुन रखता। प्रतिदिन अस्सगुत पानी फेंक देता, दातुन फेंक देता और स्वयं झाड़ू लगाता। सात दिनों के बाद एक स्त्री आई और दोपहर का भोजन करने की प्रार्थना की। अस्सगुत ने स्वीकृति दे दी और दोपहर में नागसेन सहित उसके घर पहुँचे। भोजन करने के बाद कहा, यह वृद्ध स्त्री तीस वर्षो से आश्रम की सेवा करती आ रही है। भोजन के लिए धन्यवाद और आशीर्वाद देने का कर्तव्य तुम निभाओ। यह कहकर साधु चला गया। नागसेन ने आशीष देते समय अभिधम्म के अत्यधिक सूक्ष्म भेद बताए जिस कारण वह स्त्री विस्मित हो गई और बौद्ध ज्ञान का प्रकाश हुआ। विचित्र बात यह है कि स्वयं नागसेन को यह प्रतीत हुआ कि वह किसी अलग देश में चला गया है जो विद्या के पार है। उसके अन्दर और बाहर नूर ही नूर हो गया। हाथ में पात्र पकड़े जब वह आश्रम में पहुँचा तो अस्सगुत ने कहा- एक बाण से दो निशाने लगाओगे नागसेन। देवताओं ने जैकार की है आज।

देवमंती ने बादशाह मिलिंद को नागसेन के विषय में जो जो बताया उस आधार पर वह सभी व्यावहारिक और रूहानी बरकतों का स्वामी सिद्ध होता है। अनेक पृष्ठों में उसके गुणों का वर्णन किया गया है। बादशाह ने नागसेन का निवास स्थान पूछा और कहा- हम जिसे चाहे बुला सकते हैं, परन्तु इस प्रकार के विद्वान के पास हमें स्वयं जाना चाहिए। बादशाह अपने दरबारियों सहित संघ आश्रम में पहुँचा।

आदरणीय शब्दों से उसने नागसेन को सम्बोधित किया और उसी प्रकार सम्माननीय ढंग से नागसेन ने उसे स्वागत है कहा। आसन पर विराजित होने के बाद राजा ने कहा- क्या मैं कुछ विषयों सम्बन्धी आपसे विचार-विमर्श कर सकता हूँ पूजनीय नागसेन? नागसेन ने कहा- यदि विद्वानों के समान विचार-विमर्श करने का इरादा है तो स्वागत है महाराज। यदि राजाओं के समान चर्चा करनी है तो फिर आज्ञा नहीं है। बादशाह ने प्रसन्नचित्त होकर कहा- विद्वानों के समान, बिल्कुल विद्वानों के समान। बादशाहों के समान कदापि नहीं। उसके बाद प्रश्न और उत्तर का क्रम प्रारम्भ होता है। उदाहरण स्वरूप कुछ प्रसंग यहाँ दिए गए हैं।

जैसे कुछ जिज्ञासु विचित्र नाटक को गुरू गोबिन्द सिंह की रचना इस कारण नहीं मानते कि इसमें उन्होंने पूर्व जन्म के विषय में लिखा है और यह प्रसंगरहित है। पहली बार नागसेन का ग्रन्थ पढ़ा तो मुझे देर तक यह बात समझ में नहीं आई कि इतने महान विद्वान ने पूर्व जन्म की कल्पित साखी क्यों रची? उसे काल्पनिक सृजन की क्यों आवश्यकता हुई? वास्तव में यह समस्त भारतीय पुराण साहित्य में यह परम्परा रही है कि पूर्व कथा से ही बात प्रारम्भ करें? ऐसा इस कारण किया जाता है क्योंकि किसी पूर्व कथा से ही ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य प्रकट होता है। पिछले जन्म में नागसेन जब महासेन था, तब वह विद्वान और क्रोधी था। सफ़ाई सेवक की प्रार्थना सुनकर दंग रह जाता है और सिद्धार्थ से वैसे ही वरदान मांगता है जैसी उसने सफ़ाई सेवक से सुनी थीं। बड़े से बड़ा विद्वान जब गंवार से गंवार शूद्र से शिक्षा लेने के लिए तैयार हो जाए तब वह धार्मिक हो जाता है। दूसरा संदेश नागसेन यह दे रहा है कि यदि सेवा करोगे तो राज्य सिंहासन मिलेंगे। तीसरा संकेत यह है कि भिक्षु, मिलिंद की शान से अधिक प्रभावित न हों। पूर्व जन्म में वह बौद्ध आश्रम का सफ़ाई सेवक ही तो था।

जब गुरू गोबिन्द सिंह यह बता रहे थे कि पूर्व जन्म में उन्होंने सप्तश्रृंग के ऊपर तपस्या की थी तब उनका उद्देश्य यह बताना था कि पुरातन भारतीय रूहानियत के उचित उत्तराधिकारी वह स्वयं हैं जिसे हिन्दू भूल चुके थे। सत्य एक है तो ऋग्वेद के रूप में ऋषिओं ने जो कहा था उस सत्य को हिन्दुस्तान भूल गया। गुरमुखी लिपि और देसी भाषा में सत्य पुनः प्रकट करने के उद्देश्य से दसम वाणी प्रकट हुई और सनातन हिन्दु धर्म ग्रन्थों की गुरमति के दृष्टिकोण से सर्वप्रथम टकसाली व्याख्या दसमग्रन्थ में हुई।

पाठकों को यहाँ यह बताना अनिवार्य होगा कि महात्मा बुद्ध को जो वैदिक देवता अच्छे नहीं लगे उन्हें उसने मार दिया, जो मरे नहीं, उनकी शक्तियाँ कम कर दी और इन्द्र जैसे जो देवता अत्यधिक प्रिय थे, उनके स्वभाव में परिवर्तन कर दिया। ऋग्वेद में वर्णित इन्द्र हिंसक है परन्तु त्रिपिटक में वर्णित इन्द्र मित्र और दयालु। बौद्ध कथा में लिखा है- इन्द्र को बदनाम करने के लिए हिंसक लिखा गया जबकि उसने किसी देश पर आक्रमण नहीं किया और न ही कोई हत्या की थी। हाँ कोई उसके देश पर हमला करता तो वह रक्षा के लिए अवश्य लड़ता था। एक बार सुरक्षा के लिए सेना की अगुआई करते हुए जा रहा था तो आगे कपास के खेत में से गुज़रना पड़ा। इन्द्र ने देखा एक शाखा पर चिड़िया का घोंसला है जिसमें उसके बच्चे हैं। इन्द्र ने तुरंत सेना रोकी और आज्ञा दी कि कपास के खेत की तरफ से मार्ग बदल कर निकलो क्योंकि बच्चे बचने चाहिए।

चिड़िया की यह साखी किसी वैदिक ग्रन्थ में वर्णित नहीं। यह केवल बौद्धकथा है। संसार में आज भी सिक्खों के नामों के प्रत्ययों की गणना करें तो इन्द्र की प्रतिशतता एक नम्बर पर रहेगी (इन्द्र सिंघ, राजेन्द्र सिंघ, वीरेन्द्र सिंघ इत्यादि) दसम ग्रन्थ में वर्णित देवता और अवतार वैदिक देवताओं, अवतारों से भिन्न हैं। सर्वाधिक विस्तृत कृष्णावतार पढ़ेंगे तो आप हैरान होंगे कि खड़ग सिंघ कृष्ण जी के विरूद्ध युद्ध कर कृष्ण को पराजित कर रहा है। कृष्ण जी मुसलमानों की सहायता ले रहे हैं। द्वापर युग में तब न तो मुसलमान थे न सिक्ख। तब तो ये धर्म पैदा ही नहीं हुए थे। फिर यह क्या हुआ? यही तो नाटक है जो विचित्र है। कुछ व्यक्तियों ने इसे Poetry of Politics कहा है। कृष्ण भगत पर्वतीय राजाओं का मुगलों के साथ मिलकर सिंघों के विरूद्ध युद्ध करना है, जिसमें पन्थ विजयी होगा, यही दसम ग्रन्थ की सियासत है, यह सत्य सिद्ध हुआ।

नागसेन की पुब्ब कथा और विचित्र नाटक की पृष्ठभूमि के उद्देश्य गूढ़ हैं।

मिलिंद और नागसेन एक दूसरे को सत्कारपूर्वक मिले। आमने-सामने बैठकर कुछ ऐसे बातें हुईं-

मिलिंद- आपने सिद्धार्थ को देखा नहीं नागसेन। फिर कैसे दावा करते हो कि वह बड़ा था।

नागसेन- समुद्र बड़ा है न महाराज मिलिंद?

मिलिंद- हाँ नागसेन, समुद्र यकीनन बड़ा है।

नागसेन- कैसे सिद्ध करोगे कि समुद्र बड़ा है?

मिलिंद- मैं दार्शनिक नहीं हूँ नागसेन। कृपया आप ही बताओ कि समुद्र कैसे बड़ा है।

नागसेन- ग्रीष्म ऋतु में लू चलती है तो सभी नदियाँ, तालाब, झीलें सूख जाती हैं। गर्मियों में कभी समुद्र सूखा है?

मिलिंद- नहीं नागसेन, ऐसा नहीं होता।

नागसेन- वर्षा ऋतु में सभी नदियाँ, झीलें, तालाब पूरी तरह से भर कर उछल जाते हैं। समुद्र पर भी वर्षा होती है। सैंकड़ों नदियाँ उस में मिल जाती हैं। परन्तु समुद्र कभी भी तट से बाहर नहीं उछलता। अतः सिद्ध हुआ कि समुद्र बड़ा है। निंदक ब्राह्मणों ने सिद्धार्थ के विरूद्ध हज़ारों ग्रन्थ लिखे। परन्तु जितना बड़ा वह था, यह ग्रन्थ उसकी प्रतिष्ठा को कम नहीं कर सकें। बौद्धी विद्वानों ने उस की स्तुति में लाखों ग्रन्थों की रचना की परन्तु जितना बड़ा उसका कद था, परन्तु जितना प्रतिष्ठित वह था यह ग्रन्थ उसे और बढ़ा नहीं सके। इस कारण मैं कहता हूँ कि महाराज सिद्धार्थ बहुत बड़े थे।

-0-

मिलिंद- परन्तु नागसेन, अब तो वह नहीं रहा। फिर उसे याद करने का क्या लाभ?

नागसेन- जिस लकड़ी की अग्नि सेकते रहे, आपको लगा कि वह अग्नि बुझ गई है। परन्तु अग्नि लकड़ी में अभी भी है। अग्नि तो प्रत्येक वृक्ष में विद्यमान है, बस छिपी हुई है किसी समय भी जल सकती है। अग्नि का बुझना अग्नि की समाप्ति नहीं महाराज। तथागत विश्व के प्रत्येक हृदय में छिपा हुआ है।

मिलिंद- जिस बच्चे ने जन्म लिया, वह बड़ा हुआ। नागसेन, जो बड़ा हो गया, वह वही बच्चा है या कोई अन्य है?

नागसेन- वही है महाराज और वह नहीं भी है।

मिलिंद- कैसे नागसेन? वह है भी और वह नहीं भी, दोनों कैसे?

नागसेन- बचपन में आप माता पिता की गोद में खेले। फिर विद्यालय में विद्या प्राप्त की। फिर आपने शासन संभाला। यदि आप कोई अन्य हो तो फिर वह कौन था जो झूले में खेला था? वह कौन था जिसने विद्यालय में विद्या प्राप्त की थी? यदि वह कोई अन्य था तो फिर वह विद्या आपके काम किस प्रकार आ रही है? झूले में लेटे बच्चे की माँ वही है जो आज बादशाह की माँ है। इसलिए मिलिंद, बच्चा वही है भी और अन्य भी। जिसने चोरी की, वही था जिसके हाथ काटे गए। समस्त रात्रि एक दीया जला। प्रथम पहर लौ थी, अर्द्ध रात्रि और तथा प्रातः और। दीया वही है महाराज जो सारी रात जलता रहा। जीवन, रूप बदलता है परन्तु वही है।

-0-

मिलिंद- क्या विचार विमर्श से ज्ञान प्राप्त हो जाता है नागसेन?

नागसेन- इसकी सम्भावना है महाराज। हो सकता है।

मिलिंद- मैं आपके साथ विचार-विमर्श कर रहा हूँ। परन्तु कुछ समय बाद हमारा संवाद समाप्त हो जाएगा। तो क्या ज्ञान भी साथ ही समाप्त हो जाएगा पूजनीय नागसेन?

नागसेन- ऐसा नहीं होता महाराज। मैं रात को उठा। दीया जलाया और एक अनिवार्य संदेश पत्र में लिखकर भिक्षु को दिया था और विशेष स्थान पर पहुँचाने के लिए कहकर दीया बुझा कर मैं फिर से सो गया। पत्र लिखा जा चुका था महाराज, दीया बुझाने से उसकी लिखावट नहीं मिटेगी।

मिलिंद- सुन्दर प्रतीत होने वाली वस्तुएँ अच्छी हैं या बुरी नागसेन?

नागसेन- अच्छी भी हैं, बुरी भी हैं, अच्छाई बुराई से परे भी हैं।

मिलिंद- वह कैसे नागसेन?

नागसेन- गर्मी में मन करता है कि ठण्डी हवा चले। सर्दियों में गर्मी अच्छी लगती है। दोनों अच्छी भी लगती है और बुरी भी।

मिलिंद- ठीक है नागसेन। परन्तु यदि सर्दी और गर्मी इकट्ठी हो जाएँ तो अच्छी लगेंगी।

नागसेन- ऐसी बात भी नहीं महाराज। एक व्यक्ति को कहो दोनों हाथ अग्नि के आगे फैलाओ। एक हाथ पर गर्म लोहे का टुकड़ा रख दो और दूसरे हाथ में बर्फ का टुकड़ा। एक समय में गर्म और ठण्डी वस्तुएँ दोनों से हाथों को तकलीफ होगी। दर्द भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, परन्तु दुःख तो दुःख ही है महाराज। दुःख करवटें बदलता रहता है लगातार।

-0-

मिलिंद- आपके ग्रन्थों में लिखा है कि बुरे काम करने वाले व्यक्तियों को सैकड़ों वर्ष तक नरक की अग्नि में जलना होगा। यह भी लिखा है कि नरक की अग्नि पृथ्वी की अग्नि से कहीं तेज़ है। यह कैसे हो सकता है नागसेन? इस अग्नि में शव थोड़े समय में ही भस्म हो जाता है। फिर नरक की अग्नि, जो कि अधिक तेज़ है में सैंकड़ों वर्ष कैसे?

नागसैन- देवलोक में तो विचित्र व्यवहार है ही, पृथ्वी पर भी ऐसे चमत्कार देखने को मिल जाते हैं। शेरनी अपना शिकार स्वयं मारती है। माँस और अस्थियाँ चबा जाती है। यह माँस और अस्थियाँ कुछ घंटों में गल जाती हैं, हज़म हो जाती हैं। जिस पेट में जाकर अस्थियाँ भी गल गई उसी पेट की अग्नि में शेरनी का बच्चा गलता नहीं अपितु पल रहा होता है। यहाँ भी ऐसे ही अद्‌भुत चमत्कार हैं महाराज।

-0-

मिलिंद- समय का मूल कहाँ है नागसेन? भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कहाँ से आए?

नागसेन- समय का मूल अज्ञानता में है महाराज। अज्ञानता के कारण वासनाएँ उत्पन्न हुईं। वासनाओं के कारण कर्म किए। कर्मों के कारण नाम और रूप मिला, ज्ञानेन्द्रियाँ मिली। भूख, प्यास मिली। जन्म और मृत्यु मिले। यह सभी दुःख है। एक दुःख में से निकला दूसरा दुःख। बस समय और दुःख एक दूसरे में है और दोनों का मूल अज्ञानता में है।

-0-

मिलिंद- काल से कैसे मुक्त हुआ जाए नागसेन?

नागसेन- देखो महाराज मैंने धरती पर यह गोल चक्र बना दिया है। बताओ यह चक्र कहाँ से शुरू हुआ और कहाँ खत्म होता है। इसका कोई प्रारम्भ

नहीं। जब तक यह चक्र है, मुक्ति नहीं। काल का यह चक्र तोड़ना होगा। जब जन्म और मृत्यु का चक्र टूटेगा तो मनुष्य अकालिक हो जाएगा।

-0-

मिलिंद- दृश्य पहले है कि विचार नागसेन? और क्यों?

नागसेन- पहले दृश्य है। विचार बाद में उत्पन्न होता है। क्यों का उत्तर यह है कि दृश्य ऊँचा है। विचार उससे निम्न है। यह विधान है कि पानी ने ऊपर से नीचे की तरफ आना है। परसो वर्षा हुई। पानी नीचे की ओर बहने लगा। कल फिर वर्षा हुई। उसी रास्ते पर पानी फिर बहने लगा। परसो वाले पानी ने कल वाले पानी को रास्ता नहीं बताया। कल वाले पानी ने परसो वाले पानी को यह नहीं कहा कि मैं तेरे बताए रास्ते पर चलूँगा। दोनों की पारस्परिक कोई बातचीत नहीं हुई परन्तु एक ही मार्ग पर गए। नियम यही है। विधि यही है।

-0-

मिलिंद- जानकारी और ज्ञान में क्या अंतर है नागसेन मित्र?

नागसेन- बाजरे की कटाई करते हुए किसान को देखो। बाएँ हाथ से वह कुछ पौधों का गुच्छा पकड़ते हैं और दाएँ हाथ से दात्री चला कर काटते हैं। ऐसे गुच्छा पकड़ना और काटना उनकी जानकारी तथा अनाज का संग्रह करना ज्ञान।

-0-

मिलिंद- ज्ञान और अज्ञानता भिन्न-भिन्न है कि इकट्ठे।

नागसेन- भिन्न-भिन्न भी हैं और इकट्ठे भी। ठठेरों को तांबे के बर्तन बनाते हुए देखो। तांबे की चादर कूट-कूट कर वह गोल करते जाते हैं तो धीरे-धीरे वह गागर बन जाती है। गागर बनाते समय जो ठक-ठक की आवाज़ हुई उसके बिना काम चल सकता था परन्तु आवाज़ तो होगी ही। शोर नहीं, हमें तो गागर चाहिए थी। परन्तु शोर तो उत्पन्न होगा ही। इस व्यर्थ के शोर को अज्ञानता समझो और गागर को ज्ञान। दोनों इकट्ठे भी है और विभिन्न भी।

मिलिंद- पुस्तकों और ज्ञान में क्या अंतर है नागसेन?

नागसेन- नमक का स्वाद जिह्वा चखती है। परन्तु नमक को आँख देख सकती है। आँख देख सकती है आस्वादन नहीं कर सकती। नमक में भार है, बैल नमक से भरी हुई गाड़ी खींचते हैं। नमक को हम तोलते हैं, दो मन, पांच मन। दो मन या पाँच मन यह नमक नहीं, यह तो नमक का भार है। नमक तो नमकीन वस्तु है जिसका स्वाद केवल जिह्वा परखेगी। पुस्तकों और ज्ञान में वही अन्तर है जितना भार और स्वाद में हैं।

-0-

मिलिंद- क्या आप इस शरीर से प्यार करते हैं नागसेन?

नागसेन- नहीं महाराज ऐसी कोई बात नहीं।

मिलिंद- फिर आप स्नान क्यों करते हैं? खाते-पीते क्यों हैं?

नागसेन- क्या आपके शरीर पर कभी तलवार या तीर से कोई घाव हुआ है?

मिलिंद- हाँ एक बार नहीं अनेक बार।

नागसेन- तब आप घाव साफ करते हैं। फिर मलहम लगाते हैं। फिर पट्टी बांधते हैं। फिर ध्यान रखते हो कि कहीं ओर चोट न लगे। क्या आप घावों से प्यार करते हैं महाराज, जो इनका इतना ध्यान रखते हैं?

मिलिंद- नहीं नागसेन बड़े भाई। मैं घावों से मुक्त होने के लिए ऐसा करता हूँ।

नागसेन- हम भी शरीर से प्यार नहीं करते। मुक्त होने तक इसकी संभाल करते हैं। अनन्त शाश्वत अमरपद के ऊपर हमारे शरीर छोटे-छोटे घाव हैं।

-0-

मिलिंद- सम्माननीय भंते, एक बार सिद्धार्थ ने कहा था, "मन की बात करोगे तो पेड़ भी हुंगारा भरेंगे। पेड़ भी उत्तर देंगे।"

यह कथन ठीक नहीं भंते। पेड़ों ने कौन सी बात करनी है? फिर तथागत ने यह कथन क्यों किया?

नागसेन- तथागत भाषा के उस्ताद थे महाराज। भाषा के अर्थ जैसे आप समझ रहे हैं, सदैव वहीं नहीं होते। हम अकसर कह देते हैं, "गुड़ का गड्डा जा रहा है।" गड्डा गुड़ का बना नहीं होता। लकड़ी का है। गुड़ उसमें भरा होता है। ऐसे ही कहते हैं, "वह आटा पीस रही है। दूध बिलो रही है।" आटा नहीं पीस रही, स्त्री दाने पीसती है और दूध कोई नहीं बिलोता, दही बिलोया जाता है। अनेक प्रकार के भाषायी अलंकार हैं महाराज, इनको सामान्य अर्थों में नहीं समझा जा सकता। भाषायी अर्थों के अनेक दृष्टिकोण होते हैं। तथागत नवीन अलंकारों के रचयिता थे महाराज।

एक सुबह संवाद करने के लिए दोनों मिले तो यह बात हुई :

मिलिंद- अनेक बार देर तक नींद नहीं आती नागसेन। देर तक सोचता रहता हूँ कि महान साधु नागसेन बहुत बड़ा विद्वान है। कहीं मैं अज्ञानतावश मैंने कोई ऐसा प्रश्न तो नहीं पूछ लिया जो उनकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल हो? कहीं कोई अवज्ञा, कोई अनादर तो नहीं हुआ।

नागसेन- देर तक मेरे साथ भी यही घटित होता है महाराज। मैं अकसर इस बात को लेकर चिंतित हो जाता हूँ कि आपके प्रश्नों के उत्तर देते हुए कहीं मैंने ऐसी कोई बात तो नहीं कह दी जिससे आपका अनादर हुआ हो। मेरे दिए उत्तर

सिद्धार्थ की शख्सीयत और धर्म के अनुसार भी थे या नहीं। उसका पद बहुत बड़ा है महाराज मिलिंद। बहुत ध्यान रखना होगा। परन्तु वह हमारा आपका सभी का हितैषी, सभी का कल्याणकर्ता है। वह स्वयं ही हमारा सहायक होगा। हम सभी उसकी शरण में सुरक्षित हैं।

मनसूर

अन-अल-हक्क शब्द सुनते ही सूफ़ी फ़कीर मनसूर का नाम मन में आ जाता है क्योंकि यही शब्द उसकी परिभाषा था, यही शब्द उसके लिए जीवन था यही शब्द उसे होनी और मृत्यु बन कर मिला। 'अन-अल-हक्क' का अर्थ है मैं सत्य हूँ। हक्क का अर्थ सत्य भी है तथा ईश्वर भी। मनसूर के लिए अल्लाह और सत्य में कोई भेद नहीं क्योंकि वह गर्व से कहता था कि मैं अल्लाह हूँ। यह कहना गुनाह नहीं। कुरान में अल्लाह के 99 नामों का वर्णन है इनमें से 'हक्क' एक नाम है। सूफ़ी साधु अल्लाह की अपेक्षा ईश्वर के 'हक्क' शब्द का अधिक प्रयोग करते रहे हैं आज जब हम कहते हैं कि कण-कण में अल्लाह है और वह मुझमें भी है, गुनाह नहीं है। परन्तु मनसूर का समय अलग था। इस्लाम के श्रद्धालुओं के लिए मनसूर का कथन अन-अल-हक्क एक बहुत बड़ा अपराध बन गया। अन-अल-हक्क शब्द का उच्चारण करना ही उसका केवल एक अपराध नहीं था। उसके आलोचकों का कहना था कि वह अवतारवाद के सिद्धान्तों में विश्वास करता और पुनर्जन्म को मानता है। वह सभी मनुष्यों को ईश्वर के पैगम्बर कहता था। किसी को वह कहता था- तुम हज़रत नूह हो, किसी को मूसा और किसी को मोहम्मद कहता। "मैंने इन पैगम्बरों की रूहों को तुम्हारे भीतर बिठा दिया है," ऐसे कथन मुस्लिम समाज कैसे सहन कर सकता था? यदि ऐसे कथन करने वाला एक पूजनीय फकीर था, विद्वान

शायर था, करामतों का स्वामी था तो क्या हुआ? गुनाह तो आखिर गुनाह है सजा मिलनी चाहिए।

बगदाद के खलीफे के आदेश पर उसे बंदी बना लिया गया और कारागार में बंद कर दिया गया। कई सप्ताह तक उसे भूखा-प्यासा रखा जाता। टाईग्रिस दरिया के तट पर उसे लकड़ी के क्रास पर लटकाया गया। उसका मांस नोचा जाता और शाम होते ही उसे फिर से कारागार में बंद कर दिया जाता। ऐसा उसके साथ नौ महीने तक होता रहा और ऐसे अमानवीय अत्याचारों द्वारा उसे पीड़ित किया गया और जिनका वृत्तान्त सुनकर आत्मा कांप जाती है। एक हज़ार कोड़ों की मार ने उसकी देह का सारा खून चूस लिया था, फिर उसके हाथ काटे गए। उसके बाद पैर काटे गए। आँखों की पुतलियाँ काट दी गईं, जीभ काटी गई क्योंकि यही जीभ कुफर वाक्य बोलती थी। फिर उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया गया। यहीं मामला खत्म नहीं हुआ, कहीं यह काफिर फिर से कयामत के दिन न जाग जाए, उसकी मृत देह को अग्नि में जलाया गया, कुछ राख को नदी में बहा दिया गया, कुछ को हवा में उड़ाया गया। समकालीन साक्ष्य बतातें हैं कि उसके खून की एक-एक बूंद में से अनअलहक्क की ध्वनि सुनाई देती थी।

वह शहीद हो गया। संसार में रहस्य अनुभव को प्रकट करने के दोष कारण शहीद होने वाला वह अमर मनुष्य है जो उसके शिष्यों के लिए नहीं, संसार के सभी साधुओं संतों के लिए दीपक बन गया। अलगज़ाली, जो इस्लामी धर्म के पारम्परिक स्वरूप को मानने वाला महान विद्वान था, भी मनसूर की प्रशंसा करने के लिए मजबूर हुआ। वह लिखता है, "मनसूर ने जो कुछ भी कहा वह अल्लाह के प्रति असीमित प्रेम के कारण कहा।" कुरान में वर्णित है, "मैं वो हूँ जिसे मैं प्रेम करता हूँ और जिसे मैं प्रेम करता हूँ, वही हूँ मैं। "एक शरीर में हम दो रूहें हैं। जब उसे तुम देखते हो तब मुझे देखते हो। जब तुम मुझे देखते हो तब उसे देखते हो।" फरीदुदीन अत्तार लिखते हैं, "अल्लाह के मार्ग पर चलने वाला वह अल्लाह का कामल फकीर था। घने अंधेरे जंगलों में रहने वाला यह शेर सत्य की कुछ किरणों की तलाश में घूमता फिरता रहता था परन्तु उसे पूरा सूर्य मिल गया। वह गहरे समुद्र में डुबकी लगाने वाला गोताखोर था जिसने रत्नों के खज़ाने खोज लिए और धरती पर लाकर फेंक दिए।" जलालुद्दीन ने उसकी शहादत के आदेश की इन शब्दों में आलोचना की :

जब अन्यायकारी न्यायाधीश हाथ में कलम पकड़ता है
तब सूली पर कोई मनसूर शहीद हो जाता है।

शाबिशतारी अपनी पुस्तक गुलशन-ए-राज़ में लिखता है :

"अनअलहक्क का फल किस वृक्ष में लगा? मैं ईश्वर हूँ, अनन्त रहस्यों की अभिव्यक्ति है यह शब्द। मैं ईश्वर हूँ, ईश्वर के अतिरिक्त कौन कह सकता है यह सब? अकेला मनसूर नहीं, पृथ्वी का कण-कण यही कह रहा है- मैं हक्क हूँ, मैं सत्य हूँ, मैं ईश्वर हूँ। एक झाड़ी ने पैगम्बर मूसा से कहा था, "मैं अल्लाह हूँ।" तब वह झाड़ी पूजनीय स्थान बन गई थी। एक मनुष्य जिसका नाम मनसूर था, जब उसने यह शब्द कहा उस फ़कीर को अपमानित करके मारा गया। अल्लाह से मिलने के लिए कयामत की प्रतीक्षा पागल करते हैं। फ़कीरों की यात्रा, यात्री और मंजिल एक हो गए थे। वह इसी पल मिले चुके हैं। काफिर तो वह हैं जो यह कहते हैं कि हम कोई और हैं और अल्लाह कोई और हैं।"

जलालुद्दीन रूमी, मनसूर की आवाज़ को इन शब्दों में अभिव्यक्त करता है :

मैं शब्द हूँ, मैं धर्म ग्रन्थ हूँ,
मैं हूँ इंजील और कुरान,
आग पानी हवा और मिट्टी, क्या हैं ये मेरे अलावा?
मिथ्या और सत्य, नेकी बुराई, नम्रता क्रूरता
ज्ञान, एकांत, विश्वासों की रोशनी मैं हूँ।
गहरे नरक के अंधेरे और उनमें जलती अग्नि
उत्तम स्वर्ग और शांति के बाग,
देवता और असुर, रूह और जिस्म, मैं हूँ यह सब, मैं।
मेरे होठों के शब्दों के क्या अर्थ हैं, तुम बताओ
तुम ही बता सकते हो, विश्वात्मा मैं हूँ, मैं हूँ यह
सब, केवल मैं।

अब्बू सय्यद ने मनसूर को इन शब्दों द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की :

मेरे दिल में है तू,
दूसरे स्थान जहाँ जहाँ मेरा खून गिरा
तुझमें घुल मिल जाएंगे
मेरी आँखों की रोशनी है तू, जहाँ कहीं मेरे आँसू गिरेंगे,
वहाँ वहाँ तेरे अस्तित्व का प्रकाश होगा।

विद्वानों ने सूफी सिद्धान्तों को कभी यूनानी परिभाषा के साथ जोड़ा तो कभी पारसियों के साथ बौद्धमत, ईसाईमत और वेदांत में इस का मूल खोजा गया, परन्तु मनसूर की शहादत के बाद सभी सूफियों ने कहा कि सूफी मत का मूल कुरान और हदीस में है। कुरान में वर्णित हैः

वह, जो अदृश्य में विश्वास रखते हैं, नमाज़ पढ़ते

हैं, मोमिन हैं। मैं शाहरग से भी समीप हूँ मनुष्य के।
अल्लाह, धरती और आकाश की रोशनी है।

सूफी मत का प्रारम्भ फकीर बैज़ीद द्वारा हुआ माना जाता है जिसकी मृत्यु 909 ईसवी में हुई। उसके बाद बगदाद का निवासी जुनैद महान तपस्वी फकीर हुआ। इस फकीर के पास बहुत से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे। उसके आश्रम में 22 वर्ष की आयु में मनसूर ने प्रवेश किया। यह 880 ईसवी की बात है। मनसूर सुन्दर युवक था जिसकी आँखों में सपने दिखाई देते थे। उसने जब पहली बार जुनैद को सलाम किया तो जुनैद ने कहा, "इसका खून फाँसी की रस्सी को पवित्र करेगा।" इस सुन्दर मुख वाले युवक का नाम हुसैन बिन मनसूर बिन मोहम्मद अलबैदावी अल हल्लाज था जिसका जन्म 858 ईसवी में हुआ। उसका दादा पारसी था जिसका नाम साहाबी अबू अयूब था और पिता, हुसैन बिन अलहल्लाज जुलाहा था। फारसी में हल्लाज जुलाहे को कहा जाता है। फारस का अलतूर नामक गाँव मनसूर का जन्म स्थान है। छह वर्ष तक मनसूर ने जुनैद से शिक्षा प्राप्त की और मस्जिद में बैठकर छह वर्ष तक तपस्या की। इन छह वर्षों में उसने बंदगी के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं किया। अरब के बेरहम मौसमों का उसने नंगे शरीर सामना किया। न गर्मी की परवाह की और न ही सर्दी की। उसके बाद तपस्या पूरी होने पर उसने देशों-विदेशों की यात्रा शुरू कर दी और इराक, परशिया, गुजरात और कश्मीर की यात्रा करते हुए भारत से चीन गया और अकसायी चिन तक पहुँचा। भारत में योगियों से उसने योग और तंत्र विद्या सीखी। उसकी अद्‌भुत शक्तियों के बारे में अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं।

उसके शिष्यो ने एक दिन देखा कि उसने आकाश की तरफ हाथ किया तो हाथ में सेब आ गया जिसके बारे में उसने बताया कि यह अदन के बाग का फल है। उसका एक शिष्य लिखता है कि बगदाद की गलियों में घूमते-घूमते एक दिन वह विस्माद में आ गया और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। शहर के बीच खड़ा होकर कहने लगा, "ओह बचा लो मुझे अल्लाह के चेहरे की रोशनी से। अल्लाह ने मुझसे मेरा अस्तित्व छीन लिया अब वापस नहीं कर रहा। मैं उसकी बंदगी भी नहीं कर सकता क्योंकि मैं, मैं रहा ही नहीं। कभी-कभी वह किसी के सामने प्रकट होता ताकि लोगों को उसके अस्तित्व का बोध होता रहे और मानवता नास्तिक न हो जाए। अधिकतर वह पर्दा करके रखता ताकि उसकी रोशनी के कारण लोग अंधे न हो जाएं, अपनी चेतना न भुला दें और पागल न हो जाएं। मेरे और उसके बीच की दूरी आँख और पलक जितनी भी नहीं। वह मुझे शीघ्र ही खत्म कर देगा, पृथ्वी पर मेरा नामो निशान तक नहीं छोड़ेगा।

पचास वर्ष की उम्र में वह शिबली से मिला और पहली बार उसके पास जाकर अनअलहक्क कहा और मारफत के रहस्य बताए। शिबली तुर्की का महान विद्वान और शायर था। बगदाद में उसकी विद्वता बहुत विख्यात थी। यह वही शिबली था जिसके विषय में पंजाबी भाषा तो क्या अनेक भाषाओं में उलाहना युक्त लोकगीत प्रचलित हुए कि उसने मनसूर को उस समय फूल मारा जिस समय लोग उसे पत्थर से मार रहे थे। मनसूर को काफिर एलान कर बंदी बनाकर बगदाद की गलियों में घुमाया जा रहा था और सरकार का आदेश था कि जो उसे देखे पत्थर मार कर निकले। रास्ते में शिबली आ गया। पत्थर की बजाए उसने मनसूर को फूल से मारा। शिबली यदि कुछ भी न मारता तो उसे भय था कि कहीं खलीफा आदेश उल्लंघन का दण्ड न दे दे और पत्थर इस कारण नहीं मारा क्योंकि उसे पता था कि मनसूर कामल फकीर है। उसने फूल मारा तो मनसूर ज़ोर से रोने लगा कहा- यह तुमने क्या किया? तुम या तो हुकूमत की आज्ञा का पालन करते या मेरे मित्र बनते। यदि हुकूमत की आज्ञा माननी थी तो पत्थर मारना था। यदि मेरा मित्र होता तो हुकूमत से तुझे डरना नहीं चाहिए था। फूल मारकर तुमने दो नावों में पैर रखा। तेरे जैसे विद्वान से मुझे ये आशा नहीं थी क्योंकि मुझे लगता था कि तुम अल्लाह के रहस्य को जान गए हो और मेरे मित्र हो। बगदाद का खलीफा अलमुक्तादिर था जिसकी माता महारानी शगाब मनसूर की मुरीद थी। वज़ीर हमीद भी मनसूर का मुरीद था। इस कारण बहुत लम्बे समय तक उसके विरूद्ध अपराध का मुकदमा चलाया गया। परन्तु काज़ी अबू दोष ही दोष लगाता जा रहा था और मनसूर अपने बचाव में कुछ नहीं कहता था। उसने अपने बचाव की अपेक्षा शहादत को प्रमुखता दी। उसने बगदाद के लोगों से कहा- "मेरा वध न्यायानुसार है इसलिए न्याय करो और शीघ्र ही मुझे मार दो।" एक मुसाफिर ने कहा, हम आपको क्यों मारे?" मनसूर ने कहा, "इसलिए कि ऐसा करने से इतिहास में आप गाज़ी कहलाओगे जिन्होंने एक काफिर का वध करने जैसा पुण्य कार्य किया था और मैं शहीद कहलाऊँगा। दोनों का भला होगा।

परन्तु बगदाद के निवासी उससे प्रेम करते थे, मारना तो क्या वह उसका बुरा सोचते तक नहीं थे। अहमद इबन हंबल मुसलमानों का कट्टरपंथी नेता था जिसने हदीस तैयार की थी जिसमें पैगम्बर मोहम्मद की कुरान से बाहरी कथन और चमत्कारों का वर्णन था। मुसलमान इस हदीस का बहुत सम्मान करते थे। हंबल ने मनसूर के विरूद्ध जिस प्रकार केस तैयार किया था उसे देख कोई भी इस्लामी हुकूमत होती, मनसूर के विरूद्ध फैसला होना ही था क्योंकि इस्लाम अनुसार, "मैं

अल्लाह हूँ" का सिद्धान्त कुरान में वर्णित सिद्धान्तों का विरोधी है। जहाँ अल्लाह ही सर्वेश्वर है और उसका कोई शरीक़ नहीं।

बचाव के उपाय ढूंढने की बजाय मनसूर नये-नये एलान करता। उसने कहा, "अग्नि पवित्र है क्योंकि इसमें ही तो रूहें नृत्य करती दिखाई देती हैं।" अपनी झोपड़ी में उसने एक पत्थर रख लिया जिसे काबा कहा और उसके चारों तरफ परिक्रमा करनी शुरू कर दी। कहा, "मैं चांद-तारों और नक्षत्रों का स्वामी हूँ और स्वेच्छा से इन्हें घुमा रहा हूँ।" उसने यह भी कहा, "शीघ्र ही मेरे महबूब की अंगुली को मैं अपने खून से पवित्र करूँगा। वह शकुनों का पल आने वाला है।" उसकी कविता की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :

तुझसे मिलना लाखों स्वर्गों से अच्छा है
नरक और क्या है, तेरे वियोग के सिवा?
समस्त संसार के गुनाह माफ कर
मेरे मत करना।
मैंने तुझसे मोहब्बत की है जो अक्षम्य अपराध है।
तुमने मुझे इश्क की अग्नि में सौ बार जलाया
हज़ार बार जलाओ, क्योंकि हमारा इश्क हज़ार
गुणा है, सौ गुणा नहीं।

लिखा-

कत्ल कर मित्र, जल्दी कर
तुझसे मिलने का यही रास्ता बचा है।
मृत्यु मेरा जीवन होगी।
मृत्यु की नींद सोना मेरा जागना होगा।
पूरी तरह संसार से मिट जाना मेरी बड़ी पदवी है।
बहुत बड़ी पदवी
मुझे हवा पानी आग मिट्टी में मिलने दो
तब पृथ्वी में दबे मोहब्बत के बीजों पर नवयुवतियाँ
शराब जैसे पानी की वर्षा करेंगी।
देख लेना, इस संसार में सातों दिन फूलों की कैसी
बाढ़ आएगी।

जब उसे दण्ड दिए जा रहे थे तो लोग उसके आस-पास खड़े थे। जल्लाद ने मनसूर के सिर पर लोहे की सलाख मारी तो भीड़ में सनसनी फैल गई। लोग दुआएँ करने लगे। मनसूर ने कहाः

हे बगदाद के लोगो
तुमने हज़ारों बेगुनाहों और मासूमों को मारा
इस गुनाहगार को मारते समय तुम कांपे क्यों,
डर क्यों गए?

फिर कहा :

हे मालिक जो तुमने मुझे दिया, यदि इन लोगों को
भी दिया होता
मेरे साथ यह नहीं होना था जो होने लगा है। जिस
वस्तु से
तुमने इन लोगों को वंचित रखा है
यदि मुझे भी वंचित रखा होता
तब भी यह नहीं होना था जो हो रहा है।
परन्तु जो तुम करो वह भला,
जैसे तुम रखो वह भला। आमीन!

उसे पता चला कि जला कर राख बना देना है। जेल में से प्राप्त हुई उसकी अंतिम कविता यह हैः

कल की रात मेरी राख मेरा बिछौना बनेगी।
कल की रात वह अभागी रात होगी ,
जब मैं अपना बिछौना आँसूओं से भिगो नहीं सकूँगा।
हर समय, तुम कहते थे तेरे साथ होऊँगा,
यहीं आस-पास ही रहना और इश्क के रंग देखना।

ईसवी 911 में मनसूर के मुकदमे का केस वज़ीर अली इबन मूसा को सौंप दिया गया। वज़ीर ने केस की जाँच के बाद फैसला देते हुए कहा कि इस्लाम विरूद्ध अपराध का दोष सिद्ध नहीं होता क्योंकि मनसूर ने ऐसी कोई अवज्ञा नहीं की। परन्तु कुछ कथन एतराज़ योग्य हैं। वज़ीर ने कहा इसकी दाढ़ी काट दो, कोड़े मारो, चार दिन तक सुबह से शाम तक पेड़ पर लटका कर रखो। उसके बाद हर शाम जंजीरों में बांधकर जेल में बंद करो। सज़ा देकर उसे कारागार में बंद कर दिया जाता। कारागार में केवल कैदियों ने ही नहीं बल्कि कर्मचारियों और अफ़सरों ने उसका पूरा सम्मान किया। उसके लिए एक पृथक कमरा बनाया गया और गलीचे बिछा दिए गए। उसको सेवक रखने की इजाजत थी और वह लोगों से मिल सकता था। महारानी अकसर जेल में उसके उपदेश सुनने के लिए आती और प्रार्थना करती कि बगदाद को बददुआ मत देना। मनसूर कहता, “फकीर बददुआएँ नहीं देते परन्तु

झूठ भी नहीं बोलते। मैं बददुआ नहीं देता, सत्य कहता हूँ मुझे बगदाद बरबाद होता दिखाई दे रहा है। अंतर केवल इतना है कि पहले मेरी बरबादी होगी, उसके बाद बगदाद की तबाही यकीनी है।"

वह दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो चुका था परन्तु साथ ही हंबलों की ताकत भी बढ़ रही थी। उन्होंने बादशाहों को धमकाना शुरू कर दिया कि इस नास्तिक का लिहाज किया जा रहा है। हंबलों से बादशाह को खतरा दिखाई दे रहा था क्योंकि उन्होंने बगदाद को चारों तरफ से घेर लिया था और ललकार रहे थे। खलीफा शराब के नशे में डूबा हुआ था जब आधी रात में उससे मनसूर की मृत्यु के दस्तावेज पर हस्ताक्षर करवाए गए। सुबह होते ही मनसूर को मृत्यु दण्ड का आदेश पढ़कर सुनाया गया। यह मंगलवार का दिन था। आदेश था कि कल उसे फांसी दी जाएगी, उससे अगले दिन आग में शरीर को जलाया जाएगा और परसों राख को हवा में उड़ा दिया जाएगा। उसने आदेश सुना, अल्लाह का धन्यवाद किया और बंदगी में लीन हो गया। शिष्यों की भीड़ आस-पास जमा होनी शुरू हो गई। लोग अनेक प्रश्न करने लगे। एक युवक ने पूछा, "हजूर इश्क क्या होता है?" मनसूर ने कहा, "इश्क? आज देखना। फिर कल देखना, फिर परसों देखना?"

काज़ी ने मनसूर से पूछा, "तुम स्वयं को अल्लाह कहते हो परन्तु नमाज़ भी पढ़ते हो। कुरान में तो अल्लाह का गुणगान किया गया है फिर तुम उसे क्यों पढ़ते हो?" मनसूर ने कहा, "अपनी प्रशंसा अपने मुख से सुनने में जो आनन्द आता है वह दूसरों से सुनने में नहीं आता बेशक दूसरे भी मेरी प्रशंसा कर रहे हैं।"

उसके हाथ काट दिए गए तब उसने काज़ी से कहा, "यह हाथ काट दिए गए हैं जो तुम्हें दिखाई देते हैं। तुम उन हाथों को कैसे काटोगे जो कयामत तक पहुँचे हुए हैं?" फिर उसके पैर काट दिए गए। मनसूर ने कहा, "तुमने मेरे यह पैर काट दिए बहुत अच्छा हुआ। परन्तु वह पैर कैसे काटोगे जो सातों आकाशों के पार पहुँच जाते हैं?" कटे हाथों से उसने बहते रक्त को अपने मुख पर लगा लिया। काज़ी ने पूछा, "ऐसा क्यों किया?" मनसूर ने कहा, आशिकों का पंचस्नान पानी से नहीं खून से होता है।"

इब्राहिम उसका निजी सेवक था जो बहुत लम्बे समय से मनसूर अलहल्लाज की सेवा करता आ रहा था। फांसी वाले रास्ते की तरफ बढ़ते हुए हाथ जोड़ कर इब्राहिम ने प्रार्थना की, "मालिक मुझे भी कुछ देकर जाओ।" मनसूर ने कहा, "तुझे मैं तेरा अहम् देता हूँ। तुझे मैं तुझको सौंपता हूँ। जाओ बंदगी करो।

फांसी के तख्ते के पास लेकर गए तो लोगों की भीड़ में से शिबली दौड़ कर आगे आ गया। मनसूर ने एक कपड़ा मांगा जिसे गले में डालकर उसने अंतिम

अरदास की और फिर मुस्करा कर कहा- महबूब की जुल्फ इस बार फांसी का फंदा बनकर सामने आई है। इसका स्वागत है।

जल्लाद ने मनसूर के सिर पर लोहे की छड़ी मारी तो शिबली ने चीखते हुए अपने तन के कपड़े फाड़ दिए और मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर गया। मनसूर का सिर काट दिया गया और आदेशानुसार अन्य दण्ड दिए गए। बगदाद के मूक दर्शकों ने बहुत ही कारुणिक विलाप किया। यह घटना 26 मार्च 922 ईसवी की है।

वही हुआ जो होना था। मनसूर का अंत बगदाद की तबाही लेकर आया। विश्व प्रसिद्ध यह सुन्दर शहर लूट-खसोट और हत्या का शहर बन गया। शासन नष्ट हो गए और घातक हमले नित्य के काम बन गए। मनसूर ने स्वयं लिखा था, "सूर्य रोज उगता है और शाम होते ही डूब जाता है परन्तु दिलों में जो सूर्य उगते हैं वे कभी डूबते नहीं।"

जिस प्रकार की बंदगी तुम करते हो स्वयं भी वैसे ही बन जाते हो। मूर्ति पूजा करने वाला पत्थर हो जाता है, यदि मनुष्य की पूजा करोगे तो मनुष्य बनोगे और यदि ईश्वर की बंदगी करोगे तो क्या बन जाओगे, यह कोई मनसूर ही बता सकता है।

भाई नंद लाल का शेयर है- मनसूर का नाम लिया है तो रस्सी अपने कंधे पर रखना। जल्लाद बहाना कर सकता है कि रस्सी वह घर भूल आया है। मनसूर का जिक्र करने से पहले रस्सी का फिक्र करना।

राय बुलार खान साहिब : कोहिनूर का पारखी

जन्म-साखियों के विषय में प्रचलित है कि इनमें पौराणिक तत्त्व अधिक हैं। ये इतिहास से दूर हैं। कुछ साखियाँ गुरूवाणी के अर्थ से समानता नहीं रखतीं। ये सभी तथ्य सही हैं मिथिहास ही मिथिहास है परन्तु पौराणिक ग्रन्थों में नैतिक, दार्शनिक और धर्म के स्वाभाविक मौलिक तत्त्व मौजूद हैं। जो उचित लगे, जितना उचित लगे, जितना कल्याणकारी हो ग्रहण करो, शेष छोड़ दो। साहित्य रचना करते समय महर्षि बता गए हैं, "जब तुम गेहूँ खाते हो, गेहूँ के साथ उसकी तुहड़ नहीं खाते। जब तुम पशुओं के आगे तुहड़ फेंकते हो तब तुहड़ के साथ गेहूँ नहीं फेंकते।" मनुष्य में देवता है, दानव है और पशु है। पशु तूड़ी खाएगा, मनुष्य के लिए गेहूँ उपयोगी है और देवताओं के लिए रूहानियत। अभिलाषी अपनी-अपनी खुराक क्लासिक साहित्य में से अपने सामर्थ्य और आवश्यकतानुसार ही प्राप्त करेंगे।

शेष संसार जिससे वंचित था, बेबे नानकी जी, भाई मरदाना जी और रायबुलार खान साहिब को ईश्वर ने वह दृष्टि दी। हमने भाई लहना जी का नाम जानबूझ कर नहीं लिखा क्योंकि इस संक्षिप्त लेख में गुरू जी की नहीं, सिक्ख की तस्वीर देखने का प्रयास करेंगे। गुरू बाबा जी के बचपन की सादगी और मासूमियत में से अनंत रूहानियत का सूर्य उदय होता हुआ इन तीन सिक्खों ने प्रत्यक्ष देखा। बेबे नानकी आयु में बाबा जी से चार वर्ष बड़ी थीं, भाई मरदाना जी दस वर्ष और रायबुलार साहिब जी पच्चीस वर्ष के लगभग बड़े थे। तीनों गुरू बाबा जी की

शख्सीयत से प्रभावित थे। साखी में वर्णित है कि बाबा जी दिल की गहराई से इनको प्रेम करते थे। रास्ते में चलते हुए भाई मरदाना जब किसी जरुरी वस्तु की मांग करते तो महाराज नाराज़ नहीं होते थे।

यात्रा के दौरान तेज़ी से आगे बढ़ते हुए अचानक कह देते, "चलो भाई वापस सुलतानपुर चलें।" भाई मरदाना पूछते, "बाबा जी कल तो कहा था अभी और आगे जाना है।" बाबा जी कहते, "नाहं भाई। सुलतानपुर चलीऐ। बेबे नानकी हुण धीर नहीं धरदी। ओह तो बैरागणि हो गई है। उह असांदी भैण आही। जुमा दी भैण आही। असाडा मेल हुंदा आया है। जुगां तो हुंदा आया है। सुलतानपुर चलीए।" (बाबा जी कहते, ना भाई। सुलतानपुर चलें। बेबे नानकी में अब धैर्य नहीं रहा। वह तो वैरागी हो गई है। वह हमारी बहन है। युगों से बहन है। हमारा मेल होता आया है। युगों से होता आया है। सुलतानपुर चलें।)"

इसी धुन में रायबुलार साहिब को यात्रा के समय याद करते कहते, "भाई जी तलवंडी चलें। राय जी की मोहब्बत का भार हमारे कंधो पर बढ़ गया है। आगे चला नहीं जाता। तलवंडी चलें।"

वेई नदी में प्रवेश की साखी के विषय में सभी ने सुना है। सुलतानपुर का नवाब दौलत खान उदास हुआ। गोताखोर बुलाए। जाल फेंके। पूरी नदी में ढूंढ लिया, "बाबा नहीं मिलता, कहीं से उसका शव तो मिले।" शोकाकुल भाई जैराम (बेबे नानकी के पति) की बांह पकड़कर नवाब ने कहा, "नानक भला वज़ीर था। परन्तु ईश्वर के आगे किसका बस चलता है।" स्त्री पुरुष सांत्वना देने बेबे नानकी के पास गए तो बेबे ने कहा, "धैर्य रखो। वह डूब नहीं सकता। जो संसार को पार उतारने आया है, वह डूब नहीं सकता। धैर्य से काम लो।"

कपड़ों के समीप गर्दन झुकाए बैठे भाई मरदाना को नगरवासियों ने कहा, "धैर्य रखो भाई। घर चलो।" भाई जी बोले, "बाबा जी ने कहा यहाँ बैठो। मैं आया। क्यों जाऊँ यहाँ से? कपड़ों के पास बिठाकर गए हैं स्वयं। आएँगे महाराज। आप चलो।" तीन दिन तक वापस आने तक वह वेई नदी के तट पर विश्वासपूर्वक बैठे रहे।

'साखी' शब्द का अर्थ कहानी नहीं। उस घटना को साखी कहते हें, जो घटित हुई हो और जिसे घटित होते हुए किसी ने अपनी आँखों से देखा हो। हम सामान्य कहते है- ईश्वर साखी है। साक्षात यानी प्रत्यक्ष, प्रकट। गुरू जी के व्यवहार को जिन व्यक्तियों ने साक्षात देखा, सिक्ख साहित्य उनके बयान को साखियाँ कहता है। आज रायबुलार जी की साखी का अध्ययन करेंगे। पुरातन जन्म साखी, भाई मेहरबान वाली जन्म साखी और भाई बाला जी वाली जन्म साखी में से घटनाओं का

चयन किया गया है। भाई मनी सिंह वाली जन्म साखी राय जी के विषय में कुछ विशेष नहीं बताती। तथ्यमूलक जानकारी के स्थान पर हमने भावना पर कलम केन्द्रित की है। भावना का स्तर उत्तम है और जानकारी का गौण। सामने उत्तम भोजन पड़ा हो तो गौण की तरफ देखने की क्या जरुरत है?

राय साहिब जी ने बाबा जी का बचपन देखा। भोली सूरत, मधुर स्वभाव की सुगन्ध चारों ओर फैलती देखते रहे, परन्तु इस बच्चे में दैवी गुण थे, इसकी पहली झलक तब दिखी जब पिता ने यह देखकर कि पढ़ने में रुचि नहीं, पशु चराने के लिए भेज दिया। बाबा जी सो गए और भैंसों ने खेत उजाड़ दिया। किसान ने पिता को उलाहना दिया और रायसाहिब के पास जाकर जुर्माने की मांग की। बाबा जी को बुलाकर पूछा गया तो उन्होंने कहा- कोई खेत नष्ट नहीं हुआ। किसान ऐसे ही शोर मचा रहा है। जुर्माना निश्चित करने के लिए राय जी ने किसान के साथ कुछ व्यक्तियों को भेजा। जाकर देखा, खेत हरा-भरा था। राय जी ने किसान को झिड़का। उसने कहा- जी उजड़ा था। मैंने झूठ नहीं कहा। राय साहिब ने बालक को प्रेम किया और किसान को चले जाने के लिए कहा। उन्हें आश्चर्य तब हुआ जब एक दिन शिकार से वापस आते हुए देखा कि अन्य वृक्षों की छाया पीछे की तरफ चली गई है परन्तु जिस वृक्ष के नीचे बाबा सो रहा था उसकी छाया उसके ऊपर ही है। उनके दिमाग में खेत उजड़ने वाली घटना भी घूम गई... किसान ने झूठ नहीं कहा था.. . उजड़ा हुआ खेत पुनः हरा-भरा हुआ है। साथियों को कहा- मित्रो खेत उजड़ने वाली बात सत्य है, यह भी देखो। यह खाली नहीं। वापस हवेली में आकर पिता मेहता जी को बुलाकर कहा, "अपने इस पुत्र को मत डांटो। यह महापुरुष है। इसके कारण ही मेरा शहर बसा हुआ है। तुम भाग्यशाली हो। मैं भी भाग्यशाली हूँ जिसके शहर में इसका जन्म हुआ।" पिता ने कहा- जी खुदा की खुदा ही जाने।

खेत में जाने के लिए एक दिन राय बुलार साहिब जी हवेली से निकले। बाबा पशु चरा रहे थे। राय जी ने घोड़ा सेवक को सौंपा, जूते उतारे और निकट जाकर बाबा जी को सलाम किया, हाथ जोड़कर बोले, "बाबा जी मेरी मुराद पूरी करो। मैं जानता हूँ वडियाई खुदाइ ने तुधनो दिती आहा।" बाबा जी ने कहा- "राय जी, क्या कमी है। तेरी क्या मुराद है तुम मांगो।" राय साहिब बोले, "तुम अन्तर्यामी हो बाबा। दीनों और दुनिया का स्वामी। मुराद पूरी करो।" यह कहकर राय ने बाबा जी के चरण स्पर्श किए। बाबा जी आशीर्वाद देते हुए कहा, "मुराद पूरी हुई। खुदाइ तेरी शर्म दीन महि भी रखेगा अर दुनिया महि भी। अब जाओ। तुम्हारा उद्देश्य पूरा हुआ।" राय बुलार सलाम कर विदा हुआ। आगै दूर जाइ करि कुरनसि लगा करणे। चलै। चलि करि कुरनसि (झुककर सलाम करना) करै। पैदल घर आया। मेहरबान वाली साखी

में यह विवरण है। राय ने क्या मांगा था, साखी से पता नहीं चलता। इसका पता वैसाखी 1992 में पाकिस्तान जाकर ननकाणा साहिब में लगा जिसका वर्णन बाद में करेंगे।

पिता को चिन्ता हुई कि पढ़ना-लिखना तो दूर पशु चराने में भी कोई ध्यान नहीं। निर्णय किया कि दुकान खुलवा देते हैं। सौदा खरीदने के लिए दिए बीस रूपयों से बाबा जी ने भूखे साधुओं को भोजन खिला दिया, यह पाठकों को पता है। पिता ने क्रोधित हो पूछा- नानक है कहाँ? घर से बताया गया कि तालाब के समीप बैठा प्रभु की अराधना कर रहा है। पिता तेज़ कदमों से बाहर निकला। बेबे नानकी क्रोधित पिता के पीछे भागी। पिता को आते देख बाबा जी खड़े हो गए। दाएँ हाथ से बायीं गाल पर, बाएँ हाथ से दायीं गाल पर पिता ने दो थप्पड़ मारे। आँसूओं की कुछ बूंदे तालाब के किनारे गिरीं। बेबे नानकी ने पिता जी का हाथ पकड़कर कहा- पिता जी घर चलो। धीरे-धीरे चलते हुए तीनों घर आ गए।

रायबुलार साहिब तक यह समाचार पहुँचा तो बहुत व्याकुल हुए। आगे कभी इतने व्यथित नहीं हुए थे। सेवक को बुलाया और कहा, मेहता जी को बुला लाओ। पिता जी बहाना बनाकर किसी पड़ोसी के घर चले गए-जानते थे कि राय जी नाराज़ होंगे। और व्यक्ति भेजे, कहा- जहाँ भी हैं ढूंढ कर लाओ। नानक जी को भी साथ लेकर आना। पिता पुत्र हवेली पहुँचे तो राय जी उठे और नानक को गले से लगा लिया। कहा- मेहता जी आपको आदेश दिया गया था कि बच्चे को ऊँचा नहीं बोलना- आज आपने बहुत बड़ी गुस्ताखी की है। हमें बहुत दुःख हुआ। पिता ने कहा- जी क्या करूँ? किसी काम का नहीं। हमेशा नुकसान कैसे सहन करूँ? बीस रूपये उजाड़ दिए। राय ने सेवक से कहा- भीतर हवेली में बेगम साहिबा से बीस रुपये लेकर आओ। सेवक पैसे लेकर आ गया। कहा, मेहता जी को दे दो। पिता ने रुपये लेने से मना करते हुए कहा, "राय जी रुपये तो हमारे ही हैं क्योंकि आप हमारे हो और हम आपके। बात केवल बीस रुपयों की नहीं।"

राय ने कहा- "बात रुपयों की नहीं तो क्यों अत्याचार किया फरिश्ते पर? मेहता ने कहा- पिता होने के अधिकार से अपनी संतान को जिम्मेदारी सीखाना क्या मेरा कर्तव्य नहीं? आज यह नुकसान किया है कल और नुकसान करेगा। राय ने कहा- आपको दिखाई नहीं देता परन्तु हमें साफ दिखाई देता है, सारी दुनिया की दौलत का दरिया इस बालक के हाथों से बहता हुआ साफ दिखाई दे रहा है। अच्छा, आपको नहीं देता। नानक जी को दे देता हूँ। देने तो हैं मुझे। पिता ने कहा- कब लिए हैं आपने? राय जी ने कहा- बहुत कर्ज लिया हुआ है हमने। पता नहीं उतार सकेंगे या नहीं। उस अल्लाह का ज़रा सा भी भय नहीं है तुम्हें। किसी भी बात का

पता नहीं। मेहता तुम हिन्दू हो और मैं मुसलमान। तेरी जाति वाले चर्चा करेंगे नहीं तो अनेक बार सोचा है कि इस बालक को अपनी हवेली में ले आऊँ। समझा करो थोड़ा बहुत।

सुलतानपुर के नवाब दौलत खान का माल अफ़सर भाई जैराम वर्ष में दो बार जमींदारों से लगान वसूल करने आता था । दोनों राय साहिब की हवेली में चौबारे में बैठकर बातचीत कर रहे थे। हवेली के साथ ही कूआं था जहाँ लोग पानी भरने आते थे। भाई जैराम ने पानी लेने आई बेबे नानकी को देखा। पूछा- किस की लड़की है यह राय जी? बहुत सुन्दर है। राय ने कहा- हमारी बेटी समझो। बेदी पटवारी की नेक बेटी है। भला परिवार है। यह लड़की तुम्हारे योग्य है। पहले भी दिल में यह बात आई थी। अच्छा हुआ आज अचानक ही बात चली। अपने पुरोहित को हमारे पास भेजना। इधर बेदियों के पुरोहित को हम बुला लेंगे। संयोग मिल गए तो अच्छा होगा। भला खानदान है। शुद्ध हैं बिल्कुल।

बेबे नानकी की मंगनी का निर्णय राय साहिब जी की हवेली में हुआ। भाई बाले वाली जन्म साखी में वर्णित है- चैत्र वैशाखी को शनिवार के दिन। जैराम और नानकी की मंगनी हुई। माघ में विवाह हुआ।

माता-पिता को मिलाने के लिए भाई जैराम तलवंडी में बेबे नानकी को लेकर आए तो उन्हें मायके में छोड़, स्वयं राय साहिब जी को मिलने गए। सम्मान हुआ। राय जी बहुत प्रसन्न हुए। बातें करते हुए भाई जैराम जी ने कहा ससुर जी मैं बहुत प्रसन्न हूँ। आपका जो सम्मान कर सकता हूँ बताओ। पूर्ण श्रद्धा से करूँगा। राय साहिब ने कहा- एक काम करना होगा। भाई, आपका ससुर कठोर स्वभाव का है। नानक पूरी तरह फकीर है। पिता अपने फ़कीर बेटे के लिए दुर्वचनों का प्रयोग करता है। नानक जी को अपने पास रखो तो भला होगा। जैराम ने कहा- अभी ले जाता हूँ अपने साथ।" राय जी बोले- "नहीं, अभी नहीं। दो तीन महीने बाद भेजूँगा। नानक जी का विवाह मंगनी भी उधर अपनी तरफ ही करना। पिता का व्यवहार उचित नहीं।"

दिन महीने बीते। बाबा जी सुबह खेत की ओर से आ रहे थे। रास्ते में संन्यासी बैठा था। बाबा जी की अंगुली में अंगूठी और हाथ में कमण्डल देखकर पूछा- कौन हो तुम? बाबा जी ने कहा- नानक हूँ निरंकार का भक्त। संन्यासी ने कहा- मैं भी निरंकारी हूँ तुम भी। हम दोनों में कोई भेद नहीं। अपनी अंगूठी और कमण्डल मुझे दे दो। बाबा जी ने अंगूठी उतारी और दोनों वस्तुएँ उसके आगे रख दीं। संन्यासी ने कहा- मैं नकली निरंकारी हूँ, तुम असली हो। अपनी वस्तुएँ उठाओ। मैं इनका अधिकारी नहीं हूँ। बाबा जी ने कहा- फैंकी हुई वस्तु की तरफ देवता फिर से नहीं

देखते।" बाबा खाली हाथ घर आए, पिता ने क्रोध किया। पुत्र को कुछ कहने की अपेक्षा हवेली जाकर राय साहिब जी से इस घटना का जिक्र किया तो वह बोले, "नानक जी को भाई जैराम के पास भेज देते हैं। यहाँ तुम भी परेशान होते हो। वह भी दुःखी होता है। वहाँ ठीक है।" भाई बाले वाली साखी में लिखा है- राय जी ने जैराम को पत्र लिखा। कहा- भाई जी हमने नानक आपको सौंपा। जो कुछ तुमसे हो सके करना। संवत् 1544 माघ सदी तीन, नानक जैराम के पास सुलतानपुर गए।

राय साहिब ने नवाब दौलत खान को अलग से पत्र लिखकर प्रार्थना की कि जिस युवक को भाई जैराम लेकर आएंगे, उसको आदरपूर्वक अच्छी नौकरी देना।

राय साहिब जी पिता के स्वभाव से बहुत दुःखी थे परन्तु अपने इस कर्मचारी का सम्मान इसलिए करते थे क्योंकि वह नानक के पिता थे। दर्जनों गाँवों का स्वामी उस समय बीच में आ खड़ा होता जब पिता जी के क्रोधित बाण नानक जी की तरफ सेधे होते।

भाई जैराम बाबा जी को नवाब दौलत खान के पास ले गए। नवाब ने इंटरव्यू लेते हुए पूछा- पढ़ाई लिखाई कहाँ तक की? बाबा ने कहा- जी हिन्दी जानता हूँ, तोरकी (फारसी) जानता हूँ बहीखाते (एकाऊँटस) की पूरी जानकारी है। नवाब ने मोदीखाने की स्वतन्त्र जिम्मेदारी सौंप दी। बहन को पता चला, बहुत खुश हुई।

महीने बीतते गए। पुत्र-पुत्री से मिलने के लिए माता-पिता सुलतानपुर आए। बेबे घर में थी और बाबा नौकरी पर। कुशलता पूछी। पिता ने बेटी से पूछा- नानक कुछ जोड़ता भी है या सारा उजाड़ देता है? बेबे नानकी ने कहा- कमाता है तभी उजाड़ता है। आपका कुछ नहीं उजाड़ता। पिता जी आपकी यही बातें हमें अच्छी नहीं लगती। समाचार मिला तो बाबा जी बेबे के घर आ गए। माता-पिता के चरण छूए। किसी के विषय में कोई बात नहीं की परन्तु बाबा जी ने पिता को पूछा- राय जी कैसे हैं? पिता ने कहा, "बताना भूल गया। राय जी को पता चला कि आपको मिलने के लिए जा रहें हैं तो घर आए और कहा- हमारा नाम लेकर नानक जी के चरण स्पर्श करना।" साखी में वर्णित है- नानक जी नो ख़बरि होई (कि माता-पिता आए हैं) सुनते ही दउड़िआ। जांदे ही पिता दे पैरा ते डिगि पइआ। पिता ने माथा चूमा- नानक जी ने कहा- पिता जी राय बुलार कुशल तो है न। पिता कहा- पुत्र भला याद दिवाइया। राय तेरा मथ्था चूमणा आखता सी अर पैरां ते हथु रखणा कहिआ सी। असानू तां विसर गइआ सी।

भाई जैराम ने बिचौले का कर्तव्य निभाते हुए बटाला के अच्छे खानदान में बाबा जी की मंगनी करवाई। प्रसन्न माता-पिता तलवंडी पहुँचे और विवाह की तैयारियाँ शुरू कर दीं। साखीकार का कथन है- कालू राय बुलार के पास गया। राय

जी मुबारक हो। राय ने पूछा- कैसी मुबारक। कहा- जी नानक आपके गुलाम का विवाह तय कर आया हूँ। राय ने कहा- तुम नानक को गुलाम न कहो। फिर से हमें दुःख होगा। पिता ने कहा- जी सम्मान करना जरुरी है। राय ने कहा- अन्य बातें कम हैं सम्मान करने की? तेरा भला हो। तुम नानक को पुत्र के समान जानते हो। मैं जानता हूँ खुदा उसमें बोलता है।

बाबा जी की यात्राओं का दौर प्रारम्भ हुआ। एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा। भाई मरदाना जी का साथ। वर्षो बाद आए तो ऐमनाबाद में भाई लालो के घर विश्राम किया। निर्णय किया कि स्वयं तो भाई लालो के घर ठहरेंगे और मरदाना जी तलवंडी जाकर परिवार की सुख-शांति का पता लेने चले जाएं। भाई मरदाना जी गाँव में बाबा जी के घर गए। माता-पिता ने पुत्र की कुशलता पूछी तो उत्तर दिया कि सब कुछ ठीक है। साखी के शब्द हैं- पिता ने कहा- देहु मरदानिआ नानक दीआं खबरां। भाई मरदाना ने कहा- जी गिणती कोई नहीं सिफ़तां दी। तुसां घर चंद सूरज अर कृष्ण ने जन्म लिया है, महता जी, तुसी मंगल गावो। पिता ने कहा- सुन लो इसकी बातें। कहता है चाँद सूर्य का जन्म हुआ है। जिसने मेरे नाम को डूबो दिया है उसे यह चाँद सूर्य कहता है। मरदाना ने कहा- जजमान तुसांनू ऐहो खबर। उस नू सारी पैदाइस दी खबर। (यजमान आपको यही खबर है। उसे तो समस्त सृष्टि की खबर है।)

राय बुलार को भाई मरदाना के आने का समाचार मिला तो निमंत्रण भेजा। जाकर सलाम किया। राय ने कहा- कहो मरदाना नानक जी की खबरें। मरदाना जी बोले- जी नानक पातशाहों का पातशाह, पीरों का पीर, नानक फकीरां सिरि फकीर। उसके समान अन्य कोई नहीं। नानक जी के उपर एक खुदा है। नानक जी को खुदा ने महान पदवी दी। राय ने कहा- मरदाने हम वृद्ध हो चुके है। किसी तरह नानक जी को यहाँ लेकर आओ। दर्शन करें।

बाबा जी को बुलाने मरदाना जी तलवंडी से ऐमनाबाद की तरफ चल पड़े। पहुँच कर गाँव चलने की प्रार्थना की। बाबा जी ने कहा- क्या करेंगे भाई तलवंडी जाकर? पिता जी को दुःख होता है। उनका क्रोध देखने नहीं जाना। पिता जी को हम चोट प्रतीत होते हैं। देखों किस्मत। वही नानक है एक, अव्वल से आखिर, ज़ाहिर से बातन (बाहर, अंदर), एक है नानक, एक ही रहेगा। जैसा राय के साथ वैसा रंक के साथ। एक रहा। किसी को घाव के समान लगा किसी को घाव के उपर मलहम के समान। हमारा क्या दोष भाई। रज़ा करतार की।

भाई मरदाना ने कहा- बाबा जी राय साहिब बहुत याद करते हैं। उन्होंने भेजा है मुझे। दर्शन के लिए प्रार्थना की है। बाबा जी चुप हो गए। पुनः कहा, "ठीक है। चलते हैं। भाई लालो ने कहा- आपने एक मास तक मेरे पास रहने का वचन दिया था। अभी पच्चीस दिन हुए हैं। बाबा जी ने कहा, "पाँच दिन बाकी अपने सिर उधार रहे। फिर रहेंगे। अब जाना होगा।" भाई लालो ने कहा, "जी तकड़ियां अगै क्या जोर। जो रजाइ।" बाबा जी ने जाने की इजाजत मांगी और आशीर्वाद देकर गाँव की तरफ चल पड़े।

अपने घर नहीं गए। राय की हवेली पहुँचे। राय साहिब चारपाई पर बैठे थे। आयु अधिक हो गई थी। गुरू जी को देखते ही चारपाई से उठने का प्रयास किया परन्तु उठा नहीं गया। बाबा जी शीघ्रता से आगे आए और राय बुलार जी के घुटनों पर दोनों हाथ रखे। राय ने कहा, "बाबा वडा जुलम कीतो मैं उपर। तुसां नू सदिआ सी, जो कदम चूमां। साडी देह नु हथ क्यों लाया बाबा। सानू मार ना।"

बाबा जी ने कहा, "राय जी आप बड़े हो। हम आपकी प्रजा हैं।" राय जी बोले, "बाबा मुझे बख्श। और करतार से भी बख्शा।" गुरू जी बोले, "आप आदि जुगादि से बख्शे हुए हो।" राय ने फिर कहा, "मुझ पर अपनी कृपा करो या फिर बताओं मैं कृपा का अधिकारी नहीं।" बाबा जी ने कहा, "राय जी जिथै असीं तिथैं तुसीं।" राय ने कहा, "इच्छा पूरी तब हो बाबा जी यदि माथा कदमों पर रखने की इज़ाजत मिले।" राय बहुत अधीर हुआ तो बाबा जी की आज्ञा से सिर कदमों पर रखा और आँसूओं से चरण भिगो दिए। बाबा जी ने आशीर्वाद दिया।

फिर राय ने हमीद सेवक को बुलाया कहा, "सुधे को बुला लाओ। अच्छा भोजन तो वही बना सकता है।" हमीद गया तो पूछा, "बताओं बाबा जी क्या खाना है।" बाबा जी ने कहा, "करतार जो भेजता है खा लेते हैं।" राय जी ने पूछा, "आज्ञा हो तो बकरा बना लें।" बाबा जी ने कहा, "पुछण दसण फरमाइशां दी की लोड़ इथे। खुश हो के जो खुआओगे खावांगे। जो तुसां नु भावे सोई असां लई अच्छा है।" (पूछने बताने या फरमाइश की क्या आवश्यकता है यहाँ प्रसन्नता से जो भी खिलाओगे वहीं खा लेंगे। जो आपको पसंद है वही हमारे लिए अच्छा है।) राय ने रसोइये को कहा, "पहिलो मीठा बनाओ। सलूना बाद में खायेंगे।"

यह प्रसंग भाई बाला जी की साखी में से लिया गया है। माता-पिता हवेली में आए और मिलकर चले गए।

राय बुलार ने सारी उम्र बाबा जी का सिमरन किया। अपने मित्रों, सगे-सम्बन्धियों से बात करते समय कहते, "यारो! कौन ऐसा भाग्यशाली है संसार में हमारे जैसा। हमने वह कुछ देख लिया जिसे देखने के लिए जंगलों में तपस्या

करते हुए उम्र बीत जाती है, फिर भी नहीं नसीब होता। बैठे-बैठे ही हम धनी हो गए बिना कुछ किए। स्वेच्छा से कृपा करते हुए मित्रों के समान ईश्वर स्वयं सामने रखी चारपाई पर बैठ जाया करते थे। शिकवा करेंगे ज़माने। कि क्या था हमारे पास उसके लिए। सेवा थी एक, जो हमने दिल से की। इस निर्धन सिक्ख के पास और कुछ नहीं था। उसके पास सब कुछ। वह चांद तारों का मालिक।"

एक दिन राय जी ने कहा, "बाबा जी आपके माता-पिता वृद्ध हो गए हैं। पता नहीं कब तक रहेंगे। आप वर्षो बाद आए हो। माता-पिता को मिलने आते थे तो हमें भी दर्शन हो जाते थे। माता-पिता यदि न रहे तो किसको मिलने तलवंडी आओगे आप? तब हम क्या करेंगे।" बाबा जी ने हँसते हुए कहा, "अनजान न बनो राय जी। अन्य किसी को पता हो या न हो आपको पता है सब। आपको मिलने आता हूँ तो माता-पिता से मिल लेता हूँ। पिता के हिसाब अनुसार उनका नाम डुबोने के लिए नानक ने जन्म लिया है।"

राय जी ने कहा, "जी अब कई महीनों तक जाने नहीं दूंगा आपको। हमारी प्रार्थना अस्वीकार न करना। बाबा जी ने कहा, "क्या करेंगे यहाँ रह कर। स्नान करने के लिए पानी नहीं मिलता। तालाब भी सूखा हुआ है। दरियाओं-समुद्रों के मित्र यहाँ नहीं रहेंगे। तलवंडी आपको मुबारक।" राय ने कहा, "चार कूंटां विच बाबा चार खूह खुदवाइ देसां। अर चलवाइ देसां सदाबरत लंगर तुसां दे मुबारक हथां दी छूह नाल। टिकाना करन लई हां तां करो इक बार।"(चारों दिशाओं में बाबा जी चार कूएँ खुदवा देता हूँ। और आपके शुभ हाथों से हमेशा के लिए चलने वाले लंगर खुलवा देता हूँ। रहने के लिए एक बार हाँ तो कीजिए।) बाबा जी ने कहा, "लंगर ता चलेगा राय जी पर किसे होर बिध नाल।" (लंगर तो राय जी अवश्य चलेगा परन्तु किसी अन्य विधि से।) गुरू जी ने निर्णय किया कि अगली यात्रा पर जाने से पहले राय जी को विदा करके जायेंगे। 1515 में अपने हाथों से महाराज ने आशीर्वाद देकर संसार से राय जी को विदा किया।

साखीकार यहीं साखी को समाप्त कर देता है। वह कौन सी विधि है जिसके कारण लंगर चलेगा, नहीं बताई। परन्तु अंत में इस भेद का ज्ञान होता है। जब भाई मरदाना जी का अफगानिस्तान के 'कुरम' दरिया के तट पर निधन हो गया तब महाराज वापस तलवंडी पहुँचे। फिर यात्राओं पर नहीं गए। करतारपुर नगर की स्थापना कर हल चलाया। खेती की। तब तक माता-पिता और राय बुलार जी का देहांत हो चुका था। जो फसल हुई, सारी लंगर में डालकर अरदास की। सिक्खों को 'दसवन्ध' (भाव अपनी आय का दसवां भाग) निकालने की आज्ञा दी। बाबा जी ने सारी फसल से लंगर आरम्भ किया। उनका उद्देश्य यह बताना था कि किरत सर्वोत्तम

है और बाबा जी की सारी कमाई संसार के लिए है। केवल वाणी नहीं- रिज़क भी। लोग सारी उम्र काम करते हैं। अंत में वृद्धावस्था में परमात्मा का नाम सिमरन करते हैं। गुरू बाबा जी ने संसार के विपरीत किया। युवावस्था में नाम सिमरन किया। बुढ़ापे में हल चलाया, फसल उगायी। पूरी आयु में एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता जब बाबा जी ने जेब में पैसे संभाले हों। दूसरी ओर, संकेत द्वारा यह बता दिया कि धन जमा करना उचित नहीं। भाई मरदाना जी को कहीं से सोने की मुहर मिली। रात होने पर कहने लगे, "बाबा, डर लगता है।" क्यों लगता है, किससे लगता है, बाबा जी ने कुछ नहीं पूछा। बस इतना कहा, "भाई जिस वस्तु के कारण डर लगता हो, उसे फेंक दो। डर चला जाएगा।" यह तथ्य केवल धन- सम्पत्ति पर ही लागू नहीं। कोई भी वासना आई तो डर साथ-साथ आ गया। वासनाओं से स्वतन्त्र व्यक्ति शाहों और फकीरों का स्वामी होता है।

साखीकार ने कलियुग का भयानक रूप चित्रित किया है। कड़कती बिजली, गरजती घटाएँ, उबलते समुद्र, जंगलों को भस्म करती और आकाश को छूती लपटों के वस्त्र पहन कर कलियुग बाबा जी से मिलने आया। वन, तृण, सभी प्राणी कांपने लगे। बाबा जी शांत चित्त उसे देखते रहे। कलियुग को शांत होने के लिए कहा, और पूछा- बताओ कैसे आए हो। कलियुग ने कहा- आपकी कुशलता पूछने आया हूँ बाबा जी। नमस्कार किया। बाबा जी ने कहा- तेरीओ वाड़ी दा तां अंगूर हां मैं। तू नहीं ख़बर लयेंगा होर कौन लएगा? (तुम्हारी बगीची का अंगूर हूँ मैं, तू खबर नहीं लेगा, और कौन लेगा?) कलियुग ने कहा बताओ क्या सेवा करूँ आपकी। बाबा जी ने कहा- ऐना करीं कि जो साडी मंने उस नु दुखी न करीं।(इतना करना जो हमारी माने उसे दुःख मत पहुँचाना।) कलियुग ने कहा- यह फैसला हो चुका है बाबा। जो तेरी मानेगा, उसे किसी भी युग में संताप नहीं होगा। नमस्कार कर शांत चित्त हो कलियुग वापस चला गया।

राय बुलार और बाबा जी की एक अन्य सांझ का वर्णन हमारी साखियों में नहीं मिलता। यह बहुत बड़ी घटना थी परन्तु आश्चर्य हो रहा है कि इसका वर्णन साखियों में क्यों नहीं किया गया। यह साखी ननकाना साहिब में मुझे एक नेक मुसलमान ने सुनाई। ननकाना साहिब माथा टेका, कीर्तन सुना, लंगर खाया। सोचा, मुसलमानों से मिलकर उनसे बाते करूँ। कॉलेज तो यहाँ कोई होगा नहीं, स्कूल अवश्य होगा। किसी अध्यापक को मिला जाए। पुलिस अधिकारी को बताया कि मैं प्रोफैसर हूँ। किसी प्रोफैसर या शिक्षक को मिलना चाहता हूँ। डी.एस.पी ने बताया कि यहाँ से दो सौ मीटर दूरी पर कॉलेज है, चले जाओ। चलता गया। आगे दरवाजा दिखाई दिया। अंग्रेजी और उर्दू भाषा में लिखा हुआ था- गुरू नानक गवर्नमेंट डिगरी

कॉलेज ननकाना साहिब। भीतर गया। कोई दिखाई नहीं दिया। चौकीदार ने सलाम किया और कहा- जी बतायें क्या सेवा कर सकता हूँ? मैंने कहा, कोई प्रोफैसर नहीं? उसने कहा- हैं। परीक्षाएँ हो रही हैं। डियूटी पर हैं। कोई विशेष काम है तो जिन्हें कहो उन्हें बुला लाता हूँ। मैंने कहा- काम तो कोई नहीं। घंटे तक फिर आ जाऊँगा। पांच बजे। वापस जाने को था कि एक साढे छह फीट लम्बा 65-70 वर्ष की आयु का बुजुर्ग सलवार कमीज़ पगड़ी पहने मेरी ओर शीघ्रता से आया। सरदार जी सत् श्री अकाल। वापस क्यों जा रहे हो? मैंने आपको देखा तो मज़दूरों को छुट्टी कर दी। मैं ठेकेदार हूँ। लड़कों के लिए होस्टल बनवा रहा हूँ। आओ इधर बैठें। बातें करेंगे। दो-तीन कुर्सियां मंगवा लीं। कोई भी मज़दूर छुट्टी करके घर नहीं गया, हमारे आस-पास ज़मीन पर बैठ गए। बातें करते समय मैंने पूछा- गुरूद्वारा साहिब के नाम पर कितनी ज़मीन है यहाँ? उसने कहा- जी आपने ऐसा क्यों पूछा? रहने, खाने-पीने में कोई कठिनाई आई है? मैंने कहा- नहीं। कोई कमी नहीं यहाँ। यह मेरे बाबा जी का जन्मस्थान है। क्या इस जगह के लिए मुझे चिंता करने का अधिकार नहीं? उसने कहा- बिल्कुल नहीं। चिन्ता करने का अधिकार बड़ों का है। हमारा तुम्हारा अधिकार केवल बंदगी करना है। हज़रत बाबा नानक अल्हिस्लाम हमारी चिन्ता करता है।

मैंने कहा- बिल्कुल ठीक कहा। अच्छा यह बताओ कि जानने का हक तो है? उसने कहा, हाँ, जानने का अधिकार है। साढे सात सौ मुरब्बे ज़मीन है गुरूद्वारे के नाम पर। फिर मैंने पूछा-क्या महाराजा रणजीत सिंह ने दी थी यह ज़मीन। ठेकेदार ने कहा-बिल्कुल नहीं। इतनी ज़मीन किसी भी गुरूद्वारा साहिब के नाम पर महाराजा ने नहीं लगवाई। यह हमारे भट्टियों के सरदार ने दी है। मैंने फिर पूछा- भट्टियों का सरदार कौन? उसने कहा भट्टियों के सरदार को नहीं जानते? यहाँ पचास गाँवों के बच्चे-बच्चे को उसका और बाबा के नाम का पता है। उसका नाम था राय बुलार ख़ान साहिब। यहाँ अधिकतर गाँव भट्टियों के हैं। आपने सरदार जी का नाम नहीं सुना, मैंने कहा- इन सरदार का नाम तो हमारे कण-कण में बसा हुआ है भाई, परन्तु मुझे यह नहीं पता था कि राय साहिब भट्टी थे।

ठेकेदार ने कहा- जी हम आम नहीं हैं। मैं भी भट्टी हूँ। सारे संसार के मालिक बाबा जी को सर्वप्रथम हमारे सरदार जी ने ही पहचाना था। एक कोहिनूर को ढूंढ लिया था भट्टी सरदार ने, उस समय जब वह बालक थे। अब सुनो ज़मीन की बात। राय साहिब पन्द्रह सौ मुरब्बे ज़मीन का मालिक और स्वाभिमानी ज़मीदार था, परन्तु था नेकी का दरिया। बाबा जी का बहुत सम्मान करता था। उसकी आयु 40 वर्ष से ऊपर थी परन्तु अभी तक संतान नहीं हुई थी। बताते हैं कि घोड़े पर

सवार होकर ज़मीन के दौरे पर निकला था। गुरू बाबा जी की आयु 12-13 वर्ष की थी। बाबा जी पशु चरा रहे थे। राय साहिब घोड़े से उतरे। जूते उतारे। बाबा जी के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए, कहा- बाबा जी मेरी मुराद पूरी करो।

यह सुनकर मेरी आँखों के सामने जन्मसाखी का पूरा दृश्य घूम गया। मैं जानता था कि यह घटना घटी थी। ठेकेदार ने आगे बताया- जी कभी बालक घर में खेले, यह मुराद मन में लेकर प्रार्थना करने गए थे। बाबा जी ने आशीष दी, कहा- राय तुसां दी मुराद पूरी होई, शक न करना।"

एक वर्ष बाद राय जी के घर पुत्र ने जन्म लिया। सरदार ने प्रसन्न होकर बहुत बड़ी दावत दी। नवाब साहिब दौलत खान स्वयं इस जश्न में शामिल होने के लिए आए थे। गाँवों के गाँव आ गए थे। इस सामूहिक जश्न में धन्यवाद करने के बाद राय साहिब ने अपनी आधी ज़मीन हज़रत बाबा नानक के नाम कर देने की घोषणा की। तब वह साढे सात सौ मुरब्बे ज़मीन बाबा जी के नाम हुई जो अब तक है। पंद्रह वर्ष पहले हमारे मन में ख्याल आया कि इसके मालिक हम हैं, कब्जा हमारा, काश्तकार हम, परन्तु रिकार्ड में हमारा नाम कहीं भी नहीं। हमारी पीढ़ियों ने इस ज़मीन पर नाजायज अधिकार किया हुआ है। दो सौ मुरब्बे ज़मीन बची हुई है गुरूद्वारे के कब्ज़े में। शेष बची ज़मीन पर भट्टी हल चलाते और फसल उगाते हैं। हमने शेखपुरा के ज़िला न्यायालय में मुकद्दमा कर दिया कि हमारे बुजुर्गों के पूर्वज राय बुलार साहिब का दिमागी संतुलन ठीक नहीं रहा था। इसलिए उसने आधी ज़मीन एक फकीर नानक के नाम कर दी थी परन्तु उसके हकदार हम हैं। काबज़ काश्तकार भी हम ही हैं। हमारे नाम इंतकाल तबदील हो। लो जी तारीखें पड़ी, वाद-विवाद, सूचनाएं, रिकार्ड सब कुछ हुआ। चार वर्ष तक मुकद्दमे की कार्यवाही चली। फैसले की तिथि आई तो फैसला हमारे विरूद्ध। इंतकाल परिवर्तित नहीं हो सकता। हमने लाहौर हाईकोर्ट में अपील दायर कर दी। तीन चार वर्ष तक वहाँ भी मुकद्दमा चला। जजमेंट मिली, इंतकाल बदला नहीं जा सकता। अपील खारिज, दाखिल दफ्तर। हमने इस्लामाबाद की सुप्रीम कोर्ट में अपील दायर की। तीन वर्ष तक मुकद्दमा चला। अंत में जब फैसला सुनाने का समय आया तो न्यायाधीशों ने कहा- अपने साथ चार-पांच जिम्मेवार व्यक्ति लेकर आना। वकीलों को नहीं लाना। कोई जरूरी बात करनी है। हम ने पूछा जी क्या बात करनी है, कुछ संकेत दो ताकि तैयारी करके आएं। आपस में विचार, परामर्श भी तो करना है। सामूहिक कार्य है। न्यायाधीशों ने कहा- आप सब ने यह मुकद्दमा दायर कर गलत काम किया है। यह बताना है। एक महीने आगे की तिथि लिख दी।

पहले प्रत्येक गाँव के लोगों ने अलग अलग विचार विमर्श किया। फिर सब एकत्रित हुए। आठ व्यक्ति चुने गए जो न्यायाधीशों से बात करने जायेंगे। तिथि समीप आ गई। सैंकड़ों व्यक्ति अदालत के बाहर पहुँच गए। न्यायाधीशों ने एक घंटे तक अदालत की कार्यवाही पर रोक लगा दी। हमें पीछे आराम वाले कमरे में ले गए। चाय मंगवा ली। फिर बात शुरू की। न्यायधीशों ने कहा- हमने बहुत ध्यान से इस केस का निरीक्षण किया है। आपने गलत काम किया है। जिन फकीरों पर मुकद्दमा दायर किया है उनसे मुरादें मांगते तो ठीक था। वह नेक व्यक्ति जिनके कारण तुमने इस संसार की रोशनी देखी, आपने उन पर मुकद्दमे किए। दिमाग हिल गया ऐसे दोष लगाए। सरदार राय साहिब का आधा दिमाग तो कायम रहा जो आधी ज़मीन बचा ली। जिस फकीर के नाम पर यह ज़मीन इंतकाल की गई उसका तो पूरा दिमाग हिला हुआ समझो क्योंकि उसने तो इस ज़मीन की तरफ कभी देखा ही नहीं। उसकी संतान ने भी इस ज़मीन पर अपना अधिकार नहीं जताया। सिक्खों ने कभी भी इस ज़मीन पर कब्ज़ा नहीं किया, न ही मुकद्दमा किया। आपने पीढ़ियों से इस पर नाजायज कब्ज़ा किया हुआ है, अब अदालतों में दावा किया। दस बारह वर्ष से तुम लोग बुजुर्गों का अपमान करते आ रहे हो। किसी ने नहीं समझाया कि यह गुनाह मत करो? ज़मीन से अधिक वह तुम्हें प्रेम करते थे। तुम सब उन दरवेशों से नफ़रत करते हो और ज़मीन से प्रेम। तुम्हारे पास ही रहेगी ज़मीन। मुकद्दमा न करते तो उचित था।

हमने कहा, जी ज़मीन पर हमारा ही कब्ज़ा है परन्तु रिकार्ड में हमारा नाम नहीं है। न्यायाधीशों ने कहा- नाम नहीं रहेगा। न तुम्हारा न हमारा। नाम रहेगा अल्ला परवरदगार का। नाम रहेगा उसकी बंदगी करने वाले दरवेशों का। वह जो चांद तारों के मालिक थे वही रहेंगे, और कोई नहीं रहेगा। हमारा आपको परामर्श है कि मुकदमा वापिस ले लो। हमने कहा, जी बाहर हमारा भाईचारा खड़ा है। उनके साथ विचार-विमर्श कर लें। न्यायाधीशों ने कहा- अवश्य करो। अभी साढे ग्यारह का समय है। शाम चार बजे तक सलाह कर लो। यदि मुकद्दमा वापस न लिया तो हम शाम को फैसला सुना देंगे। अदालत से बाहर हमने तुम्हें यह एक सलाह दी है। इस सलाह को मानने की तुम पर कोई पाबंदी नहीं है। निर्णय शाम को सुनाया जायेगा।

हम बाहर आ गए। भाईचारे के व्यक्ति प्रतीक्षा कर रहे थे। सारी बात बताई। सोचने विचार करने लगे। अंत में निर्णय किया गया कि दोनों में से एक का चयन करना है। मुकद्दमा वापस लेना है या मुकद्दमा हारना है। न्यायाधीशों की

बातों से पता चल चुका था कि जीतने की कोई उम्मीद ही नहीं। हम सभी ने मुकद्दमा वापस लेने का निर्णय किया। शाम चार बजे वकीलों सहित उपस्थित होकर मुकद्दमा वापस ले लिया। हम बच गए सरदार जी। मुकद्दमा वापस न लेते तो हारना था। दुनिया से भी जाते और दीन से भी। अब दोनों ही बच गए। अगली दरगाह में इन दरवेशों के कदमों में खड़े होकर गुनाहों की क्षमा मांगने के योग्य रह गए। वे बहुत दयालु हैं। अपनी संतान की गलतियों को माता-पिता क्षमा कर दिया करते हैं। भाई साहब देखो कितनी शक्तियों के स्वामी है हज़रत बाबा नानक। सदियां बीत गईं परन्तु नेकी का संदेश अभी भी किसी न किसी माध्यम से हम तक पहुँचा रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट को कहा कि इन्हें गलत मार्ग पर चलने से रोको। सुप्रीम कोर्ट ने रोका। बाबा जी ने सुप्रीम कोर्ट के हाथों हमारा अपमान नहीं होने दिया। रोका भी। सम्मान भी दिया। उसके नाम को लाखों सलाम। आज भी माल रिकार्ड अनुसार इस ज़मीन पर गुरू बाबा जी खेती करते हैं।"*

यह लघु संगत बहुत प्रेम से गुरू जी की महिमा याद करके उठी। मैं वापस गुरूद्वारा साहिब पहुँचा। पाँचवी में पढ़ने वाला छोटा बेटा सुखनबीर कहने लगा- कहाँ चले गए थे? एक घंटे से प्रतीक्षा कर रहे हैं। बताया तो था कि जूते खरीदने जाना है? बहुत सुन्दर और मज़बूत होते हैं यहाँ के जूते। मैंने कहा- अच्छी बातें सुनकर आया हूँ। बड़े बेटा हुसनबीर जो सांतवी में पढ़ता था ने कहा- जहाँ जहाँ जायेंगे अच्छी बातें सुनने को मिलेंगी। यह बाबा जी का देश है। चलो बाजार चलें।

---

* मैं इस मुकद्दमें सम्बन्धी जानकारी एकत्रित करने का प्रयास करता रहा। 2 दिसम्बर 2008 को जानकारी मिली कि तलवंडी ननकाना साहिब के निवासी "सरवर भट्टी और अन्य ... बनाम स्टेट" की तरफ से मुकद्दमा दायर किया गया था। इस व्यक्ति की मृत्यु 2004 में हो गई थी। पाकिस्तान की विधान सभा का सदस्य रायबशीर भट्टी भी इस मुकदमे में शामिल हुआ, वह भी अब नहीं रहे। उनका पुत्र राय जहानख़ान इस समय पंजाब विधान सभा का सदस्य है। सरवर भट्टी के दो पुत्र हैं, बड़ा सय्यद भट्टी और छोटा पप्पी भट्टी। राय बशीर का भाई रशीद हुसैन खान भट्टी अभी जीवित है। उससे पता चला कि हाईकोर्ट के जिस न्यायाधीश ने फैसला सुनाया था उसका नाम जस्टिस जनाब शौकत हुसैन खान है और पता है- मकान नं. 104 ए, कैनाल व्यू, लाहौर, पाकिस्तान। और जानकारी एकत्रित कर रहा हूँ। कुछ कठिनाइयां आ रही हैं। भट्टियों सहित अन्य लोग भी जानकारी देने में संकोच करते हैं। उनका ख्याल है कि सिक्ख मुकद्दमा करने के लिए, इस ज़मीन पर कब्ज़ा करने के लिए, सूचना एकत्रित कर रहे हैं। मैंने जून 2011 को प्रधानमन्त्री जी को पत्र लिख कर निवेदन किया कि राय बुलार खान साहिब की कब्र पर कूड़े के ढेर हैं और महिलाएँ गोबर के उपले बनाती हैं। मैंने राय जी के उत्तराधिकारियों से कहा कि इस पवित्र जगह की सेवा करें। उन्होंने कहा- सब कुछ तो सरदार सिक्खों को दे गया, सिक्ख क्यों न सेवा संभाल करें? मैंने शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबन्धक कमेटी के प्रधान और सचिव को भी पत्र लिखे थे। सरदार मनजीत सिंह कलकत्ता का उत्तर आया कि पाकिस्तान सरकार ने यह कर सिक्खों को सेवा करने की आज्ञा नहीं दी कि यह बुतपर्स्ती है, इस्लाम इसकी इज़ाजत नहीं देता। सरदार मनमोहन सिंघ प्रधान मन्त्री जी ने पाकिस्तान सरकार से बात की सरकार वहाँ बाग लगाने को तैयार हो गई। प्रधान मन्त्री जी के पत्र की नकल अंतिका-1 पर लगा दी है - लेखक।

एक बहुत बड़ी दुकान में दाखिल हो गए। बच्चे जूते देखने लगे। मैं मोची के साथ बातें करने लगा। पूछा- हिन्दुस्तान से चार बार ही लोग यहाँ आते हैं। आगे पीछे तुम्हारा काम कैसे चलता है? उसने कहा- जी रौनक तो आपके आने से ही होती है परन्तु दुनिया में से सिक्खों के काफिले यहाँ आते ही रहते हैं। बहुत धनी व्यक्ति आते हैं। कई तो अपना जहाज़ ही लेकर आ जाते हैं। लम्बी लम्बी चमकती कारों के काफिले उतरते हैं। परिवारों के परिवार आते हैं। कोई एक महीना तो कोई दो महीने तक भी ठहरते हैं। मैंने पूछा- आपने तो सभी देशों के काफिले देखे हैं, हमारे हिन्दुस्तानियों जैसे सिदकवान हैं वह या कोई अन्तर दिखाई दिया? मोची बोला- अन्तर है। यहाँ जितने समय तक रहते है पैरों में जूते नहीं पहनते नंगे पाँव ही घूमते हैं। कहते हैं- यह हमारे बाबा जी की धरती है। लाखों स्वर्गो से उत्तम। आप जूते पहने हुए हैं, और आपको जूते खरीदने हैं। वह नंगे पाँव घूमते हैं ननकाना साहिब में। अपने व्यवसाय के विरूद्ध बातें कर रहा हूँ सरदार जी परन्तु पीरों के पीर की रहमत अनंत हैं। चार पैसों के लिए झूठ क्यों बोलूं? गुरू नानक साहिब बाबा-ए-आलम मुट्ठियाँ भर भर कर स्वयं देता रहता है हमें अशरफियाँ।

कलम-दवात लेकर आज मेरे स्थान पर यदि पुराना साखीकार बैठा होता तो अंतिम शब्द यह लिखताः राय बुलार जी की साखी सम्पूर्ण होई गुरू प्रसादि नाल। बीते समियां विच महापुरूखां की कमाई वंडी जांदी। घर जमीन कुटंब के। पुंन सेवकां के। पाप निंदकां के। रिदै का गिआन जगिआसूआं का। गुरू बाबे का सारा किछु उतम, सब किछु सगल संसारां के नाम। जिस महल महि गुरू बाबे का टिकाणा तिथै मिहरबानी ओ मिहरबानी। होर किछु नहीं। सब मंगल गावहु जी। (राय बुलार जी की साखी गुरू कृपा से पूरी हुई। बीते समय में महापुरुषों की कमाई बांटी जाती थी। घर, ज़मीन, कुटुम्ब को। पुण्य सेवकों को। पाप निंदकों को। हृदय का ज्ञान जिज्ञासुओं को। गुरू बाबे का सब कुछ उत्तम है, सब कुछ इस संसार के नाम है। जिस घर में गुरू बाबा निवास करता है वहाँ मेहरबानी ही मेहरबानी होती है। और कुछ नहीं। सभी मिलकर मंगल गाओ जी :

हरख अनंत सोग नहीं बीआ।
सो घरि गुरि नानक कउ दीआ। म.5 गउड़ी, अंक 186

बोलो जी वाहिगुरू वाहिगुरू। दिन शनिवार। तिथि सताईस। महीना सितम्बर। वर्ष दो हजार तीन। धन्य बाबा गुरू नानक देव महाराज। धन्य उसके सिक्ख।

भाई मरदाना जी

जिस संगीतकार का आप चित्र देख रहे हैं, यह भाई मरदाना जी का नहीं है। संगीतकार के हाथों में पकड़ा वाद्य रबाब नहीं सारंगी है। मेरा विश्वास है कि सर जी.एस. ठाकुर सिंह ने 1964 में जब यह चित्र बनाया था, तब ब्रुश चलाते हुए उन्हें भाई मरदाना जी की रबाब की कुछ सूक्ष्म धुने पुरस्कार के रूप में सुनने को मिली। पाठक जब वास्तविक पेटिंग (20" 28") देखेंगे तब वह मुझसे सहमत होंगे। पेटिंग के नीचे लिखा है- "इलाही धुन।" आगे लिखा है... "जो भीड़ के लिए नहीं, स्वयं के लिए गाता है।" दूर पीछे एक गुबंद है। जिस भूमि पर सारंगी वादक खड़ा है, पथरीली है। परन्तु चट्टाने हैं कि पिघल कर पानी बनती दिखाई दे रही है। खाईयाँ और दरारें लहरों में बदल रही हैं।

स्कूल में पढ़ते शास्त्रीय गायन सीखने वाले कुछ बच्चों को मैं मिला और पूछा, "जब तुम्हारी आयु का था, दिल करता था लेखक बनूँ। ऐसे ही तुम्हारे कुछ सहपाठी बच्चे चित्रकारी सीखते देखे गए। तुमने संगीत सीखने के बारे में क्यों सोचा? एक ने कहा, "लेखक और चित्रकार, यदि चाहें तो अपनी कला से किसी का मन दुःखी कर सकते है, उपहास उड़ा सकते हैं, झूठ बोल सकते हैं। संगीत ऐसा नहीं करता। संगीतकार चाहे तो भी नहीं। कोई संगीतकार छोटा है कोई बड़ा... परन्तु संगीत चोट नहीं पहुँचाता, अपमान नहीं करता, झूठ नहीं बोलता। यह सभी को स्नेह पूर्वक सांत्वना देता है।"

मैंने संगीत शिक्षक से कहा, "आज के बच्चे बहुत गप्पी हो गए हैं। अंक ज्यादा लेने के लोभ से संगीत पढ़ते हैं परन्तु बातें बड़ी बड़ी सुनाते हैं।" शिक्षक ने कहा, "जिस बच्चे के साथ आपकी बात हुई है वह विज्ञान का विद्यार्थी है और उसने

फैसला किया हुआ है कि संगीत को कभी भी पाठ्यक्रम के विषय के रूप नहीं पढ़ेगा।"

महान सितारवादक उस्ताद राम नारायण जी का साक्षात्कार पढ़ा। सारंगी के शौक़ के विषय में पूछने पर उन्होंने कहा, "आदमी को अहंकार हो गया था कि उसकी आवाज़ से मधुर कोई आवाज़ नहीं है। मेरी इच्छा थी कि लकड़ी की एक छोटी निष्प्राण संदूकड़ी आदमी का अहंकार तोड़े। ऐसा करने के लिए एक जन्म लग गया परन्तु संतोष मिला।" पंजाबी पाठक, नारायण जी की कैसट खरीद कर जब भैरवी में सारंगी की धुने सुनेंगे तो मान जायेंगे कि अनेक जन्मों का कार्य एक जन्म में किया गया।

बात भाई मरदाना जी के विषय में करनी है परन्तु इधर- उधर की बातें बीच में आ गई। ऐसा ही होना था। उनके विषय में अचानक बात शुरू नहीं हो सकती थी। ऐसा करना बे-अदबी होगी। पहले कलम सुरबद्ध कर लें।

भाई गुरदास जी ने सही लिखा है कि गुरूओं ने धरती के कल्याण के लिए चढ़ाई की। उनकी इच्छा थी कि धरती में पड़े गड्ढे को समाप्त कर इसे समतल सुन्दर बनाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हल की अपेक्षा वाणी और रबाब का प्रयोग किया।

भाई मरदाना जी के विषय में लिखने हेतु सभी जन्म साखियों का पुनः अध्ययन किया। जन्म-साखीकारों ने भिन्न-भिन्न ढंगों से इस फकीर के चरित्र का वर्णन किया है। गुरू जी के साथ प्रेम और दोनों के लोगों के साथ प्रेम के भेद, साखीकारों ने बिना किसी विशेष प्रयास के सहज ही प्रकट कर दियें हैं।

गुरू बाबा जी जब कभी बंदगी करते समय समाधि में लीन हो जाते तो भाई मरदाना पांच कदम दूर खड़े होकर पहरा देते कि कोई बाधा न पड़े। किसी को समीप नहीं जाने देते थे। परन्तु जब बाबा जी गाने लगते तो रबाब लेकर उनके इतना समीप बैठते कि घुटने से घुटना टकराता। कुदरत भी उनके सुरों के साथ मिलकर गाने लगती। नाथों, योगियों, ब्राह्मणों, काज़ीओं, मौलवियों आदि से विचार-विमर्श करते समय जब ज्ञान की आंधी चलती तो बाबा जी कहते, "मरदाना जी रबाब उठाओ। बाणी आई है।" कीर्तन की वर्षा होती तो सारी धूल उड़ जाती और आकाश निर्मल हो जाता। हिन्दू कहते, "इनमें ब्रह्म का सम्पूर्ण प्रकाश है। प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है।" कामल फकीर से मिलकर कहते, "सलामालेकम नानक शाह फकीर, साहिब के रसीद। तुम बड़े बुजुर्गवार हो। हमें दुआएँ दो कि हमारी भी साहिब के साथ वैसे ही बने जैसी तुम्हारी बनी हुई है।" कोई और आता तो कहता- "मर्द हैं पूरे। भले हैं कोई। खुदा के बंदे है बड़े दानिशवर।"

भाई मरदाना जी महाराज से उम्र में दस वर्ष बड़े थे। बचपन में दोनों को इकट्ठे देखा जाता। पिता, माता या बहन नानकी ने जब गुरू जी को सांसारिक कोई बात कहनी होती तो वह भाई मरदाना जी को बुलाते, कहते कि उन्हें मनाओ। भाई जी चले तो जाते परन्तु उनको समझाने की अपेक्षा समझ कर आ जाते। इन तथ्यों को पढ़ते हुए मैं सोचता कि भाई मरदाना जी की बात भी जब गुरू जी मानते नहीं थे, फिर भी परिवार के सदस्य उन्हें ही क्यों दोबारा भेजते थे? पता चला कि बाबा जी, भाई मरदाना जी की बात सुन तो लेते थे, दूसरों की बातें तो वह कई बार सुनने के लिए भी तैयार नहीं होते थे।

बाबा जी तलवंडी से सुलतानपुर लोधी नौकरी करने चले गए। कई महीने बीत गए तो माता-पिता ने मरदाना को उनकी कुशलता पूछने के लिए भेजते हुए कहा- एक बार आकर मिल जाएं। भाई जी चले पड़े। सुलतानपुर पहुँचे। कुशलता पूछी, बताई, और कहा, "माता-पिता जी याद करते हैं। परिवार से मिल आओ।" बाबा जी ने कहा, अच्छा हुआ भाई जी आप आ गए। अपना परिवार बहुत बड़ा है। दूर-दूर तक अपने सम्बन्धियों से मिलने जाना है। आप साथ चलो। एक साथ जायेंगे तो बहुत प्रसन्नता होगी।

भाई जी ने कहा- परन्तु खायेंगे क्या? खर्च क्या करेंगे?"

बाबा जी ने कहा- "जो आपके पास है, वह धन अन्य किसी के पास नहीं। आपके कारण अन्य अनेकों को रोज़ी मिलेगी।" भाई चुप रहे। फिर एक दिन बाबा जी ने कहा, "मरदाना, रबाब खरीदो।" भाई जी ने कहा- जी पैसे तो हैं नहीं, हमें कोई उधार नहीं देगा। बाबा जी ने कहा, बेबे नानकी के पास जाओ। याचक बनना अच्छा तो नहीं परन्तु क्या करें। जरूरत सभी काम करवाती है। भाई मरदाना जी बेबे नानकी के पास गए और कहा, बेबे जी एक प्रार्थना करनी है। हमें रबाब लेकर दे दो।" बीबी ने कहा, "एक क्यों भाई। सौ रबाब तुम दोनों पर कुर्बान। परन्तु नानक से कहो एक बार मुख तो दिखाए आकर। कितने दिनों तक आता ही नहीं।"

यह बात भाई जी ने बाबा को बताई तो बाबा जी बोले, "क्या करें भाई जी। हमसे बेबे नानकी का कहना टाला नहीं जाता। वह अनेक जन्मों से हमारी बहन है। आओ चलें।"

घर पहुँचे बीबी प्रसन्न होकर बोली, भाई जी मांगो। निस्संकोच कहो। परन्तु हमारे पास रहो। बाबा जी ने कहा, "तुसां दे पास आहे। जित वेले याद करो तिते हाजर आहे।" (तुम्हारे पास ही हैं जिस समय भी याद करोगे उपस्थित हो जायेंगे।)

बीबी जी ने मरदाने को पैसे देते हुए कहा, "भाई, कंजूसी नहीं करनी, जो अच्छी लगे, वही रबाब लेना। भाई मरदाना जी अनेक दिनों तक रबाब खोजते इधर-उधर गए परन्तु उनको अपनी पसंद की रबाब कहीं नहीं मिली। बाबा जी के पास आए तो गुरू जी ने कहा, "भाई दोनों नदियों के मध्य एक जाटों का गांव है जिसका नाम है आसकपुर। उस गाँव में रबाबी रहता है। फिरंदा जिसका नाम है। फेरू भी कहते हैं। हिन्दू है, वहाँ जाकर हमारा नाम लेना।"

भाई मरदाना जी आशकपुर गाँव पहुँच कर फिरंदे से उसके घर मिले। रबाब की मांग की तो फिरंदा बोला, "अभी तैयार नहीं।" भाई ने इशारा करते हुए कहा-वह रखी तो है भाई जी। फिरंदा बोला, "वह नहीं दे सकता। वह आपके काम की नहीं। भाई मरदाना जी बोले, "क्या कमी है इसमें। भाई फिरंदे ने कहा, "एक फकीर है जिसका नाम है नानक। सुना है नाम कभी? बहुत परिश्रम से यह रबाब उनके लिए बनाई है?"

भाई मरदाना जी बोले, "कितने की है यह रबाब भाई?"

भाई फिरंदा ने कहा, "दर्शन। इसकी कीमत उनके दर्शन जितनी है। कभी मिलना किस्मत में हो, तो हज़ूर के चरणों में भेंट करूँ।"

भाई मरदाना जी ने कहा, "जी एक बार बजाकर तो देखूँ?"

भाई फिरंदे ने कहा, "न भाई। छूना भी नहीं। किसी और के आगे नहीं बजाना इसे। निश्चय कर रखा है दिल में हमने। होगा मेल कभी हमारा भी।"

तब भाई मरदाना जी ने अपने विषय में बताया। फिरंदा ने खुश होकर कहा, "फिर बैठना किसलिए? मुझे पलक झपकते उनके पास ले चलो।"

दोनों बाबा जी के पास आए। प्रसन्न चित्त हो बाबा जी ने भाई जी को रबाब बजाने के लिए कहा। भाई ने कहा, "जी थॉट बना लूँ। बाबा जी ने कहा, "अपने आप बनते रहेंगे थॉट। शुरू तो करो। मरदाने ने परमात्मा का नाम लेकर रबाब बजानी शुरू की तो उपस्थित सभी व्यक्ति उन्मादित हो गए। बाबा जी प्रसन्न होकर भाई जी को आशीर्वाद दिया, "तुमको परमात्मा ने यह गुण दिया है इसे आगे बेचना नहीं। केशो का अपमान नहीं करना। अमृत समय में उठकर बंदगी करनी और दरवाजे पर आए याचक को खाली हाथ नहीं भेजना।

अगले दिन बाबा जी ने भाई मरदाना को विदेश चलने के लिए कहा तो वह बाल-बच्चों की चिन्ता करने लगे। बाबा जी ने कहा, "ठीक है भाई जी। तलवंडी में खुशियाँ हैं। प्रसन्नता है, मौज है। हमारे पास भूख प्यास है जाओ भाई। आप तलवंडी जाओ। बेबे को बताकर जाना।"

भाई मरदाना बीबी नानकी जी के घर गए। बताया कि बाबा जी दूर विदेश जा रहे हैं वर्षों बाद वापिस आयेंगे। फिर बताया कि मैं वापस तलवंडी जा रहा हूँ। बीबी की आँखों में से अश्रुओं की धारा बहने लगी। उनका स्वयं पर कोई वश न रहा। पति जयराम को पता चला तो वह कचहरी से घर आ गए। दशा देखकर बोले, "यह क्या हुआ नानकी जी? हम जब कभी भटकते, आप हमें उपदेश देते, अब आप ही डावांडोल हो रही हैं तो हमारा क्या होगा? ऐसे मत करो जी।"

बीबी ने कहा, "भाई मरदाना साथ होते तो हमें चिन्ता नहीं थी। परन्तु अब मन नहीं मानता।"

भाई जयराम कहने लगे, "भाई मरदाना साथ ही जायेंगे। भाई जी आप साथ रहो। आप दोनों का अलग होना शोभा नहीं देता। पीछे की चिन्ता मत करना। तुम्हारे बाल-बच्चे हमारे बच्चे हुए। श्री चंद को भी हमने अपने पास ही रख लिया है। तलवंडी हम जायेंगे। आप नानक जी के साथ जाओ।"

भाई मरदाना जी मान गए। रबाब उठाई और बाबा जी के पास गाँव के बाहर जा पहुँचे। कहा, "मैं आपके साथ जाऊँगा बाबा।" गुरू जी को बहुत प्रसन्नता हुई। चलने से पहले भाई मरदाना जी कहने लगे, "बेबे को मिलकर जाना है।" बाबा जी ने कहा, "तेरा कहा मोड़ना नहीं भाई। तुमसे हमें बहुत बड़ा काम है।"

घर पहुँचे तो झुककर बीबी ने बाबा जी के चरण छूने चाहे। दोनों हाथों से बीबी का माथा थाम कहने लगे, "मैं इस कारण आपके पास आता हूँ कि माथा टेको। बेबे तू हमसे बड़ी है और परमेश्वर की प्यारी भी। तेरा मेरा सम्बन्ध युगों का है। होता आया है। तुम जो हमारे पैरों की तरफ देखती हो- तो हमें बहुत बड़ा अवगुण प्रतीत होता है।"

बीबी ने कहा- "भला है भाई जी। जैसे तुम राजी वैसे ही हम राजी। परन्तु सत्य तो यह है कि मैं तुम्हें भाई समझ कर नहीं जानती, परमेश्वर के रूप में जानती हूँ। भाई मरदाने को यात्रा के लिए पैसे हमने खुद दिए थे। खुशी से। ये वापस क्यों कर दिए?"

बाबा ने कहा, "तुम परमेश्वर की भक्तिन हो और हमसे बड़ी भी। बड़ों का कहा परमेश्वर सुनता है और मानता है। पैसे न दो। हमें अपने हाथों से करतार को सौंप दो। जाना है हमने। खुद भेजो।"

बीबी ने कहा, "जल्दी मिल जाया करोगे, उदास नहीं होऊँगी। और यदि तुम देर करोगे तो तुम्हारे बिना ही उदास हो जाऊँगी। परन्तु हमारी इच्छा का क्या? वही होगा जो तुम्हें अच्छा लगेगा। भाई मर्ज़ी तो तुम्हारी ही चलेगी। हमारा क्या जोर।"

पहले बाबा जी ने फिर मरदाना ने बीबी के चरण छूए। भरी आँखों से विदा करते हुए बीबी ने केवल दो शब्द कहे- "परमेश्वर रखे।" दोनों तेज़ कदमों से चलते हुए सुलतानपुर की सीमा से बाहर निकल गए।

सिद्धार्थ से केवल इतना ही अन्तर था कि युवराज जिन्हें प्रेम करता था, आधी रात में उनको सोते हुए छोड़ कर उनसे बिछुड़ा था। जिसे सबसे अधिक प्रेम किया, बाबा जी ने उससे आज्ञा मांगी, फिर गए।

चलते-चलते बहुत देश देखे। कभी जंगल आ जाते तो कभी पर्वत, कभी नदियाँ तो कभी रेगिस्तान। एक स्थान पर भाई मरदाना जी को प्यास लगी। कहने लगे, "बाबा जी और चला नहीं जाता। पानी पिलाओ। कहाँ है पानी?" बाबा जी ने कहा, "इन देशों में हम कौन सा पहले कभी आए हैं? हमें भी पानी का क्या पता चले?" भाई साहिब बोले, "जी तब भी आप ही बताओगे। हम दीनों का आश्रय तो तुम ही हो जी।" बाबा जी ने कहा, "वह देखो मरदाना। सियारों की पंक्ति जाती देखो। जीभ बाहर हैं। प्यासे हैं। इनको पता है पानी कहाँ है। इनके पीछे-पीछे चलें।" ऐसा ही हुआ। कुछ दूरी पर तालाब के पास पहुँच गए। सियारों ने तालाब के पानी को सूंघा, पानी पिए बिना दूसरे तालाब की तरफ चले गए वहाँ पानी पिया। बाबा जी ने कहा- स्वयं देखो भाई, इस तालाब का पानी पीने योग्य नहीं है। भाई मरदाना ने थोड़ा सा चख कर देखा, कड़वा था। गुरू जी ने कहा- जानवर बिना खाए पिए ही जानते हैं कि क्या खाने योग्य है क्या पीने योग्य। आदमी को नहीं पता। दूसरे तालाब में से पानी पिया, स्नान किया।

थकते, भूख, प्यास लगती तो भाई मरदाना जी बाबा से इस प्रकार प्रार्थना करते, "बाबा तुम अतीत पुरुष हो। न तुम्हें भूख लगती है और न प्यास। न नींद न थकावट। मैं साधारण आदमी हूँ। कृपा करो। या मुझे स्वयं जैसा अतीत कर दो। यदि ऐसा करना मंजूर नहीं तो कुछ खाने पीने को दो।" बाबा जी कहते, "भला मांगा है मरदाना, लोग वस्तुएँ मांगते हैं। तुम संतोष मांगते हो।"

एक समय भाई मरदाना भूख से अति व्याकुल हो गए। कहने लगे, "बस बाबा और नहीं चला जाता मुझसे। इस वृक्ष के नीचे बैठ गया हूँ। खाने को कुछ मिले तो आगे जाऊँ। नहीं तो बैठा हूँ। बाबा जी किसी आबादी वाले क्षेत्र की तरफ चले गए और खाने के लिए दोनों हाथों में कुछ लेकर आए। भाई मरदाना जी ने अपने दोनों हाथ फैलाए तो बाबा जी ने घुटनों के बल बैठते हुए कहा, "भाई जी इसी प्रकार खाओ। हमारे हाथों में से ही खाओ। हमें यही अच्छा लगता है।" सामने बैठकर भाई साहिब ने बाबा जी के हाथों में से खाना खाया और कहा, "बहुत आनन्द आया है बाबा। इतना स्वादिष्ट भोजन कभी नहीं खाया।" बाबा ने कहा, "वहाँ तो

इससे भी अधिक स्वादिष्ट पकवान बने हुए थे। परन्तु तुम बहुत व्याकुल हो गए थे। इसलिए मुझे सामने जो भी दिखाई दिया, उठाया और जल्दी ले आया। धैर्य रखते और भी स्वादिष्ट पकवान मिलते।"

यात्रा के समय ही बीबी को सुलतानपुर मिल जाते और फिर वापस परदेश को चल पड़ते। बीबी कुछ दिन रूकने के लिए कहती, "तो बाबा कहते, अभी यात्रा पर हैं। तुम रास्ते में आ खड़ी हुई। अभी सफ़र खत्म नहीं हुआ। हमारे रास्तों में अधिक मत आया करो बेबे।" यह कहकर माथा टेकते और चल पड़ते।

सिक्खों के मन में गुरू बाबा जी के अकेले होने की तस्वीर कभी नहीं आई। आ भी नहीं सकती। रबाब कंधे पर लटकाए हुए अनंत की यात्रा में वह साथ-साथ थे हमेशा, एक तरफ भाई बाला और दूसरी तरफ मरदाना।

साखियों में वर्णित कुछ रोचक दृश्य उच्च कोटि के साहित्य के नमूने हैं। गर्म और सूखे रेगिस्तान में से गुजर रहे थे। रास्ता खत्म नहीं हो रहा था। साखीकार लिखता है- ऊपर तारे... नीचे रेत। और वहाँ कुछ नहीं था। न पशु, न पक्षी, न घास न वृक्ष। भाई मरदाना आकुल होकर कहते, "बाबा जी कहीं कुछ दिखाई नहीं देता। देश का कहीं कुत्ता भी मिले, उसके गले लगकर रोऊँ।" बाबा जी कहते, "इन रेगिस्तानों में तब ही आए हैं भाई जी न कोई कुत्ता मिले न भौंके।" फिर मरदाना कहते, "कहाँ लाकर मारा है, बाबा, न कफन मिलेगा न कब्र बनेगी।" बाबा जी सांत्वना देते और आगे के मार्ग पर चलते। कई महीने बाद आबादी दिखाई दी। लोगों को देखकर भाई ने कहा, "बाबा जी किस देश में आ गए हैं? इन लोगों को न हमारी भाषा की समझ। न हमें इनकी भाषा की समझ। कौन सा देश आ गया है यह? बाबा जी ने बताया, सौराष्ट्र आ गया है भाई। यहाँ के लोगों को तुम्हारी भाषा समझ में आती है। सोरठ राग इसी देश का राग है। लाओ, मरदाना, रबाब उठाओ। सोरठ बजाओ। इनकी भाषा में बातें करें। समझे समझाएँ। सोरठ का गायन करें।"

साखीकार ने एक शब्द 'साजिश' का प्रयोग किया है। परमात्मा के प्रसंग इसका प्रयोग वास्तविक में नया है। लिखा है, "गुरु बाबा बिसमादि होए गिआ परमेसर दी साजस देख करि। परमेसर बुलाइ कर दरसनु दीआ। कहिआ, कहो नानक तू क्यों करि बिसमादि होइ रहिआ हैं?" (गुरु बाबा जी परमेश्वर की साजिश देखकर विस्मादित हो गए। परमात्मा ने दर्शन दिए और पूछा नानक तू क्यो विस्मादित हो रहा है?) बाबा जी ने नमस्कार किया ओर कहा, "अै सिरजनहार! जी मैं तेरी साजस देख करि हैरान होइ गइआ हां।" (हे! सृष्टि बनाने वाले मैं तेरी साजिश देखकर हैरान हो गया हूँ।) परमात्मा ने हँस कर कहा, "ऐ नानक जेही साजस देखी तैसी कहु।" (हे नानक जैसी साजिश देखी है बताओ।) तब बाबा जी ने बसंत

हिंडोल का गायन किया। बसंत में अधिक साजिश होई। साजिश का अर्थ यहाँ सृजना है।

किसी ने पुण्य दान के लिए लंगर लगाया हुआ था। रास्ते में सेवक खड़े हुए थे जो आने जाने वालों को रोक कर लंगर खाने के लिए प्रार्थना कर रहे थे। भाई मरदाना जी ने बाबा जी से प्रसाद खाने की आज्ञा मांगी तो बाबा जी ने कहा- क्या आपको पता है भाई जी लंगर की हकीकत क्या है? भाई मरदाना जी ने कहा- जी हकीकत किते दउड़ी तां जांदी नहीं। तुसां पास रही, तुसां पास रहैगी। पहिलां लंगर छकदे हां फिर हकीकत वी देख लांगे। (जी हकीकत कहीं भागी तो जाती नहीं। आपके पास रही, आपके पास ही रहेगी। पहले लंगर खाते हैं फिर हकीकत भी देख लेंगे।)

बाबा जी ने मुस्कराते हुए कहा- ठीक है भाई। परन्तु आशीर्वाद नहीं देना। जाओ लंगर खाकर आओ। वापस आते समय पता चला कि यह नवजात शिशु माता-पिता से कर्ज़ वसूलने आया है। कुछ दिनों का मेहमान है। यदि आप लम्बी उम्र का आशीर्वाद दे देते तो करतार की रज़ा में बाधा पैदा होनी थी।

एक दिन भाई मरदाना जी ने पूछा- बाबा जी कितने वर्ष हो गए होंगे हमें तलवंडी से चले हुए? उत्तर मिला- भाई गिनती नहीं करनी। एक दिन फिर से पूछा- बाबा जी कितने हज़ार कोस की दूरी पर है अपना गाँव? बाबा जी ने कहा- आगे भी कहा था भाई, गिनती नहीं करनी।

वह समय और स्थान की गिनती से परे थे। एक अनंत के पश्चात् वह अगला अनंत था।

दोनों के बीच मैत्रीपूर्ण बातें होतीं। बैठै बैठे भाई साहिब ने एक दिन अचानक बाबा के चरण स्पर्श किए तो बाबा ने कहा, “ऐ मरदानिआं तू अज क्यों पैरी पवदा हैं?” भाई साहिब ने कहा, “जी तू जगत दा करता। तू परमेसर हैं-। तेरी कीमत तूहे जाणहि। तू हैं- सि परमेसर है।”

तो बाबा जी ने कहा, “मरदानिआ हऊं तैंडे पिंड तलवंडी के बेदीआ का नानक हां। भुलेखा नांही। उही हां। होर किछु नहीं।” (मैं आपके गाँव तलवंडी के बेदियों का नानक हूँ। भ्रम नहीं। वही हूँ। अन्य कोई नहीं।) तब मरदाना ने गायन किया,

“सही ता नानक कालुआण जिनि सिरी फुनि तिसही गोई।
तुधु जेवड परमेसर होइ ता होइ।”

(सत्य है कल्याण राय के पुत्र ने स्वयं निर्मित सृष्टि को फिर से गूंथना प्रारम्भ कर दिया है। परमात्मा, तेरे जितना हो तो हो, अन्य कोई नहीं।)

बाबा जी ने कहा, "मरदानिआ, करतार दा नाऊं लइ। ऐदूं अगै होर नहीं आखणा। बस भाई अगै नाहीं चलाऊणा अखर कोई।" (मरदाना, करतार का नाम ही लेना। इससे आगे कुछ नहीं कहना। बस भाई आगे नहीं चलाना अक्षर कोई।)

गोली, बाण, तलवार आदि हथियार के चलने के विषय में सुना था, अक्षर 'चलता' है, पहली बार साखी में पढ़ा।

लम्बा रास्ता... दूर देश... समय बीता। मरदाना जी वृद्ध एवं कमज़ोर हो गए थे। अफगानिस्तान की सीमा के साथ बहती नदी कुरम के तट पर थक गए तो बाबा जी सहारा देकर उन्हें वृक्ष के नीचे ले गए और लिटा दिया। उनके सिर को अपनी गोद में रखा और कहा, "भाई जी, घड़ी आउण वाली है जदों तुसां साडे पासों चले जाणा है। इह दसो जु दफ़नाइए कि अगनी भेट करीए?" (भाई जी वह समय आ गया है जब आपने हमसे दूर चले जाना है। आप बताएं आपको दफ़नाया जाये या अग्नि संस्कार किया जाये।) भाई जी चुप रहे। बाबा जी फिर बोले, "आपने हमारा साथ दिया। कोई यादगार बना दी जाये?" खामोश रहे। बाबा जी ने पूछा- यादगार के लिए मस्जिद बनाई जाये या धर्मशाला?"

भाई मरदाना ने सहजता से आँखे खोलीं। कहा, "हड मास दी कैद विचो कढ के ईटां चूने दी कैद विच किवें पा सकदा हैं बाबा? (हड्डी मांस की कैद से निकाल कर ईंट चूने की कैद में कैसे डाल सकते हो आप?) जानता हूँ, आप ऐसा नहीं करने वाले महाराज।

बाबा जी ने कहा- तां बी, भाई जी खाली हथ नहीं जाण दिआंगे। प्रीत ओड़क तक निभाई तुसां। जो मंगोगे मिलेगा। नहीं भेजांगे खाली। असां दा बी फ़ैसला है। (तो भी, भाई जी खाली हाथ नहीं जाने देंगे। अंतिम समय तक आपने साथ निभाया है। जो मांगोगे मिलेगा। नहीं भेजेंगे खाली। हमारा भी फैसला है।)

भाई जी ने कहा, "बाबा तू खुदाइ का डूंम। मैं तेरा डूंम। तैं खुदाइ देखिआ। तैं खुदाइ पाइआ। तेरा कहिआ खुदाइ मंनदी है। मैं तैनू देखिआ। मैं तैनू पाइआ। अर मेरा कहिआ तू मंनदा हैं।। तुध आगे असां दी बेनती है अज इक। असां नु बिछोड़ना नाहीं आपने नालहूं। ना ऐथे। ना उथै।" (बाबा आप खुदा के बंदे हो, मैं आपका बंदा हूँ। तुमने खुदा को देखा है, उसे प्राप्त किया है। तुम्हारा कहना सृष्टि मानती है। मैंने तुम्हें देखा है। तुम्हें पाया है। मेरा कहना तुम मानते हो। तुम्हारे आगे मेरी प्रार्थना है आज एक। मुझे अपने से अलग मत करना। न यहाँ। न वहाँ।)

बाबा जी ने कहा, "मरदानिआ तुध उपर असां दी खरी खुसी है। जिथै तेरा वासा तिथै मेरा वासा।" (मरदाना तुम पर हमारी सच्ची प्रसन्नता है। जहाँ तुम रहोगे, वहीं मैं रहूँगा।) तब यह कामल फकीर धरती से विदा हो गया। यह भाई मरदाना जी की वसीयत है। इस वसीयत पर गुरू जी के हस्ताक्षर हैं और साखीकार इस वसीयत का रिकार्ड कीपर है।

महाराज ने अपने कंधों पर रखी चादर उतारी, भाई मरदाना जी के उपर डाल दी और अपने हाथों से अंतिम रस्मों को निभाया। रबाब कंधे पर लटका, यात्रा को मध्य में छोड़कर, वापस तलवंडी गाँव की तरफ चल पड़े। जब तक भाई मरदाना जी साथ जाने के लिए तैयार नहीं हुए थे तब तक यात्राएँ प्रारम्भ नहीं की। जब सदा के लिए बिछुड़े तो यात्राएँ भी वहीं समाप्त हो गई।

गाँव में जब पता चला की बाबा जी नगर वापस आ गए हैं तो नगर निवासी मिलने आए। भाई मरदाना जी का बड़ा पुत्र शाहज़ाद आया। शाहज़ाद का अपने पिता से हमेशा इस बात पर शिकवा रहा कि यदि पालन-पोषण नहीं करना था तो जन्म क्यों दिया था। हम लोगों के दर की तरफ भूखे प्यासे देखते रहते, दहलीज़ पर बैठे रहते, पिता जी दुनिया की सैर करते रहे। क्यों जन्म दिया था हमें दर-दर भटकने के लिए?६

बाबा जी के चरण छूए और थोड़ा से पीछे हटकर बैठ गया। साथ के लोगों से पूछा, अब्बू कहाँ है? किसी को पता नहीं था। कुछ समय बाद बाबा जी से पूछा, "बाबा अब्बू कहाँ है। अब्बू कैसे हैं?" बाबा ने बताया, "ओह विदा हो गए हन पुत्र अपने कोलहूं। अपने घर चले गए हन। जिहड़े निज घर चले जावण तिनहां दा सोग नहीं करना। देसां दा पैंडा मार के तुसां नू तिहनां दे नाम का सिरोपाउ देण लई आइआ हां। दसो की देईए पुत्र।" (वह हमसे विदा हो गए हैं। अपने घर चले गए है। जो लोग अपने घर चले जाते हैं उनका शोक नहीं करते। देशों का फासला तय करके तुम्हें उनके नाम का देने आया हूँ। बताओं तुम्हें क्या दे पुत्र।)

शाहज़ाद ने कहा, "किछु पता नाहीं सानू बाबा। की भला है की बुरा तुसीं जाणो। सानू पता नाहीं। सानू अनपढ़ां नू किछ पता नाहीं जू वडिआ तों की मंगीदा है।" (हमें कुछ पता नहीं बाबा। क्या अच्छा है क्या बुरा आप ही जानो। हमें नहीं पता। हम अनपढ़ लोगों को क्या पता कि बड़ों से क्या मांगते हैं।) बाबा जी ने कहा- तुसां दे अब्बू नू खाली नहीं तोरिआ। तुसां नू वी खाली नहीं रखणा। जो चाहीदा है कहो, मिलेगा।(आपके पिता को खाली हाथ नहीं भेजा। तुम्हें भी खाली हाथ नहीं रखना। जो चाहिए, वही मिलेगा।) भाई शाहज़ाद ने कहा, "मेहरबान हो के तरुठ्ठे

हो तद उहो दिओ बाबा जी, जो अब्बू नू दित्ता साई।" (यदि कृपा ही करनी है तो वह दो बाबा जी, जो पिता को दिया था।)

बाबा जी उठे। दीवार पर लटकती रबाब उतार कर भाई शाहज़ाद को देकर गले लगाया और आशीर्वाद दिया। फिर दोनों बैठ गए। भाई मरदाना की याद में दोनों ने कीर्तन किया। इस रूहानी कीर्तन के बहते दरिया में तलवंडी वासियों ने तीर्थ स्नान का आनन्द लिया।

जितने समय तक बाबा जी जीवित रहे, भाई शाहज़ाद ने उनका साथ नहीं छोड़ा। साखीकार उनके सत्कार में लिखता है, **"कर्म का बली शाहज़ादा हमारा प्यारा शाहज़ादा भाई शाहज़ाद खान"।**

भाई मरदाना की प्रार्थना कबूल हुई। वह कभी बिछुड़े नहीं। कीर्तन बनकर वह गुरू ग्रन्थ और गुरू पंथ में सदा के लिए स्थापित हो गए।*

* मैंने अपने मित्रों को एक दिन बताया कि प्रोफैसर साहिब के लेखनानुसार भाई मरदाना जी ने तलवंडी से लेकर कुरम दरिया तक 54 वर्ष तक साथ निभाया। एक सिंह ने कहा- तुम 54 वर्ष की गणना क्यों करते हो? यह गणना तब उचित थी यदि वह साथ छोड़कर गाँव वापस आ जाते। उनकी तो वसीयत भी अनंत मिलाप की है। वह वर्षों तथा मीलों की गणना से पार हैं।

बाबा बन्दा सिंह बहादुर

गुरू गोबिन्द सिंह जी 1708 में ज्योति जोत समा गए तो सिक्खों को एक बार यह अनुभव हुआ कि जैसे वह अनाथ हो गए। गुरू जी के जीवनकाल में यद्यपि हज़ारों की संख्या में सिंह योद्धा भिन्न-भिन्न घटनाओं में शहीद हो गए थे परन्तु जो बचे थे वे कभी निराश नहीं हुए थे क्योंकि नीले का सवार उनके सामने था। जब तक दीन और दुनिया का मालिक उनके अंग-संग था तब तक उन्हें मृत्यु का भय नहीं था क्योंकि उनका विश्वास था कि कलगीधर पिता की शहादत को व्यर्थ नहीं जाने देंगे। जब मुगल सरकार का खंजर और भी तीखा हो उनकी छाती की ओर बढ़ रहा था तब उनका दुर्भाग्य ही था कि दसम पातशाह शहीद हो गए। एक बार तो सिक्ख संगत और खालसा पंथ को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनका सूर्य अस्त हो गया हो और चारो तरफ अंधकार ने अपना अधिकार कायम कर लिया हो जिसमें आशा की कोई किरण, कोई मार्ग नहीं दिखाई देता था। यद्यपि गुरू जी यह दृढ़ निश्चय करवा गए थे कि जहाँ पंथ और ग्रंथ एक साथ होंगे वहाँ मैं होऊँगा। परन्तु जो उनको सांत्वना दे सके ऐसा कोई व्यक्ति सामने दिखाई नहीं देता था।

इस समय बाबा बन्दा सिंह ने खालसा पंथ की कमान संभाली। बाबा बंदा सिंह का हिन्दुस्तान के इतिहास में अचानक प्रकट होना किसी चमत्कार से कम नहीं। पंजाब से दूर, सिक्खी से वंचित एक वैरागी पहाड़ी राजपूत दक्षिण में डेरा लगा रिद्धियों-सिद्धियों के सहारे प्रसिद्धि प्राप्त करने से सन्तुष्ट ही नहीं था बल्कि अहंकार भाव से भी ग्रस्त था। सोलह वर्ष से नांदेड़ में था जहाँ उसका सम्मान करने वालों की संख्या बहुत थी। उसको जानने वाले अन्य साधु संत उसे इसलिए पसंद नहीं करते थे क्योंकि वह विद्वानों और फकीरों का अपमान करने से झिझकता नहीं था। उसे अपने तप, बुद्धि और विद्वता पर बहुत गर्व था।

गुरू जी जब औरंगजेब से मिलने के लिए दक्षिण की तरफ जा रहे थे तो राजस्थान में उनको समाचार मिला कि औरंगज़ेब की मौत हो गई है। जयपुर में महंत जैत राम गुरू जी के दर्शनों के लिए आया। गुरू जी ने कहा- हमें अब नांदेड़ की तरफ जाना है। कोई गुणी व्यक्ति है तो बताओ, कोई ऐसा धर्मात्मा पुरुष जिसकी संगति से लाभ प्राप्त कर सकें? जैतराम जी ने कुछ व्यक्तियों के नाम बताए परन्तु साथ ही कहा- वहाँ माधोदास नाम का एक वैरागी है जो करामातों के अहंकार में, आने जाने वाले का अकसर अपमान करता है। उसे मत मिलना क्योंकि वह आदर, सम्मान, शिष्टाचार सभी भूल चुका है।

गुरू जी ने वहाँ पहुँचकर निर्णय किया कि पहले माधोदास से मिला जाए। उसके विषय में प्रसिद्ध था कि यदि कोई उसके आसन पर बैठ जाता था तो वह उसे दैवी शक्ति के प्रभाव से नीचे गिरा देता था। गुरू गोबिन्द सिंह जी जब उसके डेरे पर गए तो माधोदास जंगल में गया हुआ था। महाराज उसके आसन पर बैठ गए। माधोदास को पता चला तो उसने अपनी शक्तियों द्वारा गुरू जी को गिराना चाहा। ऐसा सम्भव न हुआ। वह शीघ ही अपने डेरे में आया और क्रोधित होते हुए पूछा-

- आप कौन हैं?
- वही जिसे तुम जानते हो।
- किसे जानता हूँ मैं?
- जिसकी तलाश में तुम जगह-जगह पर घूमे।
- कहीं आप गुरू गोबिन्द सिंह जी तो नहीं?
- वही हूँ। तुम बताओ तुम कौन हो।
- जी मैं आपका बंदा हूँ।
- बंदा है तो बंदों जैसे काम करो।

माधोदास गुरू जी के चरणों पर झुक गया। उस समय गुरू जी की आयु 42 वर्ष थी और बंदा सिंह की 38 वर्ष। यह थी छोटी सी बातचीत जो माधोदास और दसम पातशाह के बीच पहली बार हुई थी। कुछ दिन गुरू जी उसके डेरे में ठहरे जहाँ उन्होंने माधोदास को अमृत पिलाया और बंदा सिंह नाम रखा। उन्होंने बंदा सिंह को बताया कि पंजाब में अत्याचार, अन्याय की आंधी चल रही है। तुम पंजाब जाओ वहाँ पंथ तुम्हारी सहायता करेगा। इस अत्याचार को खत्म करो। बंदा सिंह ने कहा- परन्तु हकूमत बहुत शक्तिशाली है- मैं अकेला क्या कर सकता हूँ? मुझे कोई ऐसी शक्ति दो कि मैं चमत्कार कर सकूँ। महाराज ने कहा, "गुरू के घर में अनंत शक्तियाँ और बरकतें हैं। हमने यह सभी गुरू ग्रन्थ और पंथ को सौंप दी हैं। तुम्हें जब भी

शक्ति की जरुरत हो तब गुरू ग्रन्थ और पंथ के आगे अरदास करना। तुम्हें वह सब प्राप्त होगा जिसकी उम्मीद भी नहीं की जा सकती। यह घटना सितम्बर 1708 की है।

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद राजगद्दी के लिए उसके पुत्रों में जंग शुरू हो गई तब गुरू जी ने बहादुरशाह को सबसे बड़ा होने के कारण तख्त का उत्तराधिकारी माना और उसकी सहायता के लिए सेना भेजी। बहादुरशाह को इस युद्ध में विजय मिली तो उसने गुरू जी का बहुत सम्मान किया। पोशाकें और उपहार जो बादशाह द्वारा अपने शुभचिंतकों को दी जाती थी- महल के नियमानुसार उनको ग्रहण करने वाला स्वयं इन्हें उठाकर बाहर जाता था। किसी सम्माननीय मुसलमान फकीर को यह अधिकार प्राप्त था कि वह यह भेंट अपने किसी सेवक से उठवा सकता था। गुरू जी के साथ गए भाई दयासिंह जी ने यह भेंट प्राप्त की और गुरू जी को सम्मानपूर्वक महल से विदा किया गया।

इन समस्त घटनाओं के समाचार वज़ीर खान तक पहुँच रहे थे। उसे पता था कि तख्त के लिए जंग में गुरू जी ने सेना द्वारा बादशाह को सहायता प्रदान की और बादशाह ने गुरू जी का बहुत सम्मान किया है। वह अपने किए कुकर्मों से भयभीत हो उठा। उसे यह भय सताता रहता कि गुरू जी बादशाह के साथ कोई संधि न कर लें। यदि ऐसा हुआ तो उसे अपने किए का दण्ड भुगतना होगा। उसने दो पठान गुरू जी के वध के लिए भेजे। ये दोनों पहले माता सुन्दरी जी के पास दिल्ली गए और वहाँ से गुरू जी का पता लिया। दोनों पठान या इनके बुजुर्गों का सम्भवतः गुरू घर से कोई नज़दीकी रिश्ता था क्योंकि इन्हें सभी पते-ठिकाने बता दिए गए और ये दोनों गुरू जी के दीवान में सुबह-शाम उपस्थित रहते। इन पर किसी को कोई संदेह नहीं हुआ। वे अवसर की तलाश में थे। एक दिन अवसर मिलते ही जब महाराज सो रहे थे, खंजर से हमला कर दिया। घाव गहरा था गुरू जी ने खंजर चलाने वाले को उसी समय मार दिया और दूसरा भागने लगा तो सिंहों ने उसका वध कर दिया।

अनेकों समकालीन दस्तावेज़ों से सिद्ध होता है कि गुरू जी को बंदा सिंह की सहायता के लिए पंजाब आना था परन्तु इस हमले के बाद उन्हें वहीं रूकना पड़ा। गुरू जी की इच्छा थी कि बहादुरशाह के साथ मिलकर सिक्ख मामलों सम्बन्धी कोई समाधान तय कर लिया जाए परन्तु बादशाह को लगा कि ऐसा करने से मुसलमान विरोधी हो जाएंगे। उसकी सत्ता अभी इतनी शक्तिशाली नहीं थी, भीतर ही भीतर उसकी सत्ता को छीनने के लिए सगे सम्बन्धियों द्वारा योजनाएँ बनाई जा रही थीं। अतः बिना किसी स्थायी समाधान के, गुरू जी का बादशाह से संवाद टूट

गया। गुरू जी के घायल होने के कारण बंदा सिंह को अकेले ही पंजाब आना पड़ा। उसने दूर और समीप रहने वाली सिक्ख संगतों को हुक्मनामे लिखे और धर्म युद्ध में साथ देने के लिए प्रार्थना की। सिक्खों की तरफ से उसे काफी प्रोत्साहन मिला। स्वाभिमानी योद्धाओं ने उसके लिए सेनाएँ भेजीं। इन संत सिपाहियों ने ऐसे दुर्गम किलों को तोड़ा कि मुगल पंजाब टूट गया और दिल्ली तख्त तक इसकी गूँज सुनाई दी।

बाबा बंदा सिंह का जन्म 16 अक्तूबर 1670 को हुआ। पहले इनका नाम लक्ष्मण देव था। पिता रामदेव पुणछ ज़िले के गाँव राजौड़ी के राजपूत भारद्वाज थे जिनका व्यवसाय खेती था। लक्ष्मण देव का कद यद्यपि अधिक ऊँचा नहीं था किन्तु वह बहुत ही फुर्तीला और साहसी युवक था। व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त कर पिता के साथ मिलकर खेती करने लगा। घुड़सवारी का बहुत शौकीन था, अकसर शिकार खेलने जाया करता था। उस समय शस्त्र विद्या ग्रहण करना प्रत्येक युवक का शौक भी था और जरूरत भी। शस्त्र के बिना घर से निकलना अपशकुन माना जाता था। जंगलों में जानवर थे मगर जंगलों से बाहर रहने वाले मनुष्यों का व्यवहार जानवरों से भी बुरा था।

पिता जी धार्मिक रूचि वाले व्यक्ति थे। वह अधिकतर साधुओं के संग में रहते और उनको घर पर बुलाकर भोजन खिलाते। जानकी दास वैरागी आए तो उनकी संगति से लक्ष्मण देव बहुत प्रभावित हुआ और युवावस्था में ही वह घर छोड़कर वैरागी साधुओं की मण्डली में शामिल हो गया। साधुओं ने उसे माधोदास नाम दिया। साधुओं के साथ देश भ्रमण करता हुआ वह नासिक शहर में पहुँचा। जहाँ पंचवटी नामक स्थान पर औघड़नाथ साधु रहते थे। औघड़ नाथ रिद्धियों-सिद्धियों में कुशल माननीय तपस्वी था। माधोदास औघड़नाथ का शिष्य बन गया और उसकी बहुत सेवा की। जो गुण और शक्तियाँ बाबा औघड़ के पास थीं वह सब माधोदास को दे दी। उन्होंने अपना एक ग्रन्थ भी माधोदास को सौंप दिया और 1691 में बाबा औघड़ का देहान्त हो गया। उस समय माधोदास की आयु 21 वर्ष थी। नासिक से चलकर माधोदास नांदेड़ आया और वहाँ अपना स्थायी ठिकाना बनाने का निश्चय किया। यहाँ के निवासियों में उसकी करामातों, शक्तियों की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई और वह एक शक्तिशाली मठ का स्वामी बन गया। जब वही माधोदास बंदा सिंह बना तो इतिहास के एक नये अध्याय का प्रारम्भ हुआ। एक नये युग की शुरूआत हुई।

उसे गुरू जी ने हुक्मनामा, पाँच बाण, निशान साहिब और नगाड़े की भेंट और शाबाश देकर बहादुर की उपाधि प्रदान की। भाई विनोद सिंह, भाई काहन सिंह, भाई बाज सिंह, भाई दया सिंह और भाई रण सिंह ये पाँच प्यारे और 20 अन्य सिंह

उनके साथ भेजे। आशीर्वाद देकर गुरू जी ने बंदा सिंह को पंजाब भेजा और पंथ की आज्ञा में रहने का आदेश दिया जिसे बंदा सिंह ने जीवन भर निभाया।

जब पंजाब की ओर बंदा सिंह ने प्रस्थान किया तो केवल 20-25 सिंघों का एक छोटा कारवाँ था। परन्तु जैसे जैसे यह कारवाँ पंजाब की ओर बढ़ता गया अनेकों योद्धा उसके साथ मिल गए तो यह छोटी सेना एक विशाल काफिले में बदल गई। संसार के स्वाभिमानी व्यक्तियों को अपना नायक मिल गया था तो प्राणों की परवाह किसे थी? साहिबज़ादों को घुटनों के नीचे दबाकर गला काट कर हत्या करने की कथा भारत में जहाँ कहीं भी जिस-जिस ने सुनी उसका खून खौल उठा परन्तु उनके पास कोई नेता नहीं था। बंदा सिंह के संदेश पहुँचते गए और लश्कर बड़ा होता गया। पंजाब के निवासियों ने अत्याचार के इस खंजर को अपने छाती से दूर करने का ऐतिहासिक निर्णय लिया। सर्वप्रथम पानीपत शहर पर आक्रमण किया गया और इस शहर में निशान साहिब लहरा दिया। खज़ाना लूट लिया गया, घोड़े, शस्त्रादि हथिया लिए गए। उसके बाद समाना की तरफ प्रस्थान करने का निर्णय किया परन्तु मार्ग में समाचार मिला कि कैथल में बड़ा खज़ाना है। कैथल पर आक्रमण करके खज़ाना लूट लिया गया। यहाँ अधिक खून-खराबा नहीं हुआ क्योंकि मुकाबला करने का किसी में साहस नहीं था। कैथलपति ने बंदा सिंह को विजयी मान सारा खज़ाना सिंहों में बांट दिया।

समाना शहर सय्यदों का धनी शहर था। सय्यदों का कुल उच्च माना जाता है इस कारण गुरू तेग बहादुर जी और साहिबज़ादों को शहीद करने का 'पुण्य-कार्य' सय्यदों को सौंपा गया था। मुसलमानों को विश्वास था कि किसी शक्तिशाली काफिर का वध करने से स्वर्ग प्राप्ति होती है। सय्यद सम्माननीय जन थे इसलिए ये कत्ल उन्होंने किए। जब फकीरों और गुरूओं के अमानवीय ढंग से वध करने को 'पुण्य-कार्य' कहा जाए तब परमात्मा बाबा बंदा सिंह जैसे शूरवीरों को पृथ्वी पर से अत्याचार की जड़ काटने के लिए भेजता है। समाना पर आक्रमण करने का कारण यही था कि नौवें पातशाह का कातिल जल्लाद जलालुदीन और साहिबज़ादों के कातिल दो भाई शाशल बेग और बाशल बेग यहाँ के निवासी थे।

समाना के इर्द-गिर्द ऊँची दीवार बनी हुई थी और शहर का प्रत्येक घर एक किले के समान था। धनी सय्यदों ने अपनी रक्षा के लिए अपने घरों को छोटे किलों में तबदील कर दिया था ताकि सुरक्षा की दृष्टि से कोई कमी न रहे। 11 नवम्बर 1709 को शुक्रवार के दिन सुबह-सुबह इस सिक्ख जरनैल ने आक्रमण कर दिया। सिक्खों ने सय्यदों को मौका ही नहीं दिया कि वह दरवाज़े बंद कर सकें। यह हमला बिजली की चमक के समान था जिसके सामने किसी का वश न चला। इस शहर

में दस हजार सय्यद और मुगल मारे गए और हज़ारों वर्षों से खुशहाल बसने वाला शहर थोड़े समय में ही नष्ट हो गया। दोबारा कभी भी यह शहर उस प्रकार बस नहीं सका। मुसलमान इस स्थान को अभागा मान फिर यहाँ रहने नहीं आए। समाना का सूबेदार फतह सिंह को बनाकर अगला निशाना सरहिन्द की शान पैरों के नीचे कुचलने का था। वज़ीर खान ने यहाँ घोर पाप किया था और इसका घाव अभी ताज़ा था। यहाँ मासूम बच्चों के साथ बहुत बड़ी घटनाएँ घटी थी।

बंदा सिंह ने समाना से सरहिन्द की तरफ बढ़ने की अपेक्षा कीरतपुर की तरफ प्रस्थान किया। उसे समाचार मिला था कि उस तरफ से अनेकों मझैल सिंह उसकी सेना में शामिल होने के लिए आ रहे थे परन्तु मार्ग में उन्हें रोक लिया गया। रास्ते में घड़ाम शहर आता था जहाँ के नैब सूबेदार ने बंदा सिंह को रोकने का प्रयास किया। बंदा सिंह का घड़ाम पर हमला करने का कोई इरादा नहीं था परन्तु जब वहाँ के निवासियों ने ललकारा तो बंदा सिंह ने उन पर हमला कर दिया। मुगलों ने बहुत बहादुरी से युद्ध किया परन्तु उनको हरा दिया गया और घड़ाम शहर का खज़ाना लूट लिया गया। उससे आगे मुस्तफाबाद पर कब्जा कर लिया गया। यहाँ से उसने सढौर शहर की तरफ प्रस्थान किया तो समाचार मिला था कि कपूरी का हाकिम कदमुदीन औरतों के साथ बदतमीजी करता है। कोई गैर मुस्लिम औरत यहाँ सुरक्षित नहीं है। कपूरी पर आक्रमण कर हाकिम कदमुदीन की हवेली को आग लगा दी गई जिसमें हाकिम दौलत के साथ जलकर भस्म हो गया।

सढौरे का हाकिम उस्मान खान बहुत क्रूर और निर्दयी था। उससे प्रतिकार लेने का तत्कालिक मनोरथ यह था कि उसने नेक व्यक्ति पीर बुद्धु शाह पर अत्याचार कर उसे मारा था क्योंकि उसने भंगाणी के युद्ध में गुरू जी की फौजी सहायता की थी। सढौरे पर आक्रमण किया तो बहुत संख्या में सताए लोग व्यक्ति बंदा सिंह की सेना में आ मिले और कत्लेआम से कोहराम मच गया। कितने हज़ारों मुगलों का कत्ल किया गया, सही गिनती का कोई पता नहीं। पूरा शहर नष्ट हो गया।

अब योद्धाओं ने रोपड़ की तरफ कूच किया। वज़ीर खान की दृष्टि सिक्खों की गतिविधियों पर थी और वह भयभीत था। उसने देखा कि बंदा सिंह की सेना का मुकाबला करने की क्षमता किसी में नहीं रही। यदि कीरतपुर में रोके हुए मझैल सिंहों के काफिले इनके साथ मिल गए तो यह सरहिन्द में विशाल तबाही मचा देंगे। उसने तुरंत मलेरकोटला के नवाब शेरखान को पत्र लिखा कि दोनों काफिलों को मिलने से रोका जाए। यह वही मोहम्मद शेरखान था जिसने साहिबज़ादों के कत्ल

की घटना की निन्दा की थी क्योंकि उसका कहना था कि नियमानुसार इनके बड़ों के साथ युद्ध के मैदान में लोहा लिया जाए। उसने अपने भाई खिज़र खान और दो भतीजों नश्तर खान और वली मोहम्मद खान और पूरी सेना के साथ माझे और दुआबे के रोके गए काफिलों पर आक्रमण कर दिया। सिक्खों की सेना कम थी और युद्ध सामग्री भी कम थी। हार-जीत की तरफ उनका कोई ध्यान नहीं था- उनकों तो मरना ही था कोई शक्ति उन्हें रोक नहीं सकती थी। सारा दिन घोर युद्ध हुआ। मुगल लश्कर काफी विशाल था जिसे परास्त करना कम संख्या वाले सिंघों के लिए सरल नहीं था। पहले दिन युद्ध होते होते रात हो गई। रातों-रात आस-पास से अनेक सिंह समूह इन मझैलों के साथ मिल गए।

खिज़र खान ने सुबह ही हमला कर दिया और तेजी से सिक्खों की तरफ बढ़ने लगा। अपनी शक्ति के कारण उसे जीत का पूरा भरोसा था। सिहों ने साहसपूर्वक ऐसे हमला किया कि खिज़र खान का कत्ल कर दिया। अब मोहम्मद शेरख़ान दोनों भतीजों के साथ आगे बढ़ा तो सिंहों ने उन दोनों को मार दिया और नवाब शेरख़ान बहुत घायल हो गया। यदि उसकी कोई प्राप्ति थी तो यह कि उसकी जान बच गई थी और बहुत मुश्किल से अपने भाई और भतीजों के शवों को दफनाने के लिए लेकर जा सका। इन तीनों शवों को प्राप्त करने के लिए उसने सिंहों के साथ भंयकर युद्ध करना पड़ा। उसके बाद यह जंगी जत्था जीत के जैकारे लगाता हुआ बंदा सिंह के पास पहुँचा, जो इनके पहुँचने से पहले ही बनूड़ पर कब्जा कर चुका था। दोनों वर्गों ने मिलकर गुरू कलगीधर को याद करते हुए जैकारे की गूँज से आकाश हिला दिया। इतनी शक्ति केन्द्रित होने पर स्वाभाविक था कि अगला निशाना सरहिन्द को बनाया जाए।

सरहिन्द का गवर्नर वज़ीर खान चिंतित तो था परन्तु वह एक साहसी योद्धा था। उसने किले की सुरक्षा का उचित प्रबन्ध कर लिया और सरहिन्द की सीमा पर सेना तैनात कर दी। उसके पास तोपें और बंदूकों के साथ-साथ घोड़े और बहुत हाथी थे। सिंघों के पास कम संख्या में तलवारें और भाले थे। परन्तु सिंघों के पास जो था वह वज़ीर खाने के सिपाहियों के पास नहीं था, वह थी शहादत की चाहत, कि जल्दी ही गुरू के चरणों में जाए, उस गुरू के चरणों में जिसने इन सिक्खों के लिए अपना कुछ भी छिपा कर नहीं रखा। बंदा सिंह के साथ सैंकड़ों की संख्या में ऐसे त्यागी सिक्ख योद्धा थे जिन्होंने अपना घर, ज़मीने बेचकर शस्त्र और घोड़े खरीदे थे और धर्म युद्ध की चाहत लेकर सरहिन्द की तरफ बढ़ रहे थे।

वज़ीर खान की अपनी सेना की गिनती लगभग पन्द्रह हज़ार के आस-पास थी इतनी ही सेना उसने पड़ोसी राज्यों से मंगवा ली। इसके अलावा गाँवों शहरों

में घोषणा करवाई कि युद्ध में काफिरों के विरूद्ध आम लोग भी भाग ले। इस प्रकार उसकी संख्या पचास हजार के करीब हो गई। वह छल-कपट में भी माहिर था। उसने एक साजिश के तहत अपने दीवान सुच्चा नंद के भतीजे को एक हज़ार की सेना के साथ बंदा सिंह के पास भेजा। उसने बंदा सिंह के पास आकर कहा, मैं अपने बुज़ुर्गों के करतूतों पर बहुत शर्मिन्दा हूँ इसलिए गुरू पंथ की शरण में वज़ीर खान के विरूद्ध बगावत करके आया हूँ। खालसा मुझे शरण दे। उसे निर्देश दिया गया था कि वह सजग रहे, जब भी मौका मिले बंदा सिंह का कत्ल कर देना। यदि ऐसा न हो सके तो युद्ध पिछली तरफ से बंदा सिंह की सेना पर हमला कर दो। उसका साहस डगमगा जायेगा। बंदा सिंघ साधुओं की संगति में रहा था। उसने इस पर विश्वास कर लिया।

वज़ीर खान बहादुरी में किसी से कम नहीं था। उसने निर्णय किया कि बंदा सिंह को सरहिन्द पहुँचने ही नहीं देगा। जहाँ वह ठहरा हुआ है वहीं हमला कर दिया जाये। बंदा सिंह को नवाब द्वारा हमला किए जाने की खबर मिली तो उसने साथियों को आदेश दिया- जो मुसलमान हार मान लें उनका वध नहीं करना। जो हिन्दू चुटिया दिखा दें उन पर रहम करना। स्त्रियों और बच्चों पर प्रहार नहीं करना।

बंदा सिंह अपनी सेना को बांट कर भाई बाज़ सिंह, भाई फतह सिंह, भाई धर्म सिंह, भाई आली सिंह और भाई करम सिंह के हाथ में कमान सौंप कर स्वयं एक ऊँचे टीले पर बैठ गया जहाँ युद्ध की गतिविधियों को देखता हुआ उचित निर्देश दे सके। वज़ीर खान ने खूंखार आक्रमण किया तो सिंघों के पैर उखड़ गए। सुच्चा नंद का भतीजा हज़ार सैनिकों सहित भगौड़ा होकर वापस जाने लगा तो सिंहों का हौसला ढह गया। परन्तु उसी समय भाई बाज सिंह ने पीछे हट रहे सैनिकों को प्रेरित करते हुए आगे बढ़ने के लिए कहा। चारों तरफ कोहराम मच गया। सिंघों ने मुगलों को हराना शुरू कर दिया। बाज सिंह अपने घोड़े को दौड़ाता हुआ वज़ीर खान के पास ले आया और आमने-सामने का युद्ध शुरू हो गया। बाज सिंह ने वज़ीर खान पर भाले से प्रहार किया जो घोड़े के माथे में लगा। वज़ीर खान ने तीर द्वारा बाज सिंघ की बांह पर घाव कर दिया फिर से तलवार को हवा में लहराते हुए बाज सिंह की तरफ तेज़ी से बढ़ा। वज़ीर खान की पिछली तरफ से घोड़े पर सवार फतह सिंह (बाबा फतह सिंह के विषय में और विवरण पृष्ठ-208 पर पढें- लेखक) आ गया और उसने पास आकर दोनों हाथों से तलवार से इस प्रकार प्रहार किया कि तलवार दाएं कंधें को चीरती हुई पेट के बायीं तरफ से निकल गई और वज़ीर खान के दो टुकड़े हो गए। यह घटना 12 मई 1710 दिन शुक्रवार को घटित हुई। मलेरकोटले का नवाब शेरखान भी इसी दिन युद्ध करता हुआ मारा गया।

खाफी खान लिखता है कि कितने लोग मरे इसका कोई हिसाब नहीं था, कुछ भाग्यशाली ही बचे थे और वह भी केवल जान बचा कर ही भागे, न शस्त्र लेकर जा सके न घोड़े। इस सामान पर सिंहों ने कब्जा कर लिया और पैदल चलने वाले सैनिक घुड़सवार हो गए। वज़ीर खान की पूरी सेना नष्ट हो गई। सिंहों ने अब सरहिन्द शहर की तरफ प्रस्थान किया। नगरवासी लम्बे समय तक युद्ध करने में समर्थ नहीं थे। वह केवल एक दिन 13 मई को ही इस फौज को रोक सके परन्तु इन शूरवीरों को कौन रोक सकता था। 14 मई को वे सरहिन्द शहर में प्रवेश कर गए।

वज़ीर खान का बेटा दौलत खान अपनी जान बचाकर खाली हाथ परिवार सहित दिल्ली भाग गया। इसी प्रकार सुच्चा नंद हमले के पहले ही भाग गया। सिंघों ने सुच्चा नंद की हवेली पर हमला किया तो वहाँ से बहुत धन प्राप्त हुआ जो करतूतों द्वारा दीवान ने इकट्ठा किया हुआ था। फिर उन्होंने हवेली में आग लगा दी। थोड़े समय में हवेली राख हो गई। सारे शहर में लूटमार आरम्भ हो गई परन्तु यह तथ्य प्रमाणित है कि किसी मस्जिद को नष्ट नहीं किया गया। सरहिन्द का सूबेदार बाज सिंह को बनाया गया।

जब सिक्ख सेनाएँ धन लूट रहीं थी, बाबा जी ने भाई आली सिंह* को बुलाया और कहा- हमें उस धन के पास ले चलो जो अनमोल है। आली सिंह उस दीवार के पास ले गया जिसमें साहिबज़ादों को चिनवा दिया गया था। बंदा सिंघ ने जूते उतारे। एक -एक ईंट को माथे से लगाते हुए कहा- यह खज़ाना हमें भाग्य से मिला है। कौन धनी है हमारे जैसा? इसे संभाल कर जायेंगे। यह रत्न गुम नहीं होने चाहिए। गड्ढा खोदा गया। अरदास कर उसमें सत्कारपूर्वक ईटें रखी गईं और याद रहे, इसलिए उसके ऊपर मिट्टी का ऊँचा टीला बना दिया गया।

सरहिन्द की विजय के बाद पंजाब में हुकूमत का बल खत्म हो गया और कहीं भी बंदा सिंह को कोई कठिनाई पेश नहीं आई। उसके बाद घुड़ाणी, मलेरकोटला आदि शहरों को सरलता से हराकर सरकार खालसा का सिक्का और संवत् जारी किया। सिक्के पर यह शब्द अंकित थे -

---

* भाई आली सिंह सरहिन्द कचहरी का अरज़ी-नवीस था। उसे एक दिन वज़ीर खान ने बुलाकर कहा- सिक्खों का एक जरनैल बंदा सिंह सुना है। उसे पत्र लिखो। वह बहुत अभिमानी है। लिखो कि सरहिन्द की तरफ आओ तब तुम्हें बतायेंगे, साहिबज़ादों के साथ क्या किया था। आली सिंह ने कहा- हजूर पत्र लिखने की क्या आवश्यकता? यदि वह बहादुर हुआ तो बिना पत्र लिखे ही आ जायेगा। वज़ीर खान को ऐसा उत्तर दिये जाने पर आली सिंह को एक मास कैद का दण्ड दिया। सज़ा से मुक्त हो वह बाबा बंदा सिंह की सेना के साथ मिलकर कैथल चला गया।

देगो तेगो फतिहो नुसरति बेदिरंग।
याफत अज़ नानक गुरू गोबिन्द सिंघ।।

(देग तेग फतह और सेवा निश्चय द्वारा गुरू नानक देव और गुरू गोबिन्द सिंह जी से प्राप्त की।)

गंगा यमुना से लेकर रावी तक और शिवालिक पहाड़ियों से लेकर राजस्थान की सीमा तक खालसा फौजों का प्रभुत्व कायम हो गया तो सिंहों का विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि गुरू जी के वचन अटल हैं। दसम पातशाह बहुत प्रेम से कहा करते थे कि तुम राज करोगे- ये कथन सच होता दिखाई दे रहा था।

इस समय बादशाह बहादुर शाह दक्षिण की बगावत को रोकने के लिए गया हुआ था। उसके पास फरवरी 1710 से ही वज़ीर खान पत्रों द्वारा यह संदेश भेज रहा था कि पंजाब में मुसलमानों को सिक्खों से खतरा उत्पन्न हो चुका है। बादशाह को हलचल का पता तो था परन्तु इतनी भयंकर तबाही होगी कि वज़ीर खान की सेना ही खत्म हो जाएगी, ऐसा बादशाह ने तो क्या किसी ने नहीं सोचा था। बादशाह ने निर्णय किया कि पंजाब की बगावत को स्वयं रोकेगा। बादशाह के इस निर्णय का प्रधान मन्त्री मुनीम खान ने कड़ा विरोध किया और कहा, यह हमारी शक्तिशाली हुकूमत का अपमान है कि बादशाह स्वयं पंजाब जायें। इन दुश्मनों को तो मैं ही हरा कर सकता हूँ। मुनीम खान ने कहा कि बादशाह को राजस्थान में राजपूतों की गई बगावत को रोकने के लिए जाना चाहिए क्योंकि वह इनसे अधिक खतरनाक हैं।

बादशाह ने कहा, मैं सिक्खों को भी जानता हूँ राजपूतों को भी। राजपूत कुछ ले देकर समझौता कर लेंगे। सिक्ख ऐसा नहीं करेंगे। वे अधिक खतरनाक हैं। मैं तो पंजाब की बगावत को रोकने ही जाऊँगा, मुनीम खान भी चलें और अपना जौहर दिखायें। बादशाह ने 17 जून 1710 को पंजाब की तरफ प्रस्थान किया। बादशाह ने साठ हज़ार सैनिकों की सेना तैयार करने का आदेश दिया। उसने अपने पुत्र अज़ीमुशान को साथ ले लिया। सिंहों के साथ रास्ते में ही युद्ध करता हुआ वह 24 नवम्बर 1710 को सढौरे पहुँचा। इतने विशाल लश्कर के साथ सिक्ख आमने सामने युद्ध नहीं कर सकते थे वह कभी दायीं ओर से तो कभी बायीं ओर से तो कभी आगे या पीछे से आक्रमण करते और तबाही मचाकर भाग जाते। शाही सेना को जंगलों की कठिनाइयाँ सहन करने का आदत नहीं थी। झाड़ियों, कांटों के बीच से निकलते हुए उनके शरीर लहूलुहान हो जाते और वे सिंघों का पीछा नहीं कर पाते थे।

बंदा सिंह लोहगढ़ किले में था, इस किले की मरम्मत उसने स्वयं की थी। उस किले में खाने-पीने का सामान भी अधिक नहीं था। बादशाह की सेना ने उसे

चारों तरफ से घेर लिया और सरकते-सरकते वह समीप आते गए। यह घेरा मुनीम खान की सेना का था और मुनीम खान ने बादशाह को कह रखा था कि वह जल्दी ही बंदा सिंह को जीवित बंदी बना उनके सामने पेश करेगा। 1 दिसम्बर 1710 को जब पूरी ताकत से आक्रमण किया गया तो सेना किले में प्रवेश कर गई। परन्तु अफसोस, बंदा सिंह रातो रात इस घेरे से बाहर निकल चुका था। मुनीम खान हाथ मलता रह गया।

उसे पता था कि बादशाह बहुत नाराज़ होंगे। उसने बादशाह को मिलने की आज्ञा मांगी तो बादशाह ने मना कर दिया और आदेश दिया कि उससे नगाड़ा छीन लिया जाए। वह नगाड़े का हकदार नहीं है। बादशाह ने कहा, हज़ारों कुत्तों के घेरे से गीदड़ कैसे बच कर निकल सकता है? तुम्हें शर्म नहीं आती? मुनीम खान के साथियों ने उसका उपहास उड़ाया। वह प्रधान मन्त्री द्वारा उसके अपमान से प्रसन्न थे। इस अपमान को मुनीम खान सहन नहीं कर सकता तथा वह बीमार हो गया। ढाई महीने बाद उसकी मौत हो गई।

बंदा सिंघ बहादुर नाहन की पहाड़ियों में अपनी सेना सहित चला गया। मैदान में यदि वह शाही सेना का मुकाबला करने समर्थ नहीं थे तो इसका मतलब यह नहीं था कि वह पहाड़ों में बिना कुछ किए बैठा रहा। उसने पर्वतीय राजाओं को भी सबक सीखाना था जो सिक्खों को अकसर तंग करते रहते थे।

1 अगस्त 1711 को बादशाह लगभग एक वर्ष तीन महीने के बाद लाहौर पहुँचा। बंदा सिंह और उसकी सेना लगातार उसके प्रस्थान में बाधा उत्पन्न कर रही थी। लाहौर के किले में पहुँच कर वह सुरक्षित हो गया और जहाँ कहीं से भी बंदा सिंह के विषय में कुछ समाचार मिलता वहीं अपनी सेनाएँ भेज देता। उसने शाही आदेश जारी किया कि सिंहों का नाम लेते समय उनके नाम के साथ कुत्ता या गधा शब्द का प्रयोग अवश्य किया जाए। ऐसा किया जाने लगा। इतनी लड़ाइयों और कठिनाइयों के कारण बादशाह अपना मानसिक संतुलन गंवा बैठा। उसने शाही आदेश जारी किया, “लाहौर के सभी कुत्ते और गधे मार दिए जायें।” गधों और कुत्तों की तो बुरी हालत हो गई। कुम्हार अफ़सरों के पास फरियाद करते कि इन बेजुबानों का क्या दोष है? अफ़सर रहम कर कहते- शाही आदेश है मानना तो होगा ही। परन्तु तुम ऐसा करो कि गधों सहित लाहौर छोड़कर चले जाओ। ऐसा ही हुआ। लाहौर में कोई गधा नहीं रहा। परन्तु कुत्तों के लिए किसने फरियाद करनी थी? अमीनुदीन लिखता है कि सैंकड़ों कुत्ते सुबह होते ही रावी नदी में छलांगे लगाते और तैरते हुए शहर से बाहर चले जाते। सारा दिन शहर से बाहर रहते और रात होते ही भूखे फिरते हुए फिर से रावी नदी में छलांगे लगाते और शहर में दाखिल होते और जो कुछ

मिलता उसे खाकर सुबह होते ही फिर से भाग जाते। 14 फरवरी 1712 को लाहौर में यह समाचार सुना गया कि बादशाह की मृत्यु हो गई है। शहज़ादों में तख़्त के लिए खानाजंगी शुरू हो गई है। शहज़ादा अज़ीमुशान, जो बादशाह के साथ लाहौर में सिक्खों की बगावत को रोकने आया था ने तख़्त का उत्तराधिकारी होने की घोषणा कर दी। वह सिर पर ताज रख हाथी पर सवार होकर शहर की गलियों में घूमने लगा। शहज़ादे के हाथी को तोप का गोला लगा तो वह बेकाबू हो गया और तेज़ दौड़ने लगा। उसने रावी नदी में छलांग लगा दी। शहज़ादे सहित हाथी डूब कर मर गया। खानाजंगी चलती रही। अंततः 2 फरवरी 1713 को अज़ीमुशान का पुत्र फरुखसीयर तख़्त पर बैठा। लगभग एक वर्ष तक चलने वाले इस खानाजंगी का लाभ बंदा सिंह ने उठाया और जो ठिकाने छिन गए थे उन पर कब्जा कर लिया।

फरुखसीयर बंदा सिंह की गतिविधियों से बहुत चिंतित था। उसने खज़ाना और फौजें लाहौर के सूबेदार अब्बदुसमद खान के पास भेज दी कि बंदा सिंह को जीवित या मृत पेश किया जाए। वह बहुत हमले करता परन्तु बंदा सिंह उसके काबू में न आता। अंत में उसने राजस्थान की तरफ भट्टियों को दबाने का निर्णय किया। भट्टी कोई बड़ी मुसीबत नहीं थे लेकिन नवाब बंदा सिंह से डरता हुआ बहाना बना कर बच निकला था। सेनापति घबराए हुए थे। उसे बादशाह ने वापस आने का आदेश दिया कि बंदा सिंह की बगावत को रोकना जरूरी है। वह आ तो गया परन्तु लख्खी जंगल की तरफ खिसक गया जबकि बंदा सिंह उस तरफ था ही नहीं। बादशाह ने उसकी जवाब-तलबी की सख्त ताड़ना की कि बंदा सिंह का पीछा किया जाए।

बंदा सिंह अपने साथियों सहित गुरदासपुर के ज़िले में था। उसे समाचार मिला कि अचानक मुगल फौजें उसका पीछा करती हुई आ गई हैं। गुरदासपुर के नंगल नामक गाँव में दुनीचंद की हवेली थी। यह कोई किला तो नहीं था केवल इसकी दीवारें ऊँची थीं। मध्य में विशाल आंगन। बंदा सिंह ने इसकी दीवारों को मज़बूत किया। अंततः नवाब 25 हज़ार सैनिकों की सेना लेकर आ गया और इस कच्चे किले को घेर लिया। बंदा सिंह के पास सेना और हथियार कम ही थे। खाने-पीने का भी सामान अधिक नहीं था। आश्चर्य होता है यह जानकर कि 18 अप्रैल 1715 को डाला गया यह घेरा आठ महीने तक भीतर जाने का साहस न कर सका और 7 दिसम्बर 1715 को बंदा सिंघ को भूख से व्याकुल साढे सात सौ साथियों के साथ बंदी बनाया गया।

बाबा बिनोद सिंह ने अनेक बार बाबा बंदा सिंह से कहा कि रात को आक्रमण करके भाग जाते हैं परन्तु बंदा सिंह नहीं माना। एक बार तो दोनों में विवाद इतना बढ़ गया कि बिनोद सिंह ने तलवार निकाल ली थी। तब बाबा बंदा सिंह ने कहा, आपस में लड़ना शोभा नहीं देता। आप चले जाओ। मैं नहीं जाऊँगा। बिनोद सिंह दुश्मन की पंक्तियों को चीरता हुआ सुरक्षित अपने साथियों सहित भाग गया। ऐसी परिस्थितियों में बंदा सिंह आमतौर पर भाग जाया करता था परन्तु इस बार उसने यहाँ ठहरने का निर्णय क्यों किया इस बारें में कुछ पता नहीं चलता।

जब मुगल तलवारों सहित भीतर हवेली में गए तो किसी को क्या करना था? सिक्ख भूख से अधमरे हो चुके थे। उन्होंने अपने पशुओं को मार कर खा लिया था। ईंधन भी नहीं बचा तो कच्चा मास खाना शुरू कर दिया। इस खाने से खून के दस्त लगने पर कई सिक्खों की मौत हो गई। शायद इन्होंने मोहरें निगल ली हों मुगलों ने मोहरें प्राप्त करने के लोभ से अनेक सिक्खों के पेट चीर दिए। किले में से कुल 600 रुपये, 23 मोहरें, और थोड़े से हथियार प्राप्त हुए।

अब्बदुसमद खान गवर्नर लाहौर स्वयं दिल्ली जाकर बंदा सिंह को बादशाह के सामने पेश करने का मान प्राप्त करना चाहता था परन्तु बादशाह ने कहा आप लाहौर में ही रहें, अपने पुत्र को भेज दें। तब उसका पुत्र ज़करीआ खान 740 कैदियों और सौ सिरों सहित दिल्ली की तरफ चल पड़ा। उसने सोचा कि सौ सिर लेकर जाना कोई विशेष वीरता नहीं लगती। सख्त आदेश दिया कि कुछ भी करो, कहीं से भी लेकर आओ, और सिर काट कर लाओ। मासूम लोगों को कत्ल करके सात सौ गड्ढे सिरों के लादे गए और दिल्ली कूच किया।

बाबा बंदा सिंह को लोहे की जंजीरों में बांध पिंजरे में बंद कर हाथी पर बिठाया गया और उसके साथ ही तलवार पकड़े हुए एक सैनिक को बिठाया कि यदि जंजीरों को तोड़कर बंदा सिंह भागने का प्रयास करे तो उसी समय उसका वध कर दिया जाए। उसको हँसी उड़ाने वाले वस्त्र पहनाए गए थे और सिर पर टोपी रखी गई, इसी प्रकार अन्य कैदी जंजीरों में बांध कर एक दूसरे के विपरीत दो-दो की संख्या में बिना काठी के ऊँटों पर बिठाए गए। भेड़ों की खाल के कोट पहनाए गए और सिरों पर रंग-बिरंगी टोपियाँ पहनाई गईं। 29 फरवरी 1716 को विशाल जलूस के रूप में उनको लाल किले के पास से निकाला गया। लाखों स्त्रियाँ-पुरुष यह तमाशा देखने के लिए लाईनों में खड़े थे।

इस समय अधिकतर मुसलमान और कुछ ईसाई इतिहासकार चश्मदीद गवाह बताते हैं कि उन्होंने किसी सिक्ख को भी उदास नहीं देखा। वह शब्द गाते हुए पूरे जोश के साथ जा रहे थे। इन योद्धाओं की शोभा अद्भुत थी। ज़करीआ खान

को बादशाह फरुखसीयर ने विशेष पोशाक, रत्नों से बनी कलगी, घोड़ा और हाथी पुरस्कार में दिए। इरविन ने पकड़े गए हथियारों की छोओी सूची देते हुए लिखा, आश्चर्य होता है कि इतने कम सामान के साथ उन्होंने भारत की शक्तिशाली हुकूमत का मुकाबला ही नहीं किया बल्कि उसको हिलाकर रख दिया।

हर रोज सौ-सौ की संख्या में आम लोगों के सामने सिक्खों का वध किया जाता और यह सामूहिक वध एक सप्ताह तक चलता रहा। 12 मार्च 1716 को सभी सिक्खों को मार दिया गया। प्रत्येक से पूछा जाता यदि इस्लाम धर्म को अपना लोगे तो जान बच सकती है, एक भी सिक्ख ने धर्म नहीं बदला। बंदा सिंह पर अत्याचार करते हुए उससे पूछते रहे कि खज़ाना कहाँ दबाया है। उसे क्या उत्तर देना था क्योंकि उसने कोई खज़ाना दबाया ही नहीं था। जो कुछ भी उसके पास होता वह सिंहों में बांट देता था।

अंततः 9 जून 1716 को बंदा सिंह को शहीद करने का निर्णय किया गया। उसके साथ 26 सिक्ख जरनैल भी थे। इन सभी को पहले जैसे ही जुलूस के रूप में कुतुबमीनार के पास लेकर गए। बंदा सिंह से भी पूछा गया कि इस्लाम कबूल करना है या मौत, बंदा सिंह ने कहा, मौत। उसके चार वर्षीय पुत्र अजयपाल को उसकी गोदी में बिठा दिया और उसके हाथ में चाकू पकड़ा कर कहा गया कि इसका वध करो। बंदा सिंह ने ऐसा करने से मना कर दिया। उसके सामने जल्लाद ने उसके पुत्र की छाती में चाकू मारकर उसका तड़पता दिल निकाल कर बंदा सिंह के मुख में डालने का प्रयास किया। उसके केश, ऊपर पिंजरे के साथ बांध कर उसके मांस को नोचा गया और गर्म सलाखें उसके शरीर में चुभाई गईं। वह अडिग अचल शांत खड़ा रहा। उसके होठों पर केवल वाहेगुरू शब्द की ध्वनि थी।

प्रधान मन्त्री अमीन खान इस काफिर की शहीदी देखने के लिए कत्लगाह में पहुँचा। वह बंदा सिंह के मुख पर तेज देखकर दंग रह गया और पूछा, एक फकीर के लिए क्या यह उचित था कि वह इस प्रकार कत्लेआम करता? बंदा सिंह ने कहा, जब तेरे जैसे व्यक्ति ज़ुल्म की इंतहा कर देते हैं तो मेरा गुरू मेरे जैसों को थपकी देकर भेज देता है कि अत्याचार को खत्म करो। परन्तु यदि मैं ज्यादती करूँ तो मेरा गुरू मुझे फिर से तेरे हवाले कर देता है। अमीन खान ने फिर से पूछा- परन्तु तुम कहते हो तुम्हारा गुरू सर्व समर्थ और सहायक है। तो फिर इस संकट की स्थिति में तुम्हारी रक्षा क्यों नहीं करता? बंदा सिंह ने कहा- मेरा गुरू कृपालु है। वह मुझे अपने चरणों में बिठाने का इच्छुक है क्योंकि वह मुझसे प्रेम करता है। मेरे द्वारा किए गए पापों का दण्ड वह मुझे पृथ्वी पर ही देगा फिर मुझे अपने चरणों में स्थान देगा। वह अनंत वैभव का स्वामी, कलगीधर पिता, अद्वितीय व्यवहार करता है।

जल्लाद ने पहले उसकी दायीं आँख निकाली फिर बायीं, उसके बाद बायां पैर काट दिया और फिर दोनों हाथ काट दिए। खून बहुत निकलने के कारण वह बेहोश हो गया तो उसका सिर काट दिया गया। शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके कुत्तों और कौओं के सामने खाने के लिए डाल दिए गए।

ऐसे अद्‌भुत शहीद इतिहास में बहुत कम हुए हैं। किन्तु सिक्खों के बीच बहुत हैं। बाकी साथियों का भी इसी प्रकार वध किया गया। जिस किसी ने भी यह दृश्य देखा, चाहे हिन्दु, चाहे मुसलमान या ईसाई, सभी ने बंदा सिंघ की शहीदी को ईश्वरीय इच्छा माना है। यह घटना सामान्य नहीं थी। खालसा पंथ का यह सिक्ख जब शहीद हुआ तो केवल आठ वर्ष के थोड़े समय में कौमी हीरो बन गया।

यद्यपि वह शहीद हो गया और बहुत कम समय उसने हुकूमत की। परन्तु पंजाब के पीड़ित लोगों की आँखों में उसने स्वाभिमान और स्वतन्त्रता के दीपक जला दिए। हिन्दुस्तान में पहली बार पंजाब में बंदा सिंह ने यह काम किया कि था गुलाम किसान जो दास थे ज़मीन जमींदारों की थी, मालिक बना दिए गए। बंदा सिंह ने यह घोषणा की थी कि ज़मीन उसी की है जो उसे जोत रहा है। बंदा सिंह तो शहीद हो गया परन्तु हुकूमतें उसके बाद भी किसानों से ज़मीन का आधिपत्य छीन नहीं सकीं।

सिक्ख जंगलों में रहते थे। यदि कोई निर्धन गाँव में रहता तो वह निम्न जाति का विरला ही होता जिससे मुसलमान गंदगी साफ करने का काम लेते या फिर कुछ सिक्ख चमार जाति के थे जो खाल उतारने और चमड़े को रंगने का कार्य करते थे। ऐसे गुलाम सिक्ख जब बंदा सिंह के पास आते तो वह उनको अपना हुक्मनामा, निशान और उस गाँव के मालिक का अधिकार देकर वापस भेजता, गाँव के इज्जतदार और उच्च कुल के मुसलमान लाईनों में उसके सम्मान के लिए खड़े रहते। मुसलमान योद्धा उसके गुलाम हो जाते। आठ वर्ष के कम समय में उसने जो करामातें की उनको पारम्परिक रूप नवाब कपूर सिंह और जत्थेदार जस्सा सिंह आहलूवालिया ने दिया और इन शूरवीरों की तलवारों के कारण ही 1799 में महाराजा रणजीत सिंह के राज्य में लाहौर के किले पर निशान साहिब लहराकर सरकार खालसा की स्थापना की गई।

हरि राम गुप्ता लिखते हैं, "वह न इस्लाम का विरोधी था न मुसलमानों का। उसने कलानौर में 500 मुसलमानों को भर्ती किया और उनको नमाज़ की आजादी दी। उसका क्रोध केवल अत्याचारियों के विरोध में था। मुगलों की दृष्टि में रक्त का प्यासा राक्षस था, हिन्दुओं के लिए शिरोमणि नायक और सिक्खों के लिए प्रथम बादशाह। वह रूहानी फकीर, कुशल सत्ताधारी और युद्धनीति में माहिर था।

बेशक कोई शैतान कहे, बेशक फकीर, वह अपनी मिसाल आप था। विश्व इतिहास में उसकी पदवी सिकन्दर, नादिरशाह, अबदाली और नैपोलियन से कम नहीं।"

प्रोफैसर पूर्ण सिंह अपने निबन्ध वीरता में लिखते हैं- योद्धा पतले टीन का पीपा नहीं होता कि थोड़े से ताप से उसमें रखा घी पिघल गया और थोड़ी सी हवा चली तो वहीं जम गया। योद्धा को जल्दी क्रोध नहीं आता। उसे क्रोध आने में सदियां लग जाती हैं। पांचवें पातशाह, नौवें पातशाह और साहिबज़ादों सहित हज़ारों मासूमों के वध ने बंदा सिंघ को क्रोधित कर दिया। ऐसे जरनैल जब क्रोधित होते हैं तब उनका क्रोध शांत होने में भी सदियां लग जाती हैं।

महाराजा रणजीत सिंह

महाराजा रणजीत सिंह ने जिस समय विशाल पंजाब की सत्ता संभाली उस समय की परिस्थितियों को जाने बगैर उनकी शख्सीयत का सही मूल्यांकन नहीं हो सकता। उससे सम्बन्धित समकालीन स्रोतों की कमी नहीं परन्तु जानने के लिए यह देखना होगा कि टिप्पणीकारों की स्वयं की पृष्ठभूमि और वफादारी किस प्रकार की है। अनेकों पश्चिमी इतिहासकारों ने उसके विरोध में गलत टिप्पणियाँ दी हैं ताकि पाठकों के मन में उसके प्रति अधिक सम्मान न रहे। बुद्धिमान इतिहासकार सुनी सुनाई बातों को अपनी विषय वस्तु में शामिल नहीं करते परन्तु अंग्रेजों ने खास उद्देश्य से ऐसा किया। महाराजा इतना शक्तिशाली व्यक्ति था कि उसके जीवनकाल के दौरान एशिया के बीचत तो क्या अंग्रेजों सहित किसी कौम ने भी पंजाब पर आक्रमण नहीं किया। पड़ोसी देश सजग हो उसकी तरफ से सुरक्षा बनाए रखने के इच्छुक थे परन्तु अफगानियों में भी ऐसा साहस नहीं रहा था कि वह पंजाब की तरफ देखें यद्यपि रणजीत सिंह से पहले पंजाब को लगातार लताड़ते रहना अफगानियों और मुगलों का मनोरंजक मेला था। मुगलों और पठानों की इस शिकारगाह को महाराजा रणजीत सिंह ने एक खुशहाल राज्य के रूप में निर्मित किया और इसकी गणना संसार के शक्तिशाली राष्ट्रों में होने लगी। एक विस्मयजनक तथ्य यह है कि महाराजा की मृत्यु के बाद यद्यपि अंग्रेजों ने खालसा की फौजों को परास्त कर दिया था परन्तु अंग्रेजों में इतना साहस नहीं था कि वह पंजाब में औपचारिक तौर पर हकूमत संभालने के लिए लाहौर आ जायें। पहले वह अपनी गुप्त ऐजंसियों द्वारा पता लगाते रहे कि क्या उनका आना सिक्खों को बर्दाशत होगा? दस वर्ष तक वह

दूर बैठे ही शासन चलाते रहे जिस कारण सामान्य यह कहावत प्रचलित है कि, महाराजा ने 40 वर्ष तक शासन किया उसके बाद दस वर्ष तक उसकी अर्थी शासन करती रही।

महाराजा रणजीत सिंह का जन्म वडरूखां (ज़िला संगरूर) में ननिहाल में हुआ था या गुजरांवाले, यह इतिहासकारों के लिए विवाद का विषय रहा है परन्तु इस पर कोई विवाद नहीं कि उनका जन्म 13 नवम्बर 1780 को हुआ था। यह अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं कि जन्म ननिहाल में हुआ या दादा के घर में। जानने योग्य वह स्थितियाँ हैं जिनके विषय में सही जानकारी के बाद ही सही परिणाम प्राप्त हो सकेंगे। रणजीत सिंह अचानक आकाश से टूट कर गिरने वाला कोई तारा तो है नहीं जिसकी कोई पृष्ठभूमि न हो। पूर्व का गुरू-इतिहास और अठाहरवीं शताब्दी का सिक्ख-इतिहास उसकी शानदार विरासत था, ऐसी विरासत जो मृत शरीर में जान डालकर नए राष्ट्र निर्माण में समर्थ है।

गुरू साहिबान ने स्वाभिमानी जीवन जीने का मार्ग दिखाया। बेशक इस मार्ग पर अनेक कठिनाइयाँ ही क्यों न मिलें। गुरू नानक देव जी के समक्ष भाई लालो जैसा निर्धन व्यक्ति और बाबर जैसा शक्तिशाली आक्रमणकारी एक जैसे व्यवहार के हकदार थे। पुजारी और शुद्र एक जैसे सम्मान के अधिकारी थे। सिक्ख संगत ने देख लिया था कि तलवण्डी गाँव के एक साधारण घर में जन्म लेने वाला युवक एशिया को सम्बोधित करने का सामर्थ्य लेकर आया है। पांचवें और नौवें पातशाह की शहीदी शाश्वत शिक्षा का प्रतीक है कि सिद्धान्त, जीवन से कहीं मूल्यवान् हैं तथा सिद्धान्तों की रक्षा के लिए प्राणों का बलिदान करना उत्तम कार्य है। गुरू गोबिन्द सिंघ जी की शख्सीयत में से अद्वितीय बलिदान और बादशाहत, दोनों का अद्‌भुत योग सिक्खों ने देखा और अनुभव किया। तख़्त, चवर, कलगी और नगारा आदि निशानियाँ गुरू जी ने खालसा पंथ को सौंपी और उनकी आँखों में हुकूमत की चमक आ गई। कायरता की जगह शूरता ने प्रवेश किया तो बाबा बंदा सिंघ ने नांदेड़ से पंजाब की तरफ प्रस्थान किया। 1708 ईसवी में बीस सिंघों के काफिले के साथ प्रारम्भ कर 1710 में दो वर्ष के भीतर ही वज़ीर खान सूबा सरहिन्द से हुकूमत छीन कर किले पर निशान साहिब लहराया और गुरू साहिबान का सिक्का चलाकर सरकार खालसा की स्थापना की। बाबा बंदा सिंह का राज्य केवल 6 वर्ष, 1716 ईसवी तक रहा परन्तु इतने अल्पकाल में सिक्खों को अनुभव हो चुका था कि वह गुलामी की जंजीर गले में से उतारने में पूरी तरह सक्षम हैं। 18 वीं शताब्दी में उनके सिरों की कीमत लगने लगी और प्रतिदिन उनका शिकार होने लगा। परन्तु इतिहास ने जिस आत्मविश्वास का सृजन किया उसे समाप्त करना सरल कार्य नहीं था। इस

सम्पूर्ण संघर्ष की श्रृंखला का परिणाम महाराजा रणजीत सिंह के शासन के रूप में सामने आया। इस प्रकार क्रमानुसार घटनाओं का अध्ययन करेंगे तभी ज्ञात हो सकेगा कि महाराजा स्वयं को 'महाराजा' या 'सरकार' कहलवाना पसंद क्यों नहीं करते थे और भाई साहिब, सिंह साहिब आदि सम्बोधन उन्हें क्यों प्रिय थे। उसने गुरू साहिबान के नाम का सिक्का (देगो, तेगो, फतिह नुसरत बेदरंग। याफ़त अज़ नानक गुरू गोबिन्द सिंघ) चलाया जिसे सर्वप्रथम बाबा बंदा सिंह ने जारी किया था। पड़ोसी राज्यों से की गई संधियों पर रणजीत सिंह के हस्ताक्षरों की अपेक्षा सरकार खालसा की मोहर है। सतही सूचना प्राप्त करने के बाद जो अल्पबुद्धि इतिहासकार यह बताते हैं कि वह केवल सिक्खों को प्रसन्न करने के लिए ऐसा करता था उन्हें यह जानकारी नहीं थी कि उस शक्तिशाली राज्य में सिक्खों की संख्या केवल 8 प्रतिशत थी। अन्य 92 प्रतिशत लोग उसकी इन बातों से नाराज़ हो सकते थे। कौन किसी को पाखण्ड के आधार पर आधी शताब्दी तक प्रसन्न रख सकता है? यह तथ्य एक तरफ रख दें तो ज्ञात होगा कि रणजीत सिंह की सरकार से पूर्व किसी गैर-मुस्लिम राज्य के राजा ने यह खतरा नहीं लिया था कि मुसलमानों को मंत्रिमंडल में शामिल कर उन्हें सेनायों के जरनैल बनाये। शक्तिशाली मुस्लिम राज्यों के बीच बैठकर महाराजा रणजीत सिंह ने यह साहसिक कार्य किया। परिणामस्वरूप जिन दिनों में गैर इस्लामी सरकारें मुसलमानों को उच्च पदवियाँ देकर स्वयं के लिए खतरा मोल लेने की इच्छुक नहीं थीं, महाराजा के मुसलमान जरनैल उसकी मृत्यु के बाद भी अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध करते रहे। ऐसा योद्धा और सत्ताधारी कई शताब्दियों बाद ही जन्म लेता है।

पूर्वज

महाराजा का दादा सरदार चढ़त सिंह और सरदार चढ़त सिंह का दादा, बूढा सिंह था। बूढा सिंह से पहले हमें कुछ पता नहीं चला। सरदार बूढा सिंह के पास 25 एकड़ ज़मीन, तीन हल और एक कुएँ की सम्पत्ति थी। इतनी ज़मीन के मालिक ज्यादा रईस तो नहीं माना जाता था परन्तु समाज में उसकी बहुत प्रतिष्ठा थी। इस ज़मीन में उसके सगे-सम्बन्धी रहने लगे तो यह एक छोटे गाँव के रूप में बदल गया जिसे शुक्रचक्क कहते थे। शुक्र शब्द का अर्थ छोटा, अल्प भी होता है। जवानी के शुरूआती दिनों में वह थोड़ी बहुत बदमाशी और चोरियां करने का भी शौकीन रहा परन्तु गुरू राय जी के दर्शन के बाद वह सिक्ख बन गया और बुरे कामों के लिए क्षमा मांगी। उसने गुरू गोबिन्द सिंह जी से अमृत पीया। लड़ाइयों में गुरू जी का साथ दिया और उनके बाद बाबा बंदा सिंह की सेना में शामिल होकर मुगलों

के विरोध में तलवार चलाई। वह इतना साहसी और फुर्तीला था कि अधेड़ आयु में भी युवक उसका मुकाबला करने में समर्थ नहीं थे। 1716 में जब उसकी मृत्यु हुई तो उसके शरीर पर तलवारों के अनेकों घाव और नौ निशान बंदूक की गोलियों के थे। इलाके में उसका बहुत दबदबा था जिस कारण गाँव शुक्रचक्क के आस-पास एक छोटे किले का निर्माण किया गया।

बूढा सिंह सरदार के घर नौध सिंह ने जन्म लिया जो एक सुन्दर युवक बना। मजीठे के मजबूत सरदार गुलाब सिंह ने इस शर्त पर अपनी पुत्री की मंगनी की इच्छा की कि नौध सिंह अमृत पी ले। उसने ऐसा ही किया और सरदार कपूर सिंह की सेना में भर्ती हो गया। वह पिता के समान ही योद्धा बना और पूरे इलाके में प्रसिद्ध हो गया जब 1749 में उसने अहमदशाह अबदाली की सेना पर आक्रमण करके लूट के माल का अधिकांश भाग खालसा को दिया। एक दिन उसे समाचार मिला कि रसूलपुर के जमींदार सुलतान खान ने छह सिक्खों के केस जबरदस्ती काट कर इस्लाम में शामिल करने की घोषणा कर दी। नौध सिंह ने अपनी सैनिक टुकड़ी के साथ रसूलपुर पर आक्रमण कर दिया। कैदियों को मुक्त किया गया और पठान की सारी सम्पत्ति लूट ली। इसी प्रकार शहाबुदीन ने करयाला गाँव के सिक्खों को बंदी बनाकर उनके केशों का अपमान किया। नौध सिंह ने शहाबुदीन पर भी हमला कर दिया। उसकी सम्पत्ति लूट ली गई, वह स्वयं मारा गया। सभी सिक्खों को फिर से अमृत पिलाया गया। ईसवी 1752 में वह अफगानियों के विरूद्ध युद्ध करता हुआ शहीद हो गया।

चढ़त सिंह का जन्म 1732 में हुआ। पिता की मृत्यु के समय वह जवान हो चुका था। उसने देखा कि सरदार जस्सा सिंह का प्रभुत्व सारे पंजाब में कायम हो चुका है। उसने सरदार आहलूवालिया के साथ बहुत नज़दीकी रिश्ते बना लिए। उसने देखा कि आहलूवालिया एक निपुण प्रशासक है। उसने पंजाब के किसानों की सुरक्षा के लिए 'रक्षा प्रणाली' प्रारम्भ की जिस कारण लुटेरों के हाथों होने वाला नुकसान कम हो गया। पहले चढ़त सिंह भंगियों की मिसल में शामिल था परन्तु शीघ्र ही उसने 400 घुड़सवारों की एक सेना तैयार कर ली। उसका ससुर अमीर सिंह गुजरांवालिया एक धनी जमींदार था और पंथ में उसकी बहुत प्रतिष्ठा थी। उसकी नेक सलाहों ने चढ़त सिंह को सफलता की राह पर बढ़ाया। उसकी यह शर्त होती थी कि जिसे भी उसकी सेना में भर्ती होना है उसे पहले अमृत पीना होगा। अपने गाँव के नाम पर उसने नयी मिसल 'शुक्रचक्कीया' बनाने की घोषणा करके अनेकों गाँव अपनी 'रक्षा प्रणाली' के अधीन कर लिए। नमक के गोदामों की रक्षा करने के कारण उसकी आमदनी बहुत बढ़ी। वह इतना दिलेर हो गया था कि लाहौर के

सूबेदार की भी परवाह नहीं करता था। एक बार सूबेदार ख्वाजा उबेदखान ने गुजरांवाले के किले में उसे घेर लिया। उसने रात को दरवाजा खोलकर इतने खूंखार आक्रमण किए कि सैंकड़ों लाहौर निवासियों को मौत के घाट उतार दिया। जान-माल का नुकसान करवा कर अपमानित नवाब लाहौर पहुँचा। इसी प्रकार जब अहमदशाह अब्दाली के साथ मुठभेड़ हुई तो खालसा की ओर से सबसे आगे चढ़त सिंह की सेना थी। एक बार उसने अब्दाली के जरनैल नसीरखान, जो बारह हज़ार सैनिकों का नेता था, को बुरी तरह पराजित किया, उसका घोड़ा मर गया और वह जान बचाता हुआ पैदल भाग गया।

सोहन लाल सूरी और बूटे शाह लिखते हैं कि अब्दाली का चाचा सरबुलंद खान दस बारह हज़ार सैनिकों की सेना लेकर कश्मीर से काबुल की तरफ जा रहा था तभी अटक नदी के समीप चढ़त सिंह ने उस पर आक्रमण कर दिया। सेना को पछाड़ कश्मीर के इस सूबेदार को बंदी बना लिया गया। दो लाख रुपये वसूल करने के बाद उसे छोड़ा गया। 1770 में उसका निधन हो गया। यद्यपि उसका पुत्र महासिंह उस समय दस वर्ष का था, परन्तु वह वैभवशाली विरासत का अधिकारी बना। पिता की अचानक हुई मृत्यु के समय महासिंह अभी बच्चा ही था, मिसल का प्रशासन माता देसां ने संभाला जो अच्छे व्यवहार वाली साहसी स्त्री थी। उसके सभी रिश्तेदारों की समाज में बहुत प्रतिष्ठा थी जिस कारण उसका बहुत दबदबा था। महासिंह का जन्म 1760 में हुआ था और 1779 में उसने छह हज़ार सैनिकों की सहायता से रसूलनगर के पीर मोहम्मद को पराजित कर दिया। उसकी सम्पत्ति को अपने अधिकार में ले लिया। बेशक चट्ठों ने बदला लेने के लिए अनेक बार बगावत की परन्तु सफल न हो सके। हरेक बगावत के पश्चात् महासिंह उनके इलाकों पर अपना अधिकार कायम कर लेता। चट्ठों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् महासिंह को शुभ समाचार मिला कि उसके घर पुत्र ने जन्म लिया है, विजय मिलने के कारण उसका नाम रणजीत सिंह रखा गया। जनवरी 1784 में उसने जम्मू रियासत के मालिक राजा ब्रिज राज देऊ पर आक्रमण किया। डरकर राजा वहाँ से भाग गया तो महासिंह को एक करोड़ की सम्पत्ति प्राप्त हुई। इतिहासकार इस तथ्य से सहमत हैं कि इस समय शुक्रचक्कीया मिसल की सेना की संख्या, घुड़सवार और पैदल चलने वाले सैनिकों सहित 25 हज़ार थी। सरदार महासिंह ने अपनी राजधानी गुजरांवाला को बनाया और जगह-जगह पर न्यायालय और पुलिस चौकियाँ बनवाईं। पटवारी, न्यायाधीश, वकील आदि से लेकर वज़ीराबाद में अपना गवर्नर तक नियुक्त किया। जब इस सरदार की बुखार और पेचिश रोग से अचानक मौत हो गई तब उसकी आयु केवल

30 वर्ष की थी। यदि यह दुर्घटना न होती तो सरदार महासिंह का उद्देश्य लाहौर पर निशान साहिब लहराकर सरकार खालसा की स्थापना करना था। परन्तु इतिहास को यह कबूल था कि सरकार खालसा की स्थापना करने का अवसर महासिंह के पुत्र रणजीत सिंह को मिले। कनहीआ मिसल का जै सिंह सरदार और उसका पुत्र गुरबख्श सिंह शुक्रचक्कीयां की प्रसिद्धि से ईर्ष्या करते थे। आपस में दोनों मिसलों की अनेक बार मुठभेड़ हुई जिसमें विजयी हमेशा महासिंह ही होता और एक मुठभेड़ में जै सिंह के पुत्र की मौत हो गई। जै सिंह की और उसकी पुत्रवधू (गुरबख्श की विधवा) ने यह शत्रुता समाप्त करने के लिए रणजीत सिंह के साथ अपनी पुत्री की मंगनी कर दी। यह समझदारी वाला निर्णय था जिसके कारण दो ताकतवर मिसले एक हो गईं। 15 अप्रैल 1790 में महासिंह की मृत्यु हुई तब रणजीत सिंह की आयु दस वर्ष थी। मिसल की निगरानी सास सदा कौर के हाथों में आई जिसे उसने बाखूबी निभाया।

छह वर्ष की आयु में वह तेजी से बहती चेनाब नदी को पार कर लेता था। दस वर्ष की आयु में रणजीत सिंह को शिक्षा देने के लिए भाई भंगा सिंह के डेरे में दाखिल करवाया गया। घर से डेरा दूर होने के कारण रणजीत सिंह घोड़े पर सवार होता और डेरे में जाने की बजाय रावी नदी में तैरता या साथियों के साथ मिलकर शिकार करता। केवल यही नहीं कि उसकी स्वयं पढ़ाई में रुचि नहीं थी बल्कि उसने अपने अनेक साथियों का ध्यान पढ़ने की बजाय शिकार करने में लगा दिया। एक छोटी मण्डली खेलने में मस्त रहती। दूर-दूर जंगलों में घूमना और खतरनाक जानवरों का शिकार करना उसके प्रिय कार्य थे।

गुजरांवाले के समीप का इलाका चट्ठों का था। चट्ठों का सरदार हशमत खान अहंकारी व्यक्ति था जो हिन्दुओं और मुसलमानों को दुःखी कर बहुत प्रसन्न होता था। सरदार महासिंह के पास उसकी शिकायत पहुँची थी तो उसने सेना के एक भाग की सहायता से उस पर हमला कर हशमत खान को बंदी बना लिया। बहुत मारा पीटा गया परन्तु इस शर्त पर जान से नहीं मारा कि वह आगे से कभी पड़ोसी राजाओं को तंग नहीं करेगा सभी के साथ अच्छा व्यवहार करेगा। एक दिन रणजीत सिंह अपनी मित्र मण्डली के साथ शिकार खेलता हुआ रास्ता भूल गया और अपने साथियों से अलग हो दूसरी तरफ निकल गया। वह इलाका चट्ठों का था। उसी समय हशमत खान भी उधर शिकार खेलने आया हुआ था। उसने रणजीत सिंह को पहचान लिया। चट्ठों के सरदार का खून खौल उठा। महासिंह का पुत्र काबू में आ गया। अब इसे छोड़ना नहीं। घोड़े को तेज़ दौड़ाते हुए उसने रणजीत सिंह को घेर लिया और तलवार से वार किया। रणजीत सिंह ने बिजली के समान फुर्ती दिखाते

हुए अपनी रक्षा की और सरदार पर प्रहार करने के लिए तलवार बाहर निकाली। अधेड़ आयु के चट्ठे का कद लगभग साढे छह फीट था और वह मज़बूत शरीर वाला व्यक्ति था। रणजीत सिंह ने उस पर इतनी तेजी से वार किया कि हशमत खान की गर्दन धड़ से अलग हो गई। हश्मत खान का सिर उठाकर वह गाँव ले आया। गुजरांवाले आकर रणजीत सिंह ने घोषणा की कि आज से चट्ठों का सरदार मैं ही हूँ और उनके इलाके पर मेरा अधिकार है। उस समय रणजीत सिंह की आयु 13 वर्ष थी। इस छोटी सी उम्र में यह उसकी पहली शानदार विजय थी। नज़राना देकर चट्ठों ने अपने सरदार का कटा सिर हासिल किया और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

पिता सरदार महासिंह ने दल खालसा के प्रधान सरदार जस्सा सिंह आहलूवालिया के साथ अंतिम समय तक रिश्ता निभाया। सरदार जस्सा सिंह के देहान्त के बाद मिसल का जत्थेदार सरदार फतह सिंह को बनाया गया। रणजीत सिंह को आहलूवालियों की बहादुरी और प्रसिद्धि का पता था। वह फतह सिंह के पास गया और उसे गुरूद्वारा साहिब चलने का निवेदन किया। दोनों ने माथा टेक लिया तो रणजीत सिंह ने कहा, "फतह सिंह तुम मेरे बड़े भाई हो-। गुरू साहिब की मौजूदगी में मेरे साथ पगड़ी बदलो। मैं हमेशा तुम्हारा साथ दूंगा।" दोनों ने अपनी अपनी पगड़ी बदली और वफादारी की कसम खाई। यह घटना 1796 की है तब रणजीत सिंह की आयु 16 वर्ष थी। उसकी आयु का विवरण इस कारण दिया जा रहा है ताकि पाठक यह जान सकें कि कम उम्र में ही वह बड़े बड़े निर्णय करने लगा था।

अहमदशाह अब्दाली का पौत्र शाह ज़मान विशाल सेना लेकर आया और 3 जनवरी 1796 को लाहौर पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में ले लिया। परन्तु उसका दुर्भाग्य ही था कि उसके भाई महमूद शाह ने बगावत कर दी औरा स्वयं को अफगानिस्तान का बादशाह घोषित कर दिया। इस संकटकालीन परिस्थितियों में शाह ज़मान ने अहमदशाह शाहानची को लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया और स्वयं काबुल चला गया। सूबेदार लाहौर के पास 12 हज़ार सैनिकों की सेना थी। रणजीत सिंह ने फतह सिंह के साथ मिलकर लाहौर पर आक्रमण कर दिया। एक दिन भी सूबेदार सिक्ख सेना का मुकाबला नहीं कर सका। वह मारा गया और उसकी सेना भाग गई।

शाह ज़मान ने काबुल की बगावत को तो दबा दिया परन्तु सिक्खों पर उसका क्रोध अभी भी कायम था और अपने सूबेदार के कत्ल उपरान्त हुए अपने अपमान का बदला लेने के लिए 27 नवम्बर 1798 को लाहौर पर फिर हमला कर

दिया। बाबा साहिब सिंह बेदी का खालसा पंथ में बहुत सम्मान था क्योंकि वह गुरू नानक साहिब के वंशज थे। अकाली फूला सिंह से पहले सर्वप्रमाणित धार्मिक शख़्सीयत वही थे। उन्होंने सिक्खों के समक्ष अपील की कि सभी अपने मतभेद भुलाकर सरबत खालसा की एकत्रता में पहुँचें। सभी मिसलों के प्रधान उपस्थित हुए। केवल फूलकियां मिसल का पटियालवी राजा साहिब सिंह नहीं आया। जैसे विशाल संकट के समय बाबा आला सिंह ने सिक्खों की सहायता करने से मना कर दिया था उसी प्रकार साहिब सिंह इस विवाद से अलग रह कर सुरक्षित रहा। शाह ज़मान ने लाहौर को लूट लिया। सिक्खों ने इसके विरोध में कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की क्योंकि उन्हें पता था कि इसके बाद वह अमृतसर को लूटने अवश्य आएगा। दरबार साहिब की तबाही सिक्खों के स्वाभिमान का खात्मा समझी जाती थी। वह अमृतसर की तरफ बढ़ा तो शहर से बाहर लाहौर की ओर सरबत खालसा उस पर आक्रमण करने के लिए तैयार बैठा था। बहुत ही भयंकर युद्ध हुआ परन्तु सिक्ख उसको पीछे धकेलते हुए लाहौर ले गए। जब वह लाहौर किले में लौट गया तो सिक्ख सेनाएँ अमृतसर की रक्षा के लिए वापस लौट आईं।

हर रात रणजीत सिंह मनचले युवकों की एक जंगी टुकड़ी लेकर लाहौर पहुँचता और भयानक कोहराम मचाकर वापस लौट आता। वह किले की मुंडेर के नज़दीक पहुँच कर ललकारता, “अब्दाली के पौत्र चढ़त सिंह का पौत्र तुझे बाहर खड़ा ललकार रहा है, बाहर निकल और मुकाबला कर।” बाकी जितने भी दिन शाह लाहौर में रहा किले से बाहर नहीं निकला। एक रात चुपचाप चोरों की तरह अफगानिस्तान का रास्ता पकड़ा और वापस कभी पंजाब की तरफ मुख नहीं किया।

7 जुलाई 1799 को जब रणजीत सिंह ने लाहौर पर विजय प्राप्त कर निशान साहिब लहराया तो उसकी आयु 19 वर्ष थी। वह इतना साहसी और आत्मविश्वासी युवक था कि सिक्खों ने निर्विवाद उसे अपने बादशाह मान लिया। रणजीत सिंह द्वारा लाहौर पर अधिकार कायम करने के कारण आठ सौ वर्ष से आक्रमणकारियों का दरवाज़ा जो इधर खुला हुआ था वह सदा के लिए बंद हो गया।

12 अप्रैल 1801 को वैसाखी के दिन धार्मिक रस्में निभाने के बाद उसका राज्याभिषेक किया गया। बाबा साहिब सिंह बेदी ने राजतिलक लगाकर ‘सरकार’ की उपाधि प्रदान की। इसी दिन जैकारों की गूंज में सिक्का जारी किया गया उस पर वहीं पंक्तियाँ लिखी थी जो बाबा बंदा सिंह बहादुर के सिक्के पर अंकित थीं।

“गरीबों के लिए देग़ (लंगर) और कमज़ोरों की रक्षा के लिए तेग, गुरू नानक और गुरू गोबिन्द सिंघ की कृपा के कारण प्राप्त हुई।”

गुलाब सिंह भंगी रणजीत सिंह के यश से ईर्ष्या करता था। उसने अपने साथ अनेक लोगों को मिला लिया। कसूर के सूबेदार निज़ामुदीन को साथ मिला कर लाहौर (रणजीत सिंह) पर आक्रमण कर दिया। रणजीत सिंह शहर में खून-खराबा नहीं चाहता था इसलिए वह अपनी सेना लेकर लाहौर से 12 मील दूर भसीन गाँव तक बाहर आ गया। सामने से आती आक्रमक सेनाएँ रूक गईं। रणजीत सिंह भी रूका रहा और प्रतीक्षा करता रहा कि हमला हो। स्वयं आक्रमण करने की अपेक्षा वह होने वाले आक्रमण का जवाब देना उचित समझता था। दोनों तरफ की सेनाएं दो मास तक आमने-सामने डटी रहीं, किसी ने भी शुरूआत नहीं की। गुलाब सिंह शराब पीने का आदी था। एक शाम उसने इतनी पी ली कि मौत हो गई। उसकी सहायक फौजें धीरे-धीरे खिसक गईं और महाराजा रणजीत सिंह वापस लाहौर आ गए।

लाहौर जैसे महानगर पर अधिकार करने के बाद यह सम्भव नहीं था कि वह अमृतसर की ओर न देखे। सिक्ख राजा का राज्य अमृतसर के बिना अधूरा था। अमृतसर पर गुलाब सिंह भंगी की विधवा पत्नी माई सुखां का अधिकार था। रणजीत सिह सेना लेकर अमृतसर पहुँचा और आक्रमण की तैयारी के लिए जाँच कर ही रहा था कि भीतर से तोपें गूंजने लगी। माई सुखां ने गोलों की वर्षा कर दी। वह कब्जा छोड़ने की अपेक्षा युद्ध करके मरना उचित समझती थी परन्तु अकाली फूला सिंह ने तुरंत ही माई सुखां से सम्पर्क कर गोलाबारी बंद करवाई। यदि अकाली जी समझौता न करवाते तो दोनों का बहुत नुकसान होना था। महाराजा की तरफ से अकाली जी ने माई को पिंजोर बाग सहित दर्जनों गाँव जागीर रूप में दिलवा दिए तो 24 फरवरी 1805 को महाराजा रणजीत सिंह ने विजयी हो अमृतसर में प्रवेश किया। सबसे पहले उसने दरबार साहिब में माथा टेका और शुक्राने की अरदास की और वहीं कार सेवा प्रारम्भ करने की घोषणा की। सेवा अकाली फूला सिंह के निर्देशन में करने का निर्णय किया गया। संगमरमर और सोने पर नक्काशी का काम करने के लिए महँगे से महँगे शिल्पकार बुलवाए गए। आज तक दरबार साहिब के दरवाजे की चौगाठ पर यह शब्द अंकित हैं, "ये सेवा श्री गुरू महाराज जी ने अपने सेवक रणजीत सिंह पर अपार कृपा करके करवाई।"

प्रकृति का अटल नियम है कि प्रत्येक दुःख किसी अलग सुख का कारण बनता है। 18 वीं शताब्दी में मुगलों और पठानों ने सिक्खों का अस्तित्व मिटाने के लिए गतिविधियाँ प्रारम्भ की तब सिक्खों ने स्वयं को एक मज़बूत श्रृंखला के रूप में संगठित कर लिया, सभी को एक दूसरे से जोड़ने वाली इस जंजीर का नाम था खालसा पंथ। अफगानियों द्वारा हिन्दुस्तान पर निरंतर किए गए आक्रमण से मुगलों की ताकत टूट गई। मराठों और राजपूतों की बढ़ती शक्ति पर भी पठानों ने प्रहार

किया। इन परिस्थितियों का पूरा लाभ दल खालसा ने उठाया। मिसलदार सरदारों में इलाकों के विभाजन को लेकर पारस्परिक विवाद उत्पन्न हो जाता परन्तु सामने सांझे शत्रु को देखकर फिर से समझौता कर लेते। सिक्ख सरदारों को यह विश्वास हो चुका था कि पंजाब के सही उत्तराधिकारी वही हैं। यही कारण है कि इस शताब्दी में पंजाब पर कभी पठान अपना अधिकार कर लेते तो कभी मुगल। मराठों और अंग्रेजों ने अधिकार कायम करने के प्रयास तो किए परन्तु सिक्खों ने किसी को भी स्थायी नहीं रहने दिया और अस्थायी सरकारें निरन्तर बदलती रहीं। सिंध से लेकर दिल्ली तक केवल दल खालसा का प्रभाव रहा। इस पृष्ठभूमि के आधार पर महाराजा रणजीत सिंह की ताकत का पता चलता है। केवल पृष्ठभूमि भी क्या करेगी यदि उसको नियंत्रित करने के लिए व्यक्ति में कुशलता न हो। लोहा पूरा गर्म था, कहाँ प्रहार करना है, कैसे करना है, कितने समय बाद, कितनी जोर से इसका ज्ञान यदि रणजीत सिंह के अतिरिक्त किसी दूसरे को होता तो वह इस क्षेत्र का बादशाह होता। रणजीत सिंह ने सिद्ध कर दिया कि वह दूरद्रष्टा और नीतिज्ञ होने के साथ-साथ कार्यों को पूरा करने में सक्षम था। 1783 में जार्ज फारसटर और 1784 में वार्न हेसटिंगज़ द्वारा लिखित शब्द सच्ची भविष्यवाणी बने। इन्होंने लिखा था कि पंजाब की तबाही में से शक्ति एकत्रित करके कोई सरदार शीघ्र ही शक्तिशाली हुकूमत कायम करने वाला है।

लाहौर के बाद महाराजा की जीत का सिलसिला लगातार चलता रहा। 1800 में उसने जम्मू की तरफ प्रस्थान किया। जम्मू के राजा में मुकाबला करने की ताकत नहीं थी। उसने बीस हज़ार रुपये देकर आत्मसमर्पण कर दिया। रणजीत सिंह ने उसका तिरस्कार करने की अपेक्षा उसे दोशाला देकर सम्मानित किया।

महाराजा ने आदेश दिया कि गुजरांवाले से युद्ध का सारा सामान लाहौर लाया जाए। गुजरात का इलाका साहिब सिंह भंगी के अधीन था। उसने निश्चय किया कि गुजरांवाले पर हमला कर यह सामान लूट लेगा। इस बात का समाचार रणजीत सिंह को मिला तो वह सेना सहित गुजरात की तरफ गया। भंगी मुकाबला न कर सके और गुजरात पर रणजीत सिंह का अधिकार हो गया। साहिब सिंह की साजिश में अकालगड़ीया सरदार दल सिंह भी सम्मिलित था इस कारण उनके इलाकों पर भी रणजीत सिंह ने अधिकार कर लिया।

ब्रिटिश कम्पनी ने उसकी प्रसिद्धि देख मित्रता का संदेश भेजा और अपने दूत मुंशी यूसफ अली द्वारा पत्र और दस हज़ार रुपये भेंट स्वरूप भेजे। महाराजा ने दूतों को अधिक कीमती भेंट और कम्पनी को सहयोग देने सम्बन्धी और धन्यवाद पत्र भेजे।

कसूर का सूबेदार निज़ामुदीन सरकार खालसा के विरूद्ध साजिश रचता रहता था। महाराजा ने विशाल सेना सहित उस पर आक्रमण कर दिया। निज़ामुदीन पराजित हुआ और 1801 में कसूर भी पंजाब प्रदेश का एक भाग बन गया। निज़ामुदीन वार्षिक कर देने के लिए मान गया।

इसी वर्ष कांगड़ा प्रदेश के राजा संसार चन्द पर भी आक्रमण किया गया क्योंकि उसने रानी सदा कौर के इलाके का कुछ भाग रियासत में मिला लिया था। वह गुरू साहिबान के विरोध में दुर्वचनों का प्रयोग करता था और खुशवकत राय अनुसार कहा करता था कि मैं सिक्खों के केशों की रस्सी बनाऊँगा। संसार चन्द जान बचाकर भाग गया।

चनयोट पर करम सिंह के पुत्र जस्सा सिंह का कब्ज़ा था। वह लोगों को तंग करता रहता था। रणजीत सिंह के पास शिकायतें पहुँची तो प्रजा को अपने पक्ष में देख इस प्रदेश पर 1802 में अधिकार कर लिया गया।

1803 में मुलतान पर अधिकार किया गया। इसी वर्ष जालंधर और फगवाड़े को जीत कर फतह सिंह आहलूवालिया को सौंप दिए गए। अंग्रेजों ने 1805 ईसवी में जसवन्त राय होलकर को इंदौर में परास्त कर दिया तो वह प्राणों की रक्षा के लिए अपने शेष सैनिकों सहित पंजाब में दाखिल हुआ और शरण मांगी। महाराजा ने उसे शरण दी। जरनैल लेक उसका पीछा करता आ रहा था, जब रणजीत सिंह के राज्य की सीमा सतलुज पर आया तो वहीं रूक गया और महाराजा को पत्र भेजता रहा क्योंकि अंग्रेजों ने महाराजा को मित्र मान लिया है इस कारण होलकर उसे सौंप दिया जाए। महाराजा ने बंदी के रूप में होलकर अंग्रेजों के सुपुर्द नहीं किया बल्कि उनको समझाता रहा कि यदि तुम अपने राज्य में अमन चाहते हो तो होलकर का सम्मान बहाल करके कुछ शर्तो अधीन उसे उसके राज्य में वापस भेज दिया जाये। अंग्रेज मान गए और होलकर अपने राज्य में वापस चला गया।

1807 में नेपालियों ने समस्त पर्वतीय प्रदेश को अपने अधिकार में लेने का निश्चय किया तो अमर सिंह थापा के अगुआई में वह कांगड़े पर कब्ज़ा करने के लिए आ गए। महाराजा ने उन पर हमला कर दिया क्योंकि वह गोरखों को अपनी सरहद के समीप आने देना खतरनाक समझता था। थापा की सेना भाग गई। इसी साल झंग, बहावलपुर और अखनूर अपने राज्य में मिला लिए। 1810 में गुजरात, शाहीवाल, जम्मू और वज़ीराबाद के अतिरिक्त फैज़लपुरिआ, नक्कई और कनहीआ मिसिलें भी अपने अधीन कर लीं। कम समय में ही सिंध से लेकर यमुना तक महाराजा रणजीत सिंह का प्रभुत्व कायम हो गया और पूर्व की तरफ हिन्दुस्तान में न बढ़े इसलिए अंग्रेजों ने उसके साथ सतलुज की संधि की।

अफगानिस्तान का बादशाह शाह शूजा बगावत को रोक न सका और शाह महमूद ने गद्दी संभाल ली। शाह शूजा को बंदी बनाकर कश्मीर भेज दिया गया। 1812 में महाराजा ने कश्मीर पर आक्रमण करने का संकल्प किया तो शाह की पत्नी यह सोचकर भयभीत हो गई कि उसका पति इस युद्ध में मारा जाएगा। वह महाराजा रणजीत सिंह से मिली और प्रार्थना की कि यदि मेरे पति के प्राण बख्श दिए जाएं तो इसके बदले में वह कोहिनूर हीरा महाराजा को दे देगी। दीवान मोहकम चंद ने कश्मीर पर आक्रमण का नेतृत्व किया और किले में से 40 लाख रुपये और अन्य कीमती समान के साथ-साथ शाह शुजाअ को बंदी बना लिया गया। शाह को लाहौर लाया गया जहाँ लम्बे वाद-विवाद के बाद उसने हीरा महाराजा को सौंप दिया।

1818 में खालसा सेनाओं ने पेशावर पर आक्रमण किया जो अफगानिस्तान के लिए असहनीय घाव था। परन्तु पेशावर को पूर्णतः 6 मई 1834 ईसवी में पंजाब में मिलाया गया और इसका गवर्नर कंवर नौनिहाल सिंह को नियुक्त किया गया। कंवर की आयु इस समय 14 वर्ष थी। अफगानों का बादशाह दोस्त मुहम्मद पेशावर में सिक्खों के अधिकार को सहन नहीं कर सका। उसने सरकार खालसा को पत्र लिखा, “यदि दयालु होकर बादशाह सलामत (महाराजा रणजीत सिंह) पेशावर को वापस कर दें तो इसके बदले में हम उन्हें उनका हरजाना देने के लिए तैयार हैं जितना सुलतान महमूद दिया करते थे। परन्तु दूर द्रष्टा महाराजा ने लोभ वश ऐसा नहीं किया और मेरी प्रार्थना को कोई महत्त्व न दिया तब मैं क्रोधित हो युद्ध करूँगा और आपके बगीचे में कांटा बनकर चुभता रहूँगा। मैं अपने सभी सैनिकों को इकट्ठा करूँगा जो मरने के अलावा कुछ और नहीं जानते। मैं चारों तरफ इतनी तबाही मचाऊँगा कि कयामत दिखाई देगी।” महाराजा ने उत्तर भेजा, “हमने बागियों का सिर काट दिया है और शत्रु भाग गए हैं। यदि लोभ में अंधा मित्र मोहम्मद अपनी थोड़ी बची सेना के साथ आक्रमण करना चाहता है तो आ जाये। हम रणक्षेत्र में उसका सामना करने के लिए निकल पड़े हैं।”

ब्रिटिश कम्पनी की ओर से यद्यपि अंग्रेजों ने पहले मित्रता करने का पत्र 1800 में महाराजा रणजीत सिंह को भेजा था परन्तु 1805 में अंग्रेजों का भगाया हुआ महाराजा जसवन्त राय होलकर जब लाहौर दरबार में शरण लेने के लिए आया तब अंग्रेजों ने गंभीरता पूर्वक मित्रता का हाथ महाराजा रणजीत सिंह की तरफ बढ़ाया। इस घटना से प्रभावित होकर अंग्रेजों ने महाराजा रणजीत सिंह के साथ पहली संधि 1 जनवरी 1806 को की जिसके अधीन -

1. महाराजा रणजीत सिंह होलकर को कहे कि वह अमृतसर से तीस किलोमीटर पूर्व की तरफ अपनी सेना सहित प्रस्थान करे और इनको सेना की सहायता न दी जाये।
2. भविष्य में होलकर या उसके मित्रों के साथ सरकार खालसा कोई सम्बन्ध न रखे।
3. महाराजा रणजीत सिंह अंग्रेजों के इलाकों में हस्तक्षेप न करे।

कुछ लोगों ने महाराजा रणजीत सिंह की आलोचना की है कि उसने जसवन्त राय को सेना द्वारा सहायता क्यों नहीं पहुँचाई। इसका कारण यह है कि अंग्रेजों की शक्ति का महाराजा को बोध था। दूसरे, उसके राज्य की सीमाएँ अंग्रेजी राज्य की सीमाओं के साथ लगती थीं जसवन्त राय होलकर की सीमाओं से नहीं। तीसरे, उसे होलकर की विश्वसनीयता पर संदेह था और यह संदेह बाद में सही सिद्ध हुआ। चौथे, यदि वह अंग्रेजों का विरोध करता तो अफगानी इसका लाभ उठाकर पंजाब पर आक्रमण कर देते। जब रणजीत सिंह की ओर से सहायता न मिली तो होलकर ने अफगानिस्तान की सरकार से सहायता के लिए सम्पर्क स्थापित किया जो सरकार खालसा के हित का विरोधी था।

1806 और 1807 में रणजीत सिंह ने सतलुज के पूर्व की तरफ और यमुना तक लगातार आक्रमण किए और पूर्वीय पंजाब की रियासतों से अधिकतर रकम नज़राने के रूप में लेनी शुरू कर दी। रियासती राजाओं में हड़बड़ी फैल गई क्योंकि उन्हें प्रतीत हो रहा था कि महाराजा उनका शासन छीनने के लिए तत्पर है। इन राजाओं ने पटियाला रियासत के मुखिया को आधार बनाते हुए अंग्रेजों के पास दिल्ली जाकर फरियाद की कि उनकी सम्पत्ति को सुरक्षा प्रदान की जाये। अंग्रेजों ने 1803 में दिल्ली पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया था, रणजीत सिंह का पूर्व दिशा की तरफ बढ़ना उन्हें भी खतरा प्रतीत होता था। अनेक पश्चिमी यात्री और सैनिक यह भविष्यवाणी कर रहे थे कि यदि उसकी गतिविधियों को न रोका गया तो जिस प्रकार उसके राज्य का विस्तार हो रहा है, एशिया में उसका मुकाबला करना मुश्किल हो जायेगा।

लार्ड मिंटो ने महाराजा के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का निर्णय लिया और इसी सम्बन्ध में 11 जुलाई 1808 को पत्र लिखा कि हमारा दूत मैटकाफ लाहौर आ रहा है। मैटकाफ की आयु उस समय 23 वर्ष थी और वह दूर द्रष्टा, कुशाग्र बुद्धि और कूट नीतिज्ञ था। वह 28 जुलाई को दिल्ली से चला तो पटियाला के राजा साहिब सिंह ने उसका भव्य स्वागत किया। महाराजा रणजीत सिंह ने दीवान मुहकम चंद और सरदार फतह सिंह आहलूवालिया को उसके स्वागत के लिए खेमकरण में

नियुक्त किया। लगभग दस हज़ार सिक्ख सैनिक जो कि बहुत ही सजे हुए और रोबदार थे, उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैटकाफ के अंगरक्षकों की संख्या कम थी और न तो वह सजे हुए थे ओर न ही उनका कोई रोब पड़ रहा था। मैटकाफ ने टिप्पणी की, "महाराजा का उद्देश्य अंग्रेजों पर रोब डालने का है।" 12 सितम्बर 1808 को मैटकाफ लाहौर किले में पहुँचा। उसका बहुत स्वागत किया गया। महाराजा उसकी बांह में अपनी बांह डालकर स्वयं कुर्सी तक लेकर आए और अनेकों कीमती उपहार उसे भेंट स्वरूप दिए। परन्तु मैटकाफ अनुसार महाराजा की ओर से जो सत्कार होना चाहिए था वह नहीं हुआ। अंग्रेज दूत चाहता था कि महाराजा उसे लेने के लिए किले से स्वयं बाहर आते क्योंकि वह कोई सामान्य व्यक्ति नहीं था; शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार का शाही दूत था।

महाराजा ने पूछा कि नदियों में बाढ़ का प्रकोप है और गर्मी भी बहुत है। आपको आने की इतनी क्या जल्दी थी? चालर्स मैटकाफ ने कहा, "अंग्रेज सरकार आपसे मैत्री करने की इच्छुक है और आपकी सहमति के बाद ही मैं इग्लैंड जाऊँगा।" महाराजा ने उसे कीमती दोशाले, रेशम के थान, गुलाबदान, हीरे-रत्न सुसज्जित हार, हाथी घोड़ा और हज़ारों रुपये दिए। हाथी का आसन और घोड़े की काठी स्वर्ण जड़ित थी। पुनः 16 सितम्बर को मैटकाफ महाराजा से मिला तो उसने सोने, चांदी और रत्नों से जड़ित आसनों वाले तीन हाथी और अन्य अनेक उपहार दिए। मैटकाफ की शिकायत थी कि उसका सम्मान जैसा होना चाहिए था, वैसा नहीं हुआ, सही था क्योंकि राजदूत ने महाराजा के कुछ सिक्ख सरदारों और महाराजा की सास सदा कौर के साथ गुप्त मीटिंगें की थीं और महाराजा ने उसके पीछे अपने गुप्तचर छोड़ रखे थे।

मैटकाफ के जाने के बाद महाराजा ने मालवा इलाके पर आक्रमण कर दिया। मलेरकोटला के नवाब से एक लाख रुपये वसूल किए। एक अक्तूबर 1808 को फरीदकोट पर विजय प्राप्त कर ली गई। उसके बाद लगातार यमुना के प्रदेशों में से नज़राने प्राप्त करता रहा और अंग्रजों ने इस बात को गम्भीरता से लिया कि मैटकाफ द्वारा दिए गए संधि के प्रस्ताव की जान-बूझ कर अवेहलना की जा रही है। यह ब्रिटिश राज्य के लिए खतरे का संकेत था। गवर्नर जरनल ने महाराजा को पत्र लिखा, "हिज़ लार्डशिप को यह जानकर आश्चर्य और चिंता हो रही है कि आप सतलुज एवं यमुना के बीच की रियासत पर अधिकार करना चाहते हैं। मराठों को पराजित करने के कारण इस प्रदेश पर हमारा अधिकार है और लार्ड लेक ने आपको उचित सलाह दी है कि आपके एवं अंग्रेजों के राज्य के बीच में सतलुज को सरहद मान लिया जाए। इस पत्र द्वारा यह घोषणा की जा रही है कि इन रियासती राज्यों पर अपना अधिकार करने का विचार छोड़ दें क्योंकि अब यह ब्रिटिश सुरक्षा के अधीन

हैं। सरकार की इच्छा है कि सतलुज के पूर्व की तरफ जिन प्रदेशों पर आपने अधिकार किया है वह मुक्त कर दिए जाएं। हम महाराजा के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के अभिलाषी हैं।"

महाराजा को इस प्रकार के पत्र की आशा नहीं थी। एक बार तो उसने अंग्रेजों का मुकाबला करने का निश्चय किया परन्तु कुछ बुजुर्गों ने महाराजा के इस संदेश को अंग्रेजों तक पहुँचाया कि हम दोनों स्थानों पर ही हस्तक्षेप नहीं करेंगे परन्तु रियासती राजा परम्परा अनुसार वार्षिक कर सरकार खालसा को देते रहेंगे, इसकी गारंटी अंग्रेजी सरकार दे। अंग्रेजों ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। महाराजा क्रोधित हो गया। 4 फरवरी 1809 को अख़्तरलोनी पटियाला पहुँचा। रानी दया कौर ने उससे प्रार्थना की कि अम्बाला नगर मेरा है, इसे महाराजा के आधिपत्य से मुक्त करवाया जाए। लाहौर की सेना ने अम्बाला छोड़ दिया। पुनः 9 फरवरी को लाहौर में पत्र भेजा गया कि खरड़ और ख़ानपुर से खालसा की सेना चली जाए नहीं तो अंग्रेज कार्रवाई करेंगे। महाराजा इस समय अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए तैयार था परन्तु विदेश मन्त्री फकीर अज़ीज़ुदीन बुख़ारी ने महाराजा को ऐसा करने से रोका, सेनाओं को वापस बुला लिया। अंततः गंभीर वाद-विवाद और सोचने के बाद ऐंगलो सिक्ख संधि हुई। दोनों दलों की ओर से इस पर 25 अप्रैल 1809 को हस्ताक्षर किए गए। इस संधि अनुसार :

1. लाहौर सरकार और अंग्रेज सरकार के मध्य मित्रता रहेगी और जिस प्रकार महाराजा का कोई सम्बन्ध सतलुज के प्रदेशों से नहीं होगा उसी प्रकार सतलुज के पश्चिमी प्रदेशों पर अंग्रेजों का कोई हस्तक्षेप नहीं होगा।
2. सतलुज के तट पर महाराजा अधिक सेना तैनात नहीं करेगा।
3. दोनों सरकारों के उत्तराधिकारी भी इन शर्तों के पाबंद होंगे और इस शर्त की उल्लंघना का मतलब संधि का टूटना होगा।

संधि के इन कागज़ों पर 21 मई 1809 को लार्ड मिंटों गवर्नर जरनल द्वारा हस्ताक्षर किए गए। इस संधि के विरोध में सबसे अधिक प्रतिक्रिया दीवान मोहकम चन्द और अकाली फूला सिंह ने व्यक्त की, वह इसे भंग करके युद्ध करने के इच्छुक थे। रणजीत सिंह पर पूर्वी पंजाब की तरफ बढ़ने और राज्य विस्तार करने पर पाबंदी लगा दी गई। जिन लोगों ने इस संधि को स्वीकार करना महाराजा की कायरता बताया, वे तथ्यों से अनजान थे। महाराजा को स्थिति का सही बोध था। वह अंग्रेजों से युद्ध करता तो अफगानी पंजाब पर आक्रमण कर देते और रियासती राजा भी अंग्रेजों का साथ देते। वह सभी प्रदेशाधिकारी रणजीत के विरोधी थे जिनके अधिकार को रणजीत सिंह ने छीन लिया था। इस संधि का लाभ यह हुआ कि वह पूर्वी सीमा

की तरफ से निश्चित हो गया जिस कारण समस्त पर्वतीय रियासतों पर जम्मू सहित कब्जा कर लिया गया और कश्मीर के अलावा सिंध तक कब्जा कर लिया। मुलतान, कश्मीर और अन्य अनेक दिशाओं से महाराजा के विरोध में अंग्रेजों के पास संधि के प्रस्ताव गए किन्तु महाराजा जब तक जीवित रहा अंग्रेजों से मैत्री बनायी रखी। विश्व की शक्तिशाली हुकूमत को अपने पक्ष में करना कोई कम महत्त्वपूर्ण प्राप्ति नहीं थी। मेहनत से बनाई हुकूमत को वह व्यर्थ खोना नहीं चाहता था। रणजीत सिंह ने अंग्रेजों के साथ कुछ अहदनामें मज़बूरी में किए, उदास भी हुआ, परन्तु इस तथ्य की पुष्टि स्वयं रणजीत सिंह के कथन से होती है, "मैं अंग्रेजों को घसीट कर अलीगढ़ तक ले जा सकता हूँ परन्तु फिर वे मुझे घसीट कर मेरे राज्य से बाहर निकाल देंगे।"

महाराजा रणजीत सिंह ने स्वयं को आम व्यक्ति माना। उसने फकीर नूरूद्दीन और सरदार अमीर सिंह को लिखित रूप से यह संदेश भेजा कि यदि मेरा कोई उत्तराधिकारी या प्रधान मन्त्री कोई ऐसा हुक्म जारी कर दें जो प्रजा के हित में न हो तो उसमें संशोधन या वापस लेने के लिए मेरे पास लेकर आओ। संसार में अन्य कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। वह अकाली फूला सिंह के आदेश पर फूल भेंट करने, चाबुकों के प्रहार सहने के लिए अकाल तख़्त के सामने पेश हो सकता था।

7 अप्रैल 1831 को लहना सिंह मजीठिया और जरनैल वैनतुरा से बहावलपुर पर आक्रमण करने के विषय में सुनकर महाराजा ने उनसे कहा, "निर्धनों और दीनों का ध्यान रखना कि वह अपने घरों में बसते रहें। कहीं भिखारी न बना देना प्रजा को।" इसी प्रकार खुशहाल सिंह द्वारा 1833 में कश्मीर से नज़राना वसूल किए जाने पर रणजीत सिंह बहुत दुःखी हुए क्योंकि कश्मीर उस समय अकाल से जूझ रहा था। उसने हज़ारों तांगों में अनाज लाद कर मंदिरों और मस्जिदों में पहुँचाया जिससे कि प्रजा का पेट भर सके। कर्मचारियों और अफ़सरों का वेतन संसार में इतना कहीं नहीं था जितना महाराजा उन्हें देता था। वह योग्यता के आधार पर ही नियुक्ति करता था। यदि योग्य व्यक्ति मिल जाता तो पैसे की कमी न रहने देता। कश्मीर के निज़ाम कृपा राम का वेतन एक लाख रूपये वार्षिक था। कर्मचारी उसकी अगुआई में काम करते थे उसका मुख्य कार्य किलों में अनाज के भण्डार जमा करना होता था। यह अनाज कर्मचारियों को वेतन के रूप में दिया जाता था और जब सेना कहीं प्रस्थान करती थी तब लंगर के रूप में भी उपयोग होता था।

प्रशासन इतना कुशल था कि राज्य में चोरी, लूट-मार नहीं होती थी। 20 दिसम्बर 1810 को महाराजा के पास समाचार पहुँचा कि बीती रात को चोर सुनार से सोना लूट ले गए। महाराजा ने थानेदार को हुक्म दिया कि शीघ्र कार्रवाई की जाए और डाकूओं को पेश किया जाए। 22 दिसम्बर को थानेदार बहादुर सिंह ने दो डाकू

महाराजा के समक्ष पेश किए तो महाराजा ने कहा, "दो नहीं, जितने भी डाकू थे सभी पकड़े जाने चाहिए और वह सोना लाओ जो उन्होंने लूटा था। यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हें दण्ड दिया जाएगा।"

न्याय की पहली ईकाई पंचायत थी। पंचायत में हुए निर्णय का सम्मान किया जाता था। पंचायती निर्णय के विरोध में कारदार के पास अपील की जाती थी और कारदार के विरोध में नाज़िम के पास अपील होती थी। हैनरी दुरांत का कथन है, "मैं पेशावर के नाज़िम अवीतबिले से मिलने के लिए गया तो वह अपनी अदालत में बैठा फैसले कर रहा था। वहाँ जो न्यायाधीश मेज़ पर बैठे थे, उनमें से दो मुसलमान, दो हिन्दू और सिक्ख थे। महाराजा ने कठोर आदेश दिया था कि शीघ्र निर्णय लिया जाए साथ ही न्यायाधीश दयालुता भी दिखाएं। न्यायाधीश को काज़ी कहा जाता था। अलग-अलग धर्मों की विभिन्न परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिए जाते थे। महाराजा के शासन के समय किसी को भी मृत्यु दण्ड नहीं दिया गया था। उसे भी नहीं जिसने स्वयं महाराजा पर प्रहार किया था। सबसे भयंकर दण्ड देशनिकाला था। पंजाब को स्वर्ग के समान समझा जाता था औरा पंजाब से बाहर जाने का अर्थ था नरक में जाना।

सैनिकों का वेतन अच्छा था परन्तु सेना की कोई संख्या निश्चित नहीं थी। संकट आने पर सेना की संख्या में बढ़ोतरी कर ली जाती थी। 1810 में महाराजा के पास लाहौर में 30 हज़ार घुड़सवार होते थे और प्रतिदिन एक हज़ार घोड़ों को परीक्षण के लिए लाया जाता था। महाराजा किसी एक घोड़े पर बैठ घुड़सवारी करते। अनेक बार तो वह सुबह का भोजन भी घोड़े की काठी पर बैठ करते। इस प्रकार तीस दिनों में तीस हज़ार घोड़ों का चयन और परीक्षण हो जाता। इन घोड़ों को संभालने वाले योग्य व्यक्ति बहुत शीघ्रता से उन्नति करते। महाराजा मेले में बहादुरों के कारनामें देखता और वहीं उनको नौकरी देने की घोषणा करता। महाराजा रणजीत सिंह ने कभी जातिवाद के आधार पर किसी से भेदभाव नहीं किया। महाराजा की इस दयालुता के प्रभाव के कारण ही क्रोधित सिक्ख भी उनकी आज्ञा मानते थे यद्यपि यूरोपीयन जरनैलों के अधीन उन्हें काम करना पसंद नहीं था। यदि कभी कोई समस्या सामने आती तो महाराजा उसका समाधान स्वयं कर लेते।

सोहन लाल महाराजा के दूत के रूप में ईरान के शहज़ादा अब्बास मिर्ज़ा से मिला। ईद के पर्व पर शहज़ादे के महल को बहुत अच्छी तरह सजाया गया था। शहज़ादे ने सोहन लाल से पूछा, "क्या महाराजा रणजीत सिंह का दरबार भी इसी प्रकार शोभा देता है, और क्या महाराजा की सेना भी मेरी सेना की तरह साहसी और

अनुशासनप्रिय है?" सोहन लाल ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "मेरे महाराजा के दरबार की छत कश्मीरी पश्मीनों और शालों से मण्डित है और फर्श पर भी कश्मीरी शाल बिछे हुए हैं। जहाँ तक बहादुरी का प्रश्न है, यदि हमारा जरनैल हरि सिंह नलूआ सिंध दरिया लांघ आए तो आप वापस तरबेज़ जाना ठीक समझोगे।" अब्बास मिर्ज़ा ने कहा, "खूब। बहुत खूब।"

महाराजा की वेशभूषा सामान्य थी। उनका सिंहासन भी विशेष नहीं था। एक सुन्दर कुर्सी बनवाई गई थी जो स्वर्ण जड़ित थी परन्तु उसकी आभा साधारण थी। यह कुर्सी अब लंदन के अजायबघर में है। महाराजा जहाँ कहीं भी होते वहीं निर्णय करते। कई बार तो वह धरती पर पालथी मारकर बैठ जाते और न्याय करते। मुलाकात करने वाले अपनी क्षमता अनुसार उपहार देते। उसकी उपस्थिति में लोग भयभीत नहीं होते थे। मिलने से पहले धरती पर माथा टेकने जैसी परम्पराएं उसे अच्छी नहीं लगती थीं। परन्तु उसने अपने वज़ीरों, राजकुमारों, जरनैलों, अफ़सरों आदि को आदेश दिया हुआ था कि वह सजधज कर ही दरबार में उपस्थित हों। राजा गुलाब सिंह और राजकुमार हीरा सिंह सबसे अधिक सजे होते थे उनकी वेशभूषा सबको आकृष्ट करने वाली होती थी। जो व्यक्ति सरकारी नौकरी करते थे उन पर दो प्रतिबन्ध थे एक तो बाल नहीं कटवाने और दूसरा तम्बाकू का प्रयोग वर्जित था। यह आदेश यूरोपियों, हिन्दुओं, मुसलमानों सभी पर लागू था। सामान्य जनता पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। जो भी देश या विदेश से मेहमान मुलाकात के लिए आते महाराजा उन्हें अपने बराबर कुर्सी पर बिठाते जबकि उन दिनों ऐसी कोई परम्परा नहीं थी कि कोई भी व्यक्ति बादशाह के बराबर बैठे। महाराजा की दृष्टि केवल योग्यता की परख करती इसी कारण उन्होंने सम्पत्ति को पैतृक नहीं बनने दिया। यदि पिता जागीरदार है तो उसकी सम्पत्ति का अधिकारी केवल उसकी संतान नहीं हो सकती थी। जरनैल हरि सिंह नलूए की वार्षिक जागीर आठ लाख रुपये थी। उसकी संतान उसके समान योग्य सिद्ध नहीं हुई तो उसकी सम्पत्ति उसकी मौत के बाद अपने अधिकार में लेकर अन्य योग्य व्यक्तियों में विभाजित कर दी गई।

महाराजा के शासन में तीन व्यक्तियों का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ध्यान सिंह प्रधान मन्त्री था। गुलाब सिंह जरनैल और गवर्नर दोनों पदवियों पर रहा और इनका तीसरा भाई सुचेत सिंह दरबार के कार्यों में सहयोग देता था। इन तीनों भाइयों की प्रसिद्धि से सिक्ख ईर्ष्या करते थे। इसी प्रकार तीन मुसलमान भाई उच्च पदवियों पर सुशोभित रहे। फकीर अज़ीज़ुदीन मन्त्री पद पर रहा, फकीर नूरुदीन लाहौर किले का निगरान था और खज़ाने की चाबियाँ भी उसके पास थीं। महाराजा उसका बहुत

सम्मान करता था। तीसरा भाई इमामुदीन गोबिन्दगढ़ और अमृतसर के किलों का रक्षक था। सरकार द्वारा दिए गए लाखों रुपये उसके खज़ाने में जमा होते थे। उसने गवर्नर के पद पर भी कार्य किया।

मजीठियां सरदारों में से देसा सिंह और लहना सिंह सत्ता के सहभागी रहे। संधावालीएं सरदारों में अमीर सिंह, अतर सिंघ, लहना सिंह और बुद्ध सिंह अधिक सम्माननीय व्यक्ति थे जिन्हें लाखों रुपये जागीर रूप में प्राप्त होते थे। शाम सिंह अटारी वाला महाराजा का रिश्तेदार था। उसकी बेटी का विवाह कंवर नौनिहाल सिंह से हुआ था। वह एक साहसी योद्धा था जो 1846 में अंग्रेजों से युद्ध करता हुआ शहीद हो गया था। सर लैपल ग्रीफिन का उसके विषय में कथन है, "जाट जाति में शाम सिंह सर्वाधिक बहादुर था और बहादुरी, ईमानदारी, ताकत और साहस में जाट विश्व की किसी जाति से कम नहीं।"

हरि सिंह नलूए के विषय में महाराजा का कथन था, "हुकूमत को सफलता पूर्वक चलाने के लिए ऐसे जरनैलों की आवश्यकता होती है।" वह जमरौद किले में अफगानों से युद्ध करता हुआ अप्रैल 1837 में शहीद हो गया था। महाराजा अनेक महीने तक दुःखी रहे और सभी को आदेश दिया गया था कि कोई भी महाराजा के सामने नलूए सरदार का जिक्र नहीं करें। कादरयार जब नलूए के विषय में कविता लिखकर लाया तो महाराजा रोने लगे और शायर को कुएं सहित 25 एकड़ ज़मीन भेंट दी।

हिन्दू जरनैलों में सर्वाधिक साहसी व्यक्ति दीवान मुहकम चंद था। उसने सतलुज सीमा की रक्षा का कार्य स्वयं महाराजा से लिया था और फल्लौर का किला जो अब पुलिस प्रशिक्षण केन्द्र बन चुका है उसने ही बनाया था। वह अंग्रेजों से बहुत नफरत करता था। अकाली फूला सिंह और मुहकम चंद दोनों ही अंग्रेजों से संधि करने के विरूद्ध थे। अमृतसर में अकाली जी ने तो मैटकाफ के सुरक्षा कर्मचारी को पीट तक दिया था। लाहौर में संधि करते समय जब वह अपनी बात को लेकर हठ करता तो मुहकम चंद को बहुत बुरा लगता। उसने एक दिन मैटकाफ से कहा, "युद्ध के मैदान में लगता है आपने सिक्खों को देखा नहीं, जिस दिन देखोगे तो समझ जाओगे।" इसका उत्तर देते हुए मैटकाफ ने कहा, "आपने भी अभी अंग्रेजों को देखा नहीं।"

मुहकम चंद का बेटा दीवान मोती राम पहले कश्मीर फिर जालंधर का गवर्नर रहा। डोगर उसके विरूद्ध साजिश रचते रहते जिस कारण वह लाहौर को छोड़ बनारस चला गया था। मोती राम का बेटा रामदयाल फौजी अफ़सर था और 28 वर्ष की आयु में 1820 में वह पठानों के विरूद्ध युद्ध करता हुआ शहीद हो गया।

रामदयाल का भाई कृपाराम जालंधर का प्रशासक था। डोगरे इसके विरोध में भी आवाज़ उठाते रहे जिस कारण यह भी अपने पिता के पास बनारस चला गया।

दीवान भवानीदास काबुल में शाह शुज़ा का माल अफ़सर था। किसी कारण शाह उससे नाराज़ हो गया तो वह 1808 में काबुल छोड़कर लाहौर आ गया और यहाँ महाराजा से मिलकर उन्हें अपनी योग्यता का विवरण देते हुए नौकरी के लिए प्रार्थना की। महाराजा ने उसका सम्मान करते हुए उसे राज्य की आर्थिक स्थिति की निगरानी करने का काम सौंपा। उसने सर्वप्रथम सही हिसाब-किताब करने की प्रथा शुरू की। खज़ाने की संभाल के लिए अनेक दफ्तर खोले गए। किसी भी जागीरदार या सूबेदार से हिसाब मांगने का उसे अधिकार था। उसने अनेक बार जांच अधिकारी के पद पर भी कार्य किया।

खुशहाल सिंह मेरठ ज़िले का ब्राह्मण था जिसने 17 वर्ष की आयु में महाराजा से पाँच रुपये मासिक वेतन की नौकरी शुरू की। परन्तु कुशाग्र बुद्धि होने के कारण महाराजा ने उसे लाहौर किले का पहरेदार बना दिया। कोई भी अफ़सर या वज़ीर चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो उसकी आज्ञा के बिना महाराजा के साथ निजी बातचीत नहीं कर सकता था। खुशहाल सिंह का भतीजा तेजाराम भी लाहौर आ गया और अमृत पीकर वह तेजाराम से तेजा सिंह बन गया। उन्नति करता हुआ वह जरनैल की पदवी तक पहुँच गया। रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद उसने राज्य के साथ धोखा किया और अंग्रेजों के साथ मिल गया।

दीवान गंगा राम बनारस का निवासी था। ग्वालियर के महाराज ने उसे नौकरी दी थी। बुद्धिमान और ईमानदार होने के कारण वह अच्छा रसूख बना गया था। जब अंग्रेजों ने महाराजा सिंधिया को हरा दिया तब वह 1803 में दिल्ली में आकर रहने लगा। 1813 को किसी ने महाराजा को उसकी योग्यता के विषय में बताया तो महाराजा ने उसी समय गंगा राम को लाहौर बुलाया और उसे वित्तीय मामलों की निगरानी का कार्य सौंपा। राज्य की शाही मोहर उसके पास होती थी।

दीवान अयोध्या प्रसाद गंगा राम का गोद लिया पुत्र था। 15 वर्ष की आयु में वह लाहौर में आया। पहले वह सेना में भर्ती हुआ फिर तरक्की करता हुआ जरनैल वैनतुरा का लैफटीनैंट जरनल बन गया। अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषा का ज्ञान होने के कारण वह महाराजा के पास द्विभाषायी का कार्य भी करता था। महाराजा के अलावा उसने कंवर खड़क सिंह और कंवर शेर सिंह के साथ भी काम किया। महाराजा की मृत्यु के बाद उसने अपना प्रमुख दायित्व निभाया। जब अंग्रेजों ने सिक्खों को परास्त किया तब उसने अंग्रेजों से कंवर दिलीप सिंह की निगरानी करने का काम मांगा। जब तक कंवर दिलीप सिंह को इंग्लैंड नहीं भेजा गया तब तक

अयोध्या प्रसाद ने उसकी निगरानी का दायित्व पूर्ण निष्ठा से निभाया। वह बहुत ही दयालु और न्यायप्रिय व्यक्ति था। अंग्रेजों ने उसकी शैक्षिक योग्यता को देखते हुए उसे लाहौर का मैजिस्ट्रेट नियुक्त किया।

इसी प्रकार राजा दीना नाथ, मिसर दीवान चन्द, मिसर रूप लाल, बेली राम और सावन मल्ल अपनी योग्यताओं के आधार पर निम्न पदवियों से उच्च पदवियों पर पहुँच गए।

विदेशी जरनैलों में जीन फ्रांसिस ऐलार्ड, वैनतुरा, अवितबिले कुर्ट इत्यादि उच्च श्रेणी के व्यक्तियों ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। शुरू में सिक्खों द्वारा उनका उपहास उड़ाया गया और उनके अधीन कार्य करने में असहमति जताई। परेड को सिक्ख पसंद नहीं करते थे और इसे वेश्याओं का नृत्य कहते थे। परन्तु धीरे-धीरे वह महाराजा की इस बात से सहमत हो गए कि अनुशासन बनाए रखने के लिए परेड बहुत जरूरी है। इन विदेशी जरनैलों ने खतरनाक युद्धों में भाग लिया। महाराजा ने किसी भी अंग्रेज को उच्च पदवी पर नियुक्त नहीं किया।

कोई भी यात्री पंजाब देखने की इच्छा से आता था, वह महाराजा से मिले बिना वापस नहीं गया। मुलाकात में कोई कठिनाई पेश नहीं आती थी। महाराजा अपने पास ही रुपयों और मुद्राओं की भरी थैलियां रखते। यात्रियों को मुट्ठी भर-भर कर धन देते। कुछ यूरोपीय यात्रियों ने जब इस बात के प्रति रोष प्रकट किया कि वह धन की इच्छा से नहीं आए तब उन्हें बताया गया कि यह उनके अपमान करने की इच्छा से नहीं, बल्कि उनके स्वागत के लिए यहाँ की परम्परा है। आते-जाते समय पंजाबी लोग अपने प्रियजनों को, रिश्तेदारों को इसी प्रकार धन देते हैं। अनेक चित्रकार आए जो रणजीत सिंह का चित्र बनाने के अभिलाषी थे। किन्तु महाराजा उन्हें मना कर देता और कहता, "राजा ध्यान सिंह का चित्र बनाओ वह बहुत सुन्दर है। महारानी जिंदां का चित्र बनाओ।" उन्हें वह धन देकर वापस भेज देता क्योंकि उसे अहसास था कि वह सुन्दर नहीं है। औसबोर्न लिखता है, "पहली बार देखने पर हृदय को आघात पहुँचा कि सिक्खों का राजा इस प्रकार का है? सांवला रंग, चेचक के दाग, मध्यम कद, यह काना पीठ पर ढाल बांध कर घोड़े पर सवार होकर जब लगाम पकड़ता तब वह एक करिश्मा बन जाता। उसका शरीर दिखाई न देता, उसकी बलवान रूह के दर्शन होते। विश्वास ही नहीं होता था कि यह वही व्यक्ति है जिसे अभी देखा था।" लैपल ग्रिफिन अनुसर, "लाहौर, अमृतसर और दिल्ली में जिसे ब्रश चलाना आता था या लकड़ी और पत्थर पर नक्काशी करनी आती थी वह मालामाल हो गया था। उसके चित्रों की बहुत मांग थी। उसके चित्र महलों से लेकर

झोपड़ियों तक पहुँच गए थे। वह व्यक्ति बेशक सुन्दर नहीं, परन्तु प्रत्येक के मन में बस गया है।"

मैकग्रैकर का कथन है, "उसकी मुस्कान मन को आकृष्ट करने वाली है। उसकी सादगी के कारण वातावरण सुखमय रहता और प्रत्येक व्यक्ति निस्संकोच अपनी बात कह देता। जिस किसी विषय पर भी स्वेच्छापूर्वक चर्चा करो, वह तत्काल विषय की तह तक पहुँच जाता, उसके पास शब्दों की कमी नहीं थी, न ही विचारों की कमी थी। युद्ध में प्रस्थान करते समय वह सबसे आगे और वापसी के समय सबसे पीछे होता। उसका समस्त जीवन युद्ध करने में व्यतीत हुआ। आज भी शानदार महलों में रहने की अपेक्षा उसे तम्बू में रहना पसंद है।"

बारक ने लिखा, "उसने अपने हाथों पर खून के दाग नहीं लगने दिए। अत्याचार किए बिना ही इतनी विशाल हुकूमत को कायम करने का उदाहरण कहीं और दुर्लभ है।" 1837 में ऐच.ई.फेन जब लाहौर आया तो उसने टिप्पणी दी, "दयालुता उसके खून की हर बूंद में थी, मेहरबानियों की उसके पास कमी नहीं थी। आश्चर्य होता है कि मौत की सजा खत्म करने के बाद भी वह जंगली स्वभाव के लोगों को सुधारने में सफल हुआ।" जरनैल अवितबिले ने पेशावर में महाराजा की आज्ञा के बिना ही कुछ डाकूओं को फांसी का दण्ड दिया तो महाराजा ने उसके साथ प्रश्नोत्तर करते हुए अपना रोष प्रकट किया। महाराजा ने उसे कहा, "तुम उन्हें बन्दी बना लेते और किसी प्रकार का डर दिखाकर भगा देते। यही बहुत था।" पशु-पक्षियों के कराहने की आवाज़ सुनकर वह व्यथित हो जाता। फ्रांसिसी यात्री जैकमोंट का कथन है, "यदि रणजीत सिंह यह सोच ले कि कुछ दिन पंजाब से बाहर रहना है तब अफगानिस्तान पर विजय प्राप्त करना उसके लिए कोई कठिन कार्य नहीं।

1808 में बंगाल से आये एक अफ़सर का महाराजा रणजीत सिंह के विषय में कथन है, "किले के आस-पास की दीवार अधिक ऊँची नहीं थी। उसे मिलने में कोई कठिनाई पेश नहीं आई। अधिक सुरक्षा तैनात नहीं की गई थी। वह मुझे एक हॉल में ले गया जो सौ फीट लम्बा था और छत पर शीशे लगे हुए थे। उनमें से कुछ टूटे हुए शीशों को देखकर मैंने पूछा कि यह कैसे टूट गए? "उसने बताया, "सिक्खों ने कभी बंदूकों का प्रयोग तो किया नहीं था। जब मिली तो इन शीशों पर निशाना लगा लगाकर देखते। मैंने मना किया। वे लोग तो सभी शीशे तोड़ देते थे।"

उसकी सादगी के सामने हुकूमतों की रौनक, आभा, शान-शौकत सभी फीकी पड़ जातीं। एक अमेरीकी पादरी जान लौरी जब लाहौर आया तो उसने महाराजा को सुझाव दिया कि मुझे अंग्रेजी विद्यालय खोलने की आज्ञा दी जाए। महाराजा की भी इच्छा थी कि उसके और उसके वज़ीरों, जरनैलों के बच्चें अंग्रेजी

शिक्षा ग्रहण करें और अन्य भाषाओं का भी ज्ञान हो। पादरी को कहा गया कि लाहौर के आस-पास का जो भी स्थान उपयुक्त लगता है और जितना चाहिए, सर्वेक्षण कर लो, मिल जाएगा। फिर पादरी ने निर्माण कार्य में आने वाले खर्च की बात की तो वह भी स्वीकार कर लिया गया। पादरी ने कहा कि स्टाफ की नियुक्ति वह इच्छानुसार करेगा और वेतन सरकार द्वारा दिया जाएगा। यह बात भी मान ली गई। महाराजा ने पूछा, इस विद्यालय में अंग्रेजी ही पढाओगे, बाईबल तो नहीं?" पादरी ने कहा, "बाईबल तो जरूरी विषय होगा।" महाराजा ने कहा, "पादरी जी आप मुझे मूर्ख समझते हो?" अंग्रेजी विद्यालय निर्माण की योजना खत्म हो गई। परन्तु फिर भी 5 मार्च 1835 को महाराजा ने जान लौरी को विदा करते समय अनेक उपहार देकर सम्मान सहित वापस भेजा।

कैप्टन वेड ने 1831 में महाराजा की कार्यशैली का निरीक्षण कर इस पर लेखन कार्य किया। उसने बताया कि महाराजा सुबह पाँच बजे उठते और घुड़सवारी करते। नाश्ता अनेक बार घोड़े की काठी पर ही बैठे कर लेते। नौ बजे वापस महल पहुँचते और दैनिक कार्यों मे व्यस्त हो जाते। निर्णय सुनाते, हिसाब-किताब के विषय में पूछते, और आफ़िस को निर्देश जारी करते। दोपहर में एक घंटा विश्राम करते। प्रत्येक समय उसका सचिव उसके आदेश प्राप्ति के लिए उसके साथ रहता। दोपहर बाद वह गुरू ग्रन्थ साहिब जी की कथा सुनते, कीर्तन सुनते और वापस दरबार में आकर शाम तक कार्यों में व्यस्त रहते। रात 9 बजे के आस-पास वह सोने के लिए जाते। परन्तु उसके यह नित्य नियम निश्चित नहीं थे। सत्य तो यह है कि वह दिन-रात राज्य के प्रति कर्त्तव्य पालन के लिए तैयार रहते थे। अनेक बार तो देर रात को सोते समय यदि उसके मन में कोई विचार आ जाता तो वह अपने सचिव या राजा ध्यान सिंह को उसी समय आदेश देते कि सूर्योदय से पहले यह काम समाप्त कर लिया जाए।

चार्लस ग़फ का कहना है, "एशिया के राजाओं से वह इस कारण श्रेष्ठ था कि उसे अपनी सीमाओं और ताकत का पूरा ज्ञान था। शत्रु के साथ वह तब तक नहीं उलझता था जब तक उसे विश्वास नहीं हो जाता था कि जीत उसकी ही होगी। वह तब तक दूसरा कदम नहीं उठाता था जब तक उसे यह विश्वास नहीं हो जाता था कि उसका पहला कदम सही है। इतना शक्तिशाली होने के बावजूद भी उसमें अहंकार नहीं था। वह सतत जागरूक रहता विशेषकर सिक्ख परम्पराओं की तरफ कोई अवज्ञा न हो जाये क्योंकि उसे सिक्खों के स्वभाव और परम्पराओं का ज्ञान था। वह अपनी इच्छा उन पर लागू नहीं करता था क्योंकि उसे पता था कि खालसा केवल गुरू की आज्ञा मानते हैं अन्य किसी की नहीं। कभी-कभी सिक्ख

उसके लिए अपशब्द कह देते परन्तु वह सहन कर लेता। स्वयं पर हुए प्रहार को भी वह अनदेखा कर देता था।

महाराजा ने लारंस को स्वयं के विषय में जो शब्द कहे वह इस प्रकार हैं, "हमदर्दी, अनुशासन और नीतियों द्वारा मैंने अपनी सरकार को स्थिर किया। जहाँ कहीं भी मुझे बहादुरी, विवेक, बौद्धिक योग्यता दिखाई दी मैंने उनको उच्चता पर पहुँचाया और स्वयं कभी किसी विपत्ति में पीछे नहीं हटा। सबके साथ मिलकर युद्ध किया और उनके समान ही थका। मैदान और दरबार में मैंने पक्षपात वाली दृष्टि नहीं रखी और निजी सुखों की तरफ कम ध्यान दिया। गुरू अकाल की मुझ पर कृपा रही और इस सेवक पर इतनी अनुकम्पा की कि मेरे राज्य की सीमाएं चीन और अफगानिस्तान को छूती हैं।"

27 जून 1839 को 59 वर्ष की आयु में वह संसार से विदा हो गया।

सहायक पुस्तक सूची

महाराजा रणजीत सिंह के विषय में रचित साहित्य की कमी नहीं है। उसके समकालीन से लेकर वर्तमान के इतिहासकारों ने बहुत परिश्रम से उसके विषय में दस्तावेज़ तैयार किए। उसके विषय में लिखित समस्त साहित्य का विवरण न तो सम्भव है, न आवश्यकता है। केवल महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैः

मोहम्मद लतीफ, हिस्टरी ऑफ दी पंजाब (अनु.) लैपल ग्रिफिन, रणजीत सिंह/ज्ञानी ज्ञान सिंह, तवारीख गुरू खालसा/सोहन लाल सूरी, उमादात-उत्तवारीख /खुशवकत राय, तवारीखि सिक्खां/जी.सी. सम्थि, ऐ हिस्टरी ऑफ दी रीनिंग फैमिली ऑफ लाहौर/अलाउदीन मुफती, इबरतनामा/ गणेशदास बडेहरा, चहार बाग़ि पंजाब/ बूटेशाह, तारीख पंजाब/जेमज़ ब्राऊन, हिस्टरी ऑफ दी ओरिजन ऐंड प्रोग्रैस ऑफ द' सिक्खस/अमरनाथ, ज़फरनामा ए रणजीत सिंह/ फोरसटर, ए जरनी फ्राम बंगाल टू इंग्लैंड/चालर्स गफ, दि सिक्खस ऐंड दि सिक्ख वारज़/बारन हिऊगल, ट्रैवलर्ज़ इन कश्मीर ऐंड पंजाब/फकीर वहीदुदीन, दि रीयल रणजीत सिंह/डब्लयू.जी. औसबौरन, दी कोर्ट ऐंड कैंप ऑफ रणजीत सिंह।

रूस का चर्चित साधु रासपुतिन

रासपुतिन के विषय में मैंने कॉलेज के दिनों में सुना था, जिस किसी समाचार पत्र या पत्रिका में उसके विषय में कुछ भी छपता, उसे पढ़ता। उसके विषय में बहुत बुरा लिखा गया कि वह शराबी था, स्त्रियों में उसकी आसक्ति थी और ज़ारिना के साथ वह मोहब्बत करता था। उसका जो चित्र कम्यूनिस्ट सोवियत स्टेट की तरफ से प्रस्तुत किया गया था, वह सही नहीं था। अब, अलैकस डी. जांज द्वारा लिखित अंग्रेजी की पुस्तक 'ग्रेगरी रासपुतिन का जीवन और समय' जिसमें उसका चित्र भी है, कालिनज़ ने गलासगो से प्रकाशित की है। सवा चार सौ पृष्ठों की इस पुस्तक के 22 अध्याय हैं और इसमें 500 विवरणों द्वारा अपने विचारों को पुष्ट किया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन के बाद रासपुतिन के नैन-नक्श बदल जाते हैं।

साइबेरिया की ओर जहाँ केवल बर्फ और खण्डहर ही खण्डहर हैं, 1864 को एक गरीब किसान के घर इसका जन्म हुआ। लोग दूर के सफर के लिए घोड़ा गाड़ियों का प्रयोग करते थे, दिन-रात चलते रहते। एक बार कई दिनों तक कहीं कोई आबादी दिखाई नहीं दी तो रात को एक यात्री कोचवान से कहने लगा- वह उधर दीये जल रहे हैं, उस आबादी की तरफ चलें? कोचवान ने घबरा कर कहा- उस तरफ इशारा मत करो, दीये नहीं, बाघ की आँखें चमक रही हैं।

एक बड़ी बहन थी जिसका नाम मारिया था और आयु में दो वर्ष बड़ा भाई दमित्रि था। मारिया की मृत्यु छोटी उम्र में हो गई और भाई की मौत नदी में डूबने से हुई। जब वह छोटा था माँ का देहान्त हो गया। इन सभी दुःखों को न भूलने के कारण रासपुतिन ने अपनी पुत्री का नाम मारिया और पुत्र का नाम दमित्रि रखा। जब वह छोटा था तो अकसर कहा करता था, "मुझे चोर द्वारा उठाई गई, छिपायी जा रही वस्तु दिखाई दे जाती है। साथी हँसने लगते। ग्यारह वर्ष की आयु में जब वह बुखार के कारण बेसुध हो बिस्तर पर पड़ा था, छह सात पड़ोसी पिता के साथ बैठे आग सेक रहे थे। एक ने कहा- मेरा घोड़ा चोरी हो गया उसका कुछ पता नहीं

चलता। बीमार रासपुतिन ने बैठे हुए व्यक्तियों में से एक की तरफ अंगुली से इशारा करते हुए कहा- तुम्हारा घोड़ा इसने चुराया है। जिस की तरफ इशारा किया गया वह व्यक्ति क्रोधित हो उठा तो पिता ने माफी मांगते हुए कहा कि बीमार होने के कारण इसका दिमागी संतुलन ठीक नहीं है, इसका बुरा मत मानना। सभी व्यक्ति चले गए। घोड़े का मालिक अन्य कुछ व्यक्तियों सहित संदिग्ध व्यक्ति के घर के आस-पास रात को पहरा देने लगा। आधी रात को चोर घोड़ा अपने अस्तबल से निकाल कर किसी अन्य सुरक्षित स्थान पर ले जाने लगा तो पकड़ा गया। उसे बहुत पीटा गया और घोड़ा वापस लाया गया। रासपुतिन कहा करता था- मेरा भी चोरी करने को मन करता है परन्तु मुझे इस बात का भय सताता है कि जिस प्रकार चोर और चोरी की वस्तुएँ मुझे दिखाई देती हैं उसी प्रकार मैं भी दूसरों को चोरी करता दिखाई दूंगा।

उसकी पुत्री मारिया ने उसके बारे में तीन पुस्तकों की रचना की जिनमें उसने बताया कि वह छोटी उम्र में ही भविष्यवाणी किया करता था, वह कुछ ऐसी ध्वनियाँ निकालता था कि भयभीत और उत्तेजित जानवर शांत हो जाते थे। एलैकस इस तथ्य पर इस आधार पर संदेह व्यक्त करता है कि 16 दिसम्बर 1916 को जब उसे घर से बुलाकर उसका वध किया गया, तब उसे क्यों पता नहीं चला? आगे चलकर हमें पता चलेगा कि उसे अपनी मृत्यु का पता था। फिर वह हत्यारे के घर क्यों गया? ये रहस्य अनसुलझे हैं।

1917 में कम्यूनिस्ट इंकलाब के आने पर रासपुतिन के विषय में जांच कमीशन का गठन हुआ। उसमें गवाहों के बयान के आधार पर उसे एक चालाक बदमाश सिद्ध किया गया।* जांच कमीशन की रिपोर्ट संदेहयुक्त है क्योंकि उसमें तो वही सिद्ध करना था जो स्टेट की इच्छा थी। सरकार से भयभीत व्यक्ति रासपुतिन के पक्ष में कैसे बोल सकते थे? इस कारण इस पुस्तक के नायक की शख्सीयत का आधार न तो उसकी पुत्री के लेखन को बनाया है न कमीशन की रिपोर्ट को। प्रमाण उसके पक्ष में थे, न कि सरकार के पक्ष में।

अपनी पसंद की लड़की से विवाह करवाया, बच्चे हुए परन्तु परिवार को छोड़कर साइबेरिया के खण्डहरों में एकांत की खोज में निकल गया और कई वर्षों तक वापस नहीं आया। जब वह घर वापस आया तो परिवार के सदस्य उसे पहचान न सके। वह तम्बाकू और शराब का सेवन छोड़ चुका था। उसने बताया कि वह

* एक गीत जोड़ा गया :
रासपुतीन रासपुतीन
लवर ऑफ द रशीयन कुईन।।

वर्षो बंदगी करता रहा। बातें करते समय वह पूरा वाक्य नहीं बोलता था, अनेक बार तो समझ में नहीं आता था कि वह क्या कह रहा है। चमकती आँखों, अंगुलियों को शीघ्रता से दाढ़ी में घुमाता हुआ वह कुछ न कुछ कहता रहता जो निरर्थक होता। बड़ा जागीरदार मिखाईलोविच कहा करता था- कोई व्यक्ति नहीं मिला जो कह सके कि वह रासपुतिन को जान गया है।

इलीयाडोर ने 1907 में रासपुतिन के कथनों को अपने लेखन में प्रस्तुत किया है। एक स्थान पर रासपुतिन कहता है, "मुझ पर प्राण घातक हमले हुए। परमात्मा ने बचा लिया। कई बार बाघों ने आक्रमण किए, कुछ नहीं हुआ। दरियाओं के तट पर चलना अच्छा लगता क्योंकि यहाँ परमात्मा का निवास है। प्रकृति अच्छी शिक्षिका है क्योंकि बसंत ऋतु के विषय में वृक्ष से अधिक कौन जान सकता है।"

गाँव वासियों को जब वह कहता था कि बादशाह और महारानी मेरे घर आयेंगे तो लोग कहते इसका दिमाग ठीक नहीं है। एक समय आया जब इस अशिक्षित किसान ने ज़ार और ज़ारिना से बातें करते हुए 'तू' शब्द का प्रयोग किया। शिक्षित और खानदानी व्यक्तियों की तरह सभ्यक शब्दों का प्रयोग उसे करना नहीं आया फिर भी वह दिल से ज़ार ज़ारिना का सम्मान करता था।

ज़ार प्रबन्धकीय मामलों में कठोर था परन्तु ज़ारिना के विषय में पोबेद का कथन है, "वह पीटर महान की अपेक्षा अधिक तानाशाह और ईवान से अधिक खतरनाक स्त्री थी।"

रासपुतिन के बारे में यह प्रसिद्ध हो चुका था कि वह रोगियों का उपचार करता था। तीन पुत्रियों के बाद ज़ार निकोलस के घर पुत्र ने जन्म लिया जिसमें खानदानी दोष था कि उसके घाव से रक्त बहेगा तो रूकेगा नहीं। उच्च शाही खानदान पूर्वजों तक जांच पड़ताल करने के बाद ही रिश्ता तय करते थे कि कहीं किसी को वंशीय रोग तो नहीं। इस पक्ष से ज़ार पराजित हो गया। ज़ारिना के जर्मन खानदान में कहीं यह रोग पाया गया। विश्व भर के डॉक्टरों से उपचार करवाया गया परन्तु यह रोग दूर न हो सका। ज़ारिना को किसी ने रासपुतिन के विषय में बताया। अपना वंश कायम रखने के लिए महारानी क्या नहीं कर सकती थी। उसने इस साधु को महल में बुलवाया।

पहली बार उसने महल को भीतर से देखा तो हैरान हो गया। सारी उम्र उसने एक किसान जैसे आम कपड़े पहने थे जिनसे उच्च कुल के लोग नफ़रत करते थे। छुरी कांटे का प्रयोग करना नहीं आया, भोजन करते समय नैपकिन का प्रयोग करे, सम्भव नहीं था। उच्च वंश के लोग नाक पर कपड़ा रख लेते क्योंकि जिस घटिया साबुन से धुले कपड़े वह पहन कर आता था उसके कास्टिक की दुर्गन्ध दूर

तक जाती थी। परन्तु शाही अतिथि के विषय में कुछ कहने का साहस किसी में नहीं था। वह महल में जाने के कारण धुले वस्त्र पहनता था वरना तो मैले वस्त्र पहनकर ही घूमता रहता था। ज़ार ने कुछ बातें की, साधु ने आम उत्तर दिए। ज़ारिना ने प्रार्थना की- महात्मा मेरे शहज़ादे का खून बहता ही रहता है रूकता नहीं। आप कृपा करो। साधु ने कहा- डॉक्टरों को बाहर भेजो। वह बच्चे को हाथ न लगाये। डॉक्टर बाहर चले गए। केवल महल का चीफ सर्जन अन्दर रह गया। जिस घाव से खून बह रहा था उस पर ज़ोर से पट्टी बांधी हुई थी ताकि खून का बहना रूक सके। रासपुतिन भीतर गया। पहले घाव पर थूका, फिर बच्चे के सिर पर हाथ फेरा। सोया हुआ बच्चा जाग गया और साधु की तरफ देखकर मुस्कराने लगा। ऐसा ऊटपटांग व्यक्ति पहली बार देखा था। रासपुतिन ने धीरे-धीरे पट्टी खोली, घाव पर हाथ फेरा, रक्त बहना रूक गया। हँस कर कहने लगा- तुम ठीक हो गए हो राजकुमार। सुखी रहो।

ज़ार और ज़ारिना ने कुछ दिन महल में रहने की प्रार्थना की। उसे और क्या चाहिए था। तीनों राजकुमारियाँ और राजकुमार सारा दिन उससे कहानियाँ सुनते। हज़ारों मील का सफर अनेक वर्षों तक करता रहा था, उसके पास सच्ची बातें इतनी थीं कि उसे परियों की कहानियों की जरूरत नहीं थी। बच्चे उससे अलग होने के लिए तैयार नहीं थे। परन्तु साधु ने एक दिन कहा- अब मैं जाऊँगा। बहुत कीमती उपहार देकर उसे भेजा गया।

लापरवाह साधु से जब कोई कहता कि तुम बहुत गलतियाँ करते हो तब वह उत्तर देता- पश्चात्ताप धर्म है। जो गलतियाँ नहीं करते वह पश्चात्ताप नहीं करते, वह धार्मिक नहीं हो सकते। ईश्वर की रज़ा में रहो। कहीं कुछ भी गलत नहीं है। यदि गलत लगे, तो क्षमा मांगो।

महल में उसके प्रवेश सम्बन्धी आपत्ति व्यक्त की गई। खानदानी लोगों को लगा जैसे महल अपमानित हो गया हो । उच्च वंशीय लोग गुस्सा करते जब वह कहता कि मैं साधु हूँ। वैसे उसकी जिन कमज़ोरियों का वर्णन किया जाता, उन्हें गंभीर नहीं माना जाता। जरनैल देदीलिन ने खुफिया विभाग को रासपुतिन की पृष्ठभूमि और वर्तमान सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के आदेश दिए। रिपोर्टे अच्छी नहीं थीं। प्रधान मन्त्री स्टालीपिन ने पुनः जांच करवाई। रिपोर्ट में आया कि इसका महल में आना-जाना उचित नहीं। प्रधान मन्त्री ने राजधानी में उसके प्रवेश पर निषेध लगा दिया। प्रधान मन्त्री ने बादशाह को रासपुतिन के विषय में बताया तो उसने हँस कर कहा- अच्छा, अब हम उसे यहाँ नहीं आने देंगे। परन्तु यह मौखिक बातचीत थी। राजधानी में रासपुतिन को देखते ही बंदी बना लेना था। एक दिन वह राजधानी

जाने वाली रेलगाड़ी में चढ़ गया तो खुफिया पुलिस के हाव-भाव को समझ गया। उसने चलती गाड़ी से छलांग लगा दी, दौड़ कर कार में बैठ गया और मिलीतसा जागीरदारनी के महल के भीतर चला गया। आठ पहर तक पुलिस ने महल को घेरे रखा। पुलिस वहाँ से तब हटी जब गवर्नर का आदेश मिला कि रासपुतिन राज्य का मेहमान है। पुलिस अध्यक्ष ने जब प्रधान मन्त्री को यह बात बताई तो वह हँसने लगा। बात खत्म।

ईसाई साधु इलिआडोर रूस के चर्च का शक्तिशाली नेता, विद्वान और अच्छा वक्ता था। उसके उपासकों की संख्या लाखों में थी जिस कारण वह राज्य की आलोचना करने में भी संकोच नहीं करता था। ज़ार को उसकी हरकतें अच्छी नहीं लगीं तो उसने दण्ड रूप में उसका स्थानान्तरण साइबेरिया के चर्च में कर दिया। साइबेरिया को यहाँ के काले-पानी के दण्ड जैसा समझा जाता था। रासपुतिन उसके सामने कुछ भी नहीं था। इलिआडोर रासपुतिन को अच्छा व्यक्ति नहीं मानता था। एक दिन दोनों का एक स्थान पर मिलाप हुआ। रासपुतिन ने इलिआडोर को बाहों में जकड़ लिया। गवर्नस ऐना ने रासपुतिन के सामने घुटनों पर बैठ उसके हाथों को चूमा। ज़ारिना भी उसे सम्मान पूर्वक मिली। यह बताने के लिए कि मैं क्या हूँ- रासपुतिन इलिआडोर की तरफ देखकर मुस्कराया और ज़ार को कहा, “इनका स्थानान्तरण वापस राजधानी में करना है महाराज।” बादशाह निकोलस ने कहा, “परन्तु स्थानान्तरण के इस आदेश पर तो हमने स्वयं हस्ताक्षर किए हैं?” रासपुतिन ने कहा- पहला आदेश जिस के आधार पर आपने इलिआडोर को कुत्तों के आगे डाल दिया था, उस पर बायीं ओर से दायीं तरफ कलम चलाई थी, अब दायीं से बायीं ओर चला दो। काम ऐसे करो हजूर जैसे बादशाह किया करते हैं।” इलिआडोर के स्थानान्तरण का आदेश खारिज हो गया। ज़ार के सुरक्षा चीफ, करलोव ने प्रधान मन्त्री से कहा, “यह व्यक्ति सीधा नहीं। यह जानता है कि क्या करना है। यह अपना लोहा मनवाकर रहेगा।

महारानी ने रासपुतिन से कहा, “मेरी बेटियां आपकी बेटियों से मिलना चाहती हैं। उनको चाय पर बुला लें?” रासपुतिन ने सहमति जताई। बड़ी राजकुमारी ने साधु की बेटी को फोन करके निमंत्रण दिया। ग्रामीण लड़कियों ने हैरान होकर महल देखा। जिस फर्नीचर पर वह बैठीं थी ऐसा उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। महारानी दोनों राजकुमारियों को उनसे मिलाने के लिए इस प्रकार लेकर आई जैसे एक ही परिवार के सदस्य हों। मारिया ने महारानी से केवल एक ही प्रश्न पूछाहज़ारों नौकरों का आप क्या करते हो महारानी जी? महारानी हँसने लगी। रासपुतिन की दोनों बेटियों को सहमा हुआ देखकर महारानी ने उन्हें गले लगा लिया।

फिर तो चारों लड़कियाँ निश्चिन्त होकर आपस में बातचीत करने लगीं। यदि ग्रामीण लड़कियों ने कभी राजकुमारियों को नहीं देखा था तो राजकुमारियों ने ऐसी ग्रामीण लड़कियों को कभी नहीं देखा था। रासपुतिन की बड़ी बेटी ने जब पिता के विषय में पुस्तक की रचना की, तो इन पलों का वर्णन स्मरणीय भी है, सूक्ष्म भी।

महल में शाही बच्चों की संभाल करने के लिए तुचेवा नामक गवर्नस ने ज़ार को एक दिन कहा- रासपुतिन सही व्यक्ति नहीं है महाराज। राजकुमारियों के साथ वह जिस ढंग से बातें करता है वह महल की परम्परा अनुसार उचित नहीं। ज़ार ने कहा- तुम भी चुगली करने वालों में शामिल हो गई हो। विपत्ति के समय में उसकी प्रार्थनाओं ने हमारी रक्षा की। धन्यवादी हूँ मैं उसका। यह कहते हुए महाराजा ने गवर्नस को महल से सेवामुक्त कर दिया।

रासपुतिन समझ गया कि उसके विरोधी बढ़ रहे हैं। संकट मिटाने के लिए उसने घोषणा की कि वह तीर्थ यात्रा पर जा रहा है। उसने राजधानी छोड़ दी। दूर देशों की यात्रा करना उसका शौक था। कुछ वर्षों बाद राजधानी वापस आ गया।

ज़ार और ज़ारिना ने एक विशाल समारोह में सम्मिलित होने के लिए कीव शहर में जाना था। जिस बाज़ार से इस शाही जोड़े ने गुज़रना था उनके स्वागत के लिए खड़े लोगों की पंक्ति में रासपुतिन भी खड़ा हो गया। महारानी ने जब रासपुतिन को देखा तो प्रसन्नता पूर्वक हाथ हिलाया। शाही गाड़ी के पीछे आने वाली गाड़ी में प्रधान मन्त्री स्तालीपिन को आता देख रासपुतिन का रंग पीला पड़ गया और वह ज़ोर ज़ोर से चिल्लाया- "तुम्हारे पीछे मौत आ रही है पीटर स्तालीपिन... मौत! तुम्हें दिखाई नहीं दे रही? वह देखो।"

उस रात रासपुतिन करवटें बदलता रहा। बार-बार कहता रहा, "भयानक दुर्घटना होगी... मैंने मौत देखी है... परन्तु मैं कुछ कर नहीं सकता।"

उसी रात कीव में आतंकवादी बोगरोव ने स्तालीपिन की गोली मारकर हत्या कर दी। बोगरोव पर पहले से ही हत्या का केस दर्ज था, फिर उसे कीव में आने का सरकारी निमंत्रण कैसे मिल गया, इस प्रश्न से स्पष्ट था कि यह कोई बड़े षड्यन्त्र का परिणाम है। रासपुतिन ज़ार ज़ारिना के पास शोक प्रकट करने गया और कहा- अब आगे की सोचो महाराज। जो होना था हो गया। उसके स्थान पर अब कोकोसोव ठीक रहेगा।

अपने मित्र सेबलर को उसने रूसी चर्च का प्रधान नियुक्त करवाया और साथ ही कैबनिट में चर्च -प्रबन्ध मन्त्री की पदवी भी दिलवाई।

शाही खानदान शिकार करने के लिए जंगल की तरफ गया। वहाँ राजकुमार अलैकसी एक दुर्घटना में घायल हो गया। बहुत समय से रूका हुआ खून

फिर से बहने लगा... वही पुराना रोग। पहले तो राजकुमार बहुत देर दर्द के कारण ज़ोर से चीखता रहा, परन्तु जब थक गया तो धीरे-धीरे आहें भरते हुए रोता रहा। उसे पता लग गया था कि मृत्यु समीप आ गई है। माँ को पूछा- मरने के बाद दर्द खत्म हो जाता है रानी माँ? मेरी कब्र पर एक छोटा पत्थर अपने हाथों से रखना माँ। रात के अंधेरे में मुझे मत दफनाना। दिन में, नीले आकाश के नीचे दफनाना।" माँ को पता चल गया कि आठ वर्ष का राजकुमार जीवन के अंतिम सत्य को समझ गया है। फैदोरोव और रॉक्स दो सर्जनों को राजधानी से बुलाया गया। बच्चे की जाँच के बाद दोनों ने सिर हिलाते हुए कहा- अब इसमें क्या रह गया है? फैदोरोव ने पट्टी खोलने से इन्कार करते हुए कहा- जब मुझे पता है कि खून बहना नहीं रूकेगा, अपने हाथों से राजकुमार को मौत क्यों दूं? जितने सांसें लिखी हैं लेने दो। शाहज़ादे की मृत्यु उपरान्त जो न्यूज़ बुलेटिन निकालना है, स्टाफ और डॉक्टर उसकी तैयारी करने लगे। अंतिम समय की धार्मिक रस्में प्रारम्भ हो गईं। अचानक महारानी ने ऐना को कहा- रासपुतिन दूर- अपने गाँव में है। उसे तो यह समाचार दो कि राजकुमार जा रहा है। ऐना ने तार भेज दी। रासपुतिन की बेटी मारिया अपनी पुस्तक में लिखती है - पिता जी रोटी खा रहे थे। जब तार मिला, भोजन छोड़कर उसी समय बंदगी करने लगे। देर तक प्रार्थना करने के कारण उनका रंग फीका पड़ गया और सारा शरीर पसीने से भीग गया। वह तेज़ कदमों से डाकखाने गया और यह तार भेजी, "राजकुमार की स्थिति गंभीर नहीं है। डॉक्टरों से कहो उसे थकने न दे। कुछ समय बाद फिर से तार भेजी, "परमात्मा ने मेरी अरदास सुन ली है महारानी। अलैकसी ठीक है।"

राजकुमार की दशा सुधरने लगी, अगले दिन सुबह डॉक्टरों ने कहा- अब यह खतरे से बाहर है। निर्णय हुआ कि अब इसे महल में लेकर जाया जाये। पश्चिमी रेलवे अधिकारी हसकिथ ने सभी रेलवे कर्मचारियों को सावधान रहने का आदेश देते हुए कहा कि ध्यान रहे रास्तें में कहीं झटका न लगे। रास्तें में एक बार भी गाड़ी को ब्रेक नहीं लगाए गए।

दूर बैठा रासपुतिन टेलीफोन द्वारा ही अपने रोगियों का उपचार कर देता था, ऐसी अफवाहें पहले से ही उड़ रही थीं परन्तु इन श्रद्धालुओं को गप्पी कहा जाता था। शहज़ादे की तत्कालीन घटना के गवाह तो किसी भी तरह रासपुतिन के हक में नहीं थे। महल के भीतर और बाहर के लोगों ने डॉक्टरों से इस घटना के विषय में पूछा, डॉक्टर उत्तर देते- पता नहीं। मौत वापस चली गई।

रासपुतिन के पास बैठने वाली संगत अधिकतर निर्धन किसानों, मज़दूरों या मज़बूर लोगों की होती। कोई वज़ीर आता, धनी व्यक्ति आता तो उनके दिए पैसों

को यह साधु आस-पास बैठे लोगों में बांट देता। सारे पैसे नहीं बांटता था न ही सारे अपने पास रखता था। कोई धनी यदि खाली हाथ आ जाता तो कह देता- पैसे लेकर आया करो। दान करना चाहिए। दोस्तोवास्की और टॉलस्टाय का विश्वास था कि रूस को मुक्ति अशिक्षित और ग्रामीण व्यक्तियों से मिलेगी। रासपुतिन का आस-पड़ोस इन साहित्य-कर्मियों के रंगमंच के समान था।

वह युद्ध का विरोधी था। वर्ष 1913 में दक्षिणी सलाव और तुर्कों के मध्य बलकान में युद्ध हुआ। रूसी देशभक्तों ने कहा- हमें अपने ईसाई धर्म के लोगों की सहायता करनी चाहिए। रासपुतिन ने इसका विरोध किया। समाचार पत्र के लिए दिए गए साक्षात्कार में उसने ये शब्द कहे, "तुर्क और सलाव यदि एक दूसरे को खाते हैं तो खाएं। यदि वह अंधे हो गए हैं तो मरेंगे ही। मैं अपने बच्चों को क्यों मरने दूं। समाचार पत्र में पढकर उसे संतोष नहीं हुआ। वह ज़ार से मिलने गया, उसके सामने घुटनों पर बैठकर प्रार्थना की कि दूर बैठकर तमाशा देखना है तो देखो। मेरा देश इसमें शामिल नहीं होगा। ज़ार के परामर्शदाता कह रहे थे कि इन दोनों देशों को पराजित कर बलकान से लेकर कुसतुनतुनीआ तक रूस का झंडा लहराएगा। उसके कहने पर ज़ार युद्ध से पीछे हट गया।

रासपुतिन ज़ार से अकसर कहता कि संसद का सम्मान करो। ज़ार उत्तर देता- वहाँ गधे बैठे हैं उनका क्या सम्मान करूँ? ज़ार ने उसे सरकारी पत्र देते हुए कहा स्वयं जाकर संसद की कार्यवाही का निरीक्षण करो। वह सजधज कर भीतर जाकर बैठ गया। संसद का प्रधान रोजांको, रासपुतिन से नफ़रत करता था। उसे देख कर वह क्रोधित हो उठा और पास जाकर कहा- भले व्यक्तियों की तरह बाहर जाओगे या मैं बाहर निकालूं? रासपुतिन ने राज्य का निमंत्रण पत्र जेब में से निकाल कर दिखाया तो प्रधान और भी भड़क गया- चुपचाप यहाँ से चले जाओ वरना सुरक्षा अधिकारियों को कहकर उठवा दूंगा। रासपुतिन उठा, यह कहते हुए धीरे-धीरे चला गया, ऐसे पापी को क्षमा करना मालिक। क्रोधित दृष्टि से प्रधान की ओर देखते हुए वह बाहर चला गया। वह चाहता तो ज़ार के पास शिकायत कर सकता था, क्योंकि यह तो महल का अपमान था, परन्तु उसने पत्रकारों के सामने यह कहकर बात बदल दी- मुश्किल से तो निर्धनों की आवाज़ महल तक पहुँचने लगी है, हमने बड़ों के आपसी मामलों से क्या लेना? संसद जाने या बादशाह जाने।

इलिआडोर, जिसकी बादशाह से उलट हस्ताक्षर करवाकर साइबेरिया की कैद से रक्षा की थी, उसका शत्रु बन गया। उसके विरोधी उसका वध करने की योजनाएं बनाने लगे। जिन स्त्रियों के विषय में सुना गया था कि रासपुतिन ने उनके साथ बदसलूकी की है, उनको उसे फंसाने के लिए इस्तेमाल करने की कोशिश की

गई क्योंकि सबसे आसान रास्ता यही था। कोई भी स्त्री तैयार नहीं हुई। एक वेश्या को मनाया गया। जिस रास्ते से रासपुतिन ने गुज़रना था उस रास्तें में भिखारिन के कपड़े पहनकर कर खड़ी हो गई, समीप आया तो पैसे के लिए हाथ फैलाया, जब पैसे निकालने के लिए रासपुतिन ने जेब में हाथ डाला तो उस वेश्या ने शीघ्रता से उसके पेट में चाकू मार दिया। चाकू छाती की पसलियों तक पहुँच गया। वह दोबारा चाकू मारने लगी तो घायल होते हुए भी रासपुतिन ने उसे परे धकेल दिया। वह भाग गई और रासपुतिन नीचे गिर गया।

डॉक्टर वलादीमीर, तिऊमन शहर में था। रोगी तक पहुँचने में उसे छह घंटे का समय लगा। साधु ने डॉक्टर से कहा- एनेसथीसीआ नहीं लगाना। इसी प्रकार ऑप्रेशन करना। उसी प्रकार ऑप्रेशन किया गया। ऑप्रेशन के समय वह बेहोश हो गया जिस कारण कोई मुश्किल पेश नहीं आई। परन्तु डॉक्टर ने देखा घाव बहुत गहरा था। उसने तत्काल ही अस्पताल ले जाने का आदेश दिया। रास्ता उबड़-खाबड़ और लम्बा था। कोई भी डॉक्टर इस स्थिति में इतने लम्बे सफ़र के बारे में न सोचता। परन्तु वह सही सलामत पहुँच गए। समय तो लगा, किन्तु रासपुतिन ठीक हो गया। जान बचाने के पुरस्कार के रूप में महारानी ने डॉक्टर को सोने की घड़ी दी।

उसके दो पत्रों का विवरण देना यहाँ तर्क संगत है। उसकी लिखावट अस्पष्ट थी, व्याकरण का ज्ञान नहीं था शब्दयुग्म से इतना अनभिज्ञ था कि "रूस" नहीं लिखना आता था, कहीं-कहीं पता न चलता कह क्या रहा है। प्रस्तुत है प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व ज़ार को लिखा गया पत्र जिसमें वह युद्ध से बचने के लिए लिखता है :

प्यारे पिता

रूस ऊपर ज़ालम अंधेरी झूल रही है। दुःख, संकट, अंधेरा। रोशनी के बिना सब कुछ। अनगिनत आँसुओं का समुद्र। लहू ही लहू। जितने तुम्हारे आस-पास वफादार मित्र हैं सब तुम्हें युद्ध में कूदने की सलाह दे रहे हैं। उन्हें तबाही का पता नहीं। मुझे दिखाई दे रही है। परमात्मा जब इन्सानों से नाराज़ होता है तो बुद्धि छीन लेता है। अंत की शुरूआत हो गई है। आप ज़ार हो, प्रजा के पिता। पागलों की बात मत सुनो। तुम्हारी और देश की तबाही निश्चित है। मान लो जर्मनी को परास्त कर दोगे। तो भी मैं कहता हूँ खून में नहाना उचित नहीं होता।

-ग्रैगरी

ज़ार ने युद्ध की घोषणा कर दी। रासपुतिन ने बहुत कोशिश कि एक बार ज़ार से महल में मिलकर उससे बात करे। महल से उसका सम्बन्ध तोड़ दिया गया।

अंतिम समय तक वह कहा करता था- मिल सकता तो मैं ज़ार को रोक देता। अब क्या करूँ? मेरी और ज़ार की किस्मत एक धागे से बांधी गई है।

अकेला रासपुतिन नहीं बल्कि उसके जैसे कई लोग थे जो युद्ध का विरोध कर रहे थे। महारानी जर्मन थी, सरगेई विटी, जर्मन का हितैषी था, यह सभी जर्मनी के विरूद्ध की गई युद्ध घोषणा का विरोध कर रहे थे। सरगेई का कथन है, " यह व्यक्ति किस सीमा तक दानिश्वर है, आपको पता नहीं। रूस की रूह, हृदय और दिशा के विषय में उससे अधिक किसी को ज्ञान नहीं। कोई दिव्य दृष्टि है उसके पास। ज्ञान की तीसरी आँख।"

रासपुतिन ने ज़ार को लिखा- बुरा हुआ या भला, कुछ पता नहीं। मैंने अपनी किस्मत को महलों से स्वयं जोड़ा। मेरी तबाही के बाद महल और महल की तबाही के बाद मैं नहीं रह सकूंगा। अब जब आपने मेरी सलाह के विपरीत युद्ध शुरू कर दिया है तो मेरे पास जीत का आशीर्वाद देने के अतिरिक्त क्या है? मैंने आपसे कहा था कि मैंने अपनी सारी बंदगी राजकुमार का जीवन बचाने के के लिए लगा दी है। मैंने शाही खून बहने से रोक दिया। महाराज आपने मेरे बच्चों का देसी खून बहाने का फैसला कैसे कर लिया?

'अगस्त 1914' उपन्यास के अंत में नोबेल पुरस्कार विजेता उपन्यासकार सोलज़ेनितसिन लिखता है, "रूस पर पागलों का शासन होगा। दूसरा कोई रास्ता नहीं बचा।"

2 जनवरी 1915 को गवर्नस ऐना गाड़ी में जा रही थी तो दुर्घटना हो गई। रेडीएटर से टकरा कर दोनों टांगे टूट गई थीं, अस्पताल ले जाने में बहुत समय लगा। वह बेहोश हो गई। बेहोशी में वह रासपुतिन का नाम लेकर कह रही थी- मेरे लिए दुआ करो बाबा। मुझे बचाओ। अगले दिन रासपुतिन उसे मिलने गया। बिना कुछ बताए, पूछे भीतर चला गया। ज़ार ज़ारिना और डॉक्टर वहाँ बैठे थे। बेहोश ऐना के बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। रासपुतिन उसके पास गया, हाथ पकड़ कर कहा, "जागो ऐनी। देखो कौन आया है।" ऐना ने आँखें खोली- "आप आ गए? धन्यवाद मेरे परमात्मा।" रासपुतिन ने ज़ारिना से कहा- बच गई है। टांगे कमज़ोर रहेंगी। यह कहकर वह दूसरे कमरे में गया और बेहोश होकर गिर गया। उसका सारा शरीर पसीने से भीग गया। कई दिनों के बाद जब ऐना की बात हुई तो उसने कहा- लाशों के ढेर से मैं ऐना को पहचान कर उठा लाया। अब कोई चिंता नहीं।

सरकार पर उसका कितना प्रभाव था, इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह बात सत्य है कि जो भी वज़ीर उसका अपमान करता, उसे सेवामुक्त कर दिया जाता। महल के भीतर दो दल थे, एक उसके पक्ष में था दूसरा

उसके विरोध में। दोनों ही दल ज़ार के प्रति वफादार थे परन्तु एक-दूसरे के पक्के विरोधी। युद्ध मन्त्री पोलीवलोव ने रासपुतिन से सरकारी गाड़ी वापस ली तो उसे मन्त्रालय से निकाल दिया गया। एक मित्र ने इस निर्वासित वज़ीर से कहा, "सुना है तुम्हें इस कारण निकाला गया कि तुम जर्मनी से मिल गए हो। मन्त्री ने हँसते हुए कहा,"मूर्ख हो सकता हूँ, गद्दार नहीं।"

सज़ा भुगत रहे असंख्य व्यक्तियों की रहम की प्रार्थना ज़ार के पास पहुँचती, इतनी प्रार्थनाओं को पढ़ना सम्भव नहीं था। लोग रासपुतिन के पास आते। वह प्रत्येक के प्रार्थना पत्र पर रहम करने की सिफारिश लिख देता। किसी को कभी मना नहीं किया। कुछ मित्रों ने समझाया भी- इनमें से कई वास्तव में दण्ड के भागी हैं, अपराधी हैं। आप हरेक की सिफारिश क्यों करते हो?" उसने कहा- "मुझमें इतनी क्षमता है कि जिसे चाहूँ सज़ा दिलवा सकता हूँ। किसी को भी दण्ड देने के लिए जिस दिन मैंने सिफारिश की, मेरे हाथ काट दिए जायेंगे उस दिन। कौन निर्दोष दिखाई देता है यहाँ? परमात्मा ने क्षमता दी है तो क्षमा ही दिलवाऊँगा। जो भी चाहे आ जाए।" उसके हस्ताक्षर करने से कागज़ करंसी बन जाता।

वह कभी परवाह नहीं करता था कि उसकी सिफारिशों का क्या हो रहा है। कहता- "अब ज़ार जाने या उसका काम। मैं अपना काम करूँगा, ज़ार अपना काम करे। नेक काम करेगा तो सुख मिलेगा।"

वह जर्मन के खिलाफ युद्ध का विरोधी था, उसके शत्रुओं ने उसके विरोध में अफवाहें फैलानी शुरू कर दीं कि वह जर्मनों का ऐंजट है, जर्मनों की रक्षा कर रहा है, रूस को पराजित करा रहा है। रानी भी जर्मन होने के कारण रूसी सेना को मरवा रही है। ऐसे दोष महारानी जिंदा पर लगे थे। दोष लगाने वालों और उसको सत्य मानने वाले पागलों को शायद यह नहीं पता कि कोई भी माँ अपने बेटे का ताज किसी अन्य के सिर पर रखा हुआ नहीं देख सकती।

कुम्मिसरोव, पुलिस द्वारा नियुक्त किया गया उसका अंगरक्षक था। एक बार रासपुतिन मित्रों के साथ बैठा धर्म के विषय में बातें कर रहा था तो कुम्मिसरोव ऊँची आवाज़ में बोला- "बंद करो ये रूहानी बातें और पवित्र कथा। शराब पीओ और अक्ल की बातें करो। रासपुतिन हँसने लगा। जैसा वह स्वयं वैसे ही व्यक्ति पसंद करता। सभी ने जाम छलकाए। चाकू लगने की घटना के बाद वह शराब पीने लगा जिसे कि कई वर्षों से छुआ तक नहीं था।

एक दिन ज़ारकी सेलो स्टेशन पर रेलगाड़ी में बैठे-बैठे उसने बहुत शराब पी ली और कहने लगा- जब तक गाड़ी रूकी है, जरा घूम आऊँ? उसके लड़खड़ाते कदमों को देखकर कुम्मिसरोव ने कहा- ज्यादा पीकर लोगों के बीच घूमना उचित

नहीं। यदि महारानी तक यह समाचार पहुँच गया तो? उसने महारानी को ऐसे ऐसे शब्दों में गालियाँ दीं जिन शब्दों को कुम्मिसरोव ने कभी नहीं सुना था। उसके रौंगटे खड़े हो गए, झिंझोड़ कर कहने लगा- यदि फिर से मेरे सामने ऐसे गालियां दी तो मैं गोली मार दूंगा। सैमुअल का कथन है, “गोगोल की कलम के लिए 1916 में ऐसे अनेक विचित्र पात्र मौजूद थे।”

ज़ार कहीं दूर प्रदेशों में युद्ध के लिए जाता तो ज़ारिना पत्रों में उसे लिखती, “परमात्मा ने कृपा करते हुए हमें दो मित्र दिए। एक फिलिप दूसरा रासपुतिन। रासपुतिन की बातों को ध्यानपूर्वक सुनना अनिवार्य है तो उसका व्यावहारिक प्रयोग उससे भी अधिक जरूरी है। जब कभी भी उसके कथन के विरूद्ध काम किया तो विपत्ति ही देखी। उसके द्वारा की गई प्रार्थना एवं सलाह दोनों की हमें जरूरत है।”

पीत्रोग्राद के अस्पताल और आबादी वाले क्षेत्रों में ज़ार स्वयं जाकर लोगों का हाल-चाल पूछा करता था। काम अधिक होने के कारण उसका आना जाना कम हो गया। मन्त्रियों ने रासपुतिन से कहा- यह ज़ार की गलती है, परन्तु हमारी बात नहीं सुनता। रासपुतिन ने महारानी से बात की। ज़ार फिर से लोगों से मिलने के लिए जाने लगा।

सेना का दफ्तर दूर था। ज़ार ने निर्णय किया कि राजकुमार उसके साथ जायेगा। महारानी ऐसा नहीं चाहती थी। उसने रासपुतिन से कहा, बादशाह को समझाओ कि राजकुमार का महलों में रहना ही सही है। कहना मानना तो दूर, ज़ार रासपुतिन से नाराज़ हो गया। रानी और साधु खामोश हो गए। बादशाह राजकुमार सहित गाड़ी में बैठ दफ्तर जाने के लिए निकल गया। रास्ते में ब्रेक लगने के कारण राजकुमार का माथा खिड़की से टकरा गया और नकसीर बहने लगी जो रुक नहीं रही थी। सर्जन ने वापस चलने के लिए कहा। गाड़ी को रोका गया और वापस चलने का आदेश दिया। जितना धीरे धीरे हो सकता था गाड़ी को महल तक पहुँचाया गया। महल में आते ही रासपुतिन को फोन कर महल में बुलाया गया। जीवन में पहली बार उसने ज़ार की आज्ञा मानने से इंकार कर दिया। फोन पर कुछ हिदायतें दे दी गईं। परन्तु खून का बहाव रुका नहीं। अगले दिन वह बहुत समय बीतने पर महल में गया। राजकुमार के नाक और मुँह पर हाथ रखा। खून का बहना रुक गया। तभी यह चर्चा होने लगी कि रासपुतिन प्रभाव डालने के लिए खुद ही खून बहाता है खुद ही रोक देता है। स्थान-स्थान पर उसके विषय में चर्चा होने लगी, होटलों के मालिकों ने बोर्ड पर यह आदेश लिख कर कमरो में लटका दिए“यहाँ हम रासपुतिन की बातें नहीं करते।”

पत्रों में वह ज़ार को पिता और ज़ारिना को माता लिखा करता था। उसका मानना था कि राजा-रानी प्रजा के माता-पिता होते हैं। रूस में फ्रांस के राजदूत मारिस ने 26 अप्रैल 1916 को अपनी डायरी में रासपुतिन द्वारा कथित शब्दों का वर्णन किया है : पता है तुम्हें मैं दुःखदायी मौत मरूँगा? परन्तु क्या करें, परमात्मा ने मुझे धरती पर भेजा ही इसलिए है कि मैं रूस और बादशाह के लिए बलिदान दूं। पापी होने के बावजूद मैं छोटा ईसा मसीह हूँ।

सेंट पीटर और सेंटपाल के किले के समीप से गुज़रते हुए उसने कहा- यहाँ कष्ट देकर मारे जाते हुए लोग मुझे दिखाई दे रहे हैं। एक दो नहीं। भीड़ ही भीड़। लाशों के बादल उड़ रहे हैं जिनमें धनी भी हैं, वज़ीर भी, अनेक जागीरदार। नेवा खून से लाल हो जाएगा।

महल के दरबान ने रासपुतिन द्वारा कहे हुए इस वाक्य को रिकार्ड किया- "खलबली होगी। हम सब फांसी पर लटकेंगे। कौन किस स्तम्भ पर लटका दिखाई देगा, इससे क्या फर्क पड़ता है?"

दूर देशों में यात्रा पर गया हुआ वह रास्ते में कभी-कभी महारानी को पत्र लिख देता। एक पत्र में लिखा- कुल्हाड़ी तो दिखाई दे रही है कौन सी है, परन्तु जिसके हाथ में पकड़ी हुई है वह चेहरा नहीं दिखाई दे रहा... विशाल वृक्ष काट दिया जाएगा।" वह कहता था- मेरी और ज़ार की किस्मत एक है।

ज़ार के सम्बन्धियों में से एक जागीरदार यूसोपोव (ज़ार का भतीजा) में प्राचीन यूनानियों जैसे आदर्श थे। उसे प्रतीत हुआ कि विश्व युद्ध जीतने के लिए रासपुतिन को मारना जरूरी है, इसके लिए बेशक स्वयं को फांसी चढ़ना पड़े। उसे लगा कि ऐसा करने से रूस बच जायेगा। उसने पहले उसको मिलने की योजना बनाई। बहुत समय बाद रासपुतिन को देखा था, रेश्मी वस्त्र पहनने लगा था और सुखदायक वातावरण के कारण चेहरा भी सख्त नहीं रहा था। उसे वह साधु, फकीर, हकीम आदि जैसा व्यक्ति नहीं लगा। अनुभव हुआ कि इसके भीतर ताकत का पर्वत है परन्तु बुद्धि की कमी के कारण इसका उचित प्रयोग नहीं कर सका। ताकत ही ताकत, जिम्मेदारी कोई नहीं।

बार-बार आता रहा तो रासपुतिन ने उसको पूछा- कोई तकलीफ़ है? यूसोपोव ने कहा- हाँ। साधु ने उसे लेटने के लिए कहा। यूसोपोव का स्वयं का कथन है :

वह मुझ पर झुका। बिजली की एक गर्म लहर मेरे भीतर दाखिल होने लगी। मैं सुन्न होने लगा और शरीर जड़ हो गया। बोलना चाहा परन्तु आवाज़ नहीं निकली, धीरे-धीरे नशा होने लगा। मैं बेहोश हो गया। मुझे रासपुतिन की चमकती

दो आँखें दिखाई दे रही थीं, उन आँखों में से नीचे की तरफ किरणें निकल रही थीं जो घेरे का रूप धारण कर मेरे शरीर में से निकल कर वापस जा रही थीं।

यूसोपोव, संसद के सदस्य और न्यायाधीश मकलाकोव के घर गया। दोनों के राजनीतिक और सामाजिक रास्ते अलग थे। परन्तु जागीरदार के बेटे को घर आया देख वह बहुत प्रसन्न हुआ। ज़ार के विषय में बात करते हुए मेहमान ने कहा- ज़ार विरूद्ध की गई आपकी आलोचना का मैं प्रशंसक हूँ। मेज़बान ने कहा- ज़ार तो भला व्यक्ति है। सरकार रासपुतिन चला रहा है। यदि ताकत प्राप्त करनी है तो रासपुतिन को खरीद लो या मार दो। यूसोपोव ने कहा- बिकता नहीं वह। मार देना उचित है। मेज़बान ने कहा- मारने से क्या लाभ होगा? यह मरेगा तो इसका स्थान दूसरा कोई ले लेगा। मेहमान ने कहा- नहीं, यह बात नहीं। रासपुतिन जैसा कोई नहीं है। मारना ठीक है। मेज़बान को नहीं पता था कि मेहमान हत्या करने के लिए इतना गम्भीर है। उसने कहा-

> तुम उसकी रूहानी शक्ति को मानने से इंकार कर रहे हो यूसोपोव। ऐसे विषयों के बारे में मुझे तुमसे अधिक ज्ञान है। मुझ पर विश्वास करो। रासपुतिन के पास जो शक्ति है वह शताब्दियों बाद किसी में दिखाई देती है। उसको मार दिया तो पन्द्रह दिन के भीतर ही महारानी पागलखाने में पहुँच जायेगी और घायल बादशाह संवैधानिक तौर पर तानाशाह बन जाएगा।

मकलाकोव संसद में विरोधी दल का नेता था और चतुर सियासतदान। यूसोपोव यह नहीं समझ सका कि राजनीति की बनावट कितनी उलझी हुई है। मेज़बान ने कहा- अच्छा यदि तुम्हें यही मार्ग उचित लगता है तो मार दो। मेहमान ने कहा- मैं शाही खानदान से हूँ। महल द्वारा सम्मानित व्यक्ति का मेरे हाथों हुआ कत्ल प्रत्यक्ष रूप से कम्यूनिस्ट इंकलाब का आह्वान होगा। आपका कामरेड आतंकवादियों से सम्पर्क अवश्य होगा। यह कार्य आप किसी कामरेड से करवाओ।

मेज़बान हँसने लगा, कहा- राजकुमार संसद में विरोधी दल का नेता होना अलग बात है कामरेड अलग वस्तु। यदि मैं ज़ार की नीतियों का विरोधी हूँ तो इसका अर्थ यह नहीं कि मैं महल के विरूद्ध हूँ कामरेडों के पक्ष में हूँ। मैं साम्प्रदायिकता का कट्टर विरोधी हूँ और कामरेडों के साथ मेरे सम्पर्क का कोई प्रश्न हीं नहीं उठता। कामरेडों का बस चले तो वे सारी संसद को ही भस्म कर दें।

यूसोपोव किसी अन्य की तलाश में निकल पड़ा। पोरिशक, संसद का सदस्य, दायें दल में था, अर्थात् सरकार की तरफ। महल के प्रति उसमें अगाध श्रद्धा थी कि उसके विषय में यह टिप्पणी प्रचलित हो गई थी-पोरिशक इतना दायीं तरफ

चलता है कि दायीं तरफ दीवार आ जाए तो रूकता है नहीं और भी दायें चला जाय। रासपुतिन के कारण वह बहुत नाराज़ हो गया था। उसने संसद के सामने कड़ा भाषण देते हुए कहा- देश युद्ध ग्रस्त है। हम सब आपस में जैसे भी रहें परन्तु सभी की इच्छा युद्ध में जीतना है। हमारे सैनिक लगातार मर रहे हैं। सीमा पर तब विजय होगी जब पीछे बचा हुआ देश सही होगा। यहाँ रासपुतिन सरकार चला रहा है। दिखाऊँ आपको वह चिट्ठियां और पत्र जो वह वज़ीरों और जरनैलों को अपना काम करने के लिए लिखता है? जो वज़ीर उसका कहना नहीं मानता उसे घर भेज दिया जाता है। चलो हम सभी ज़ार के पास जाकर कहें इस भूत को निकाल और रूस को बचाओ। संसद को बचाओ। संसद के दायें दल, बायें दल, मध्य दल सभी ने तालियों की गूंज करते हुए एक ही वाक्य कहा- शाबाश पुरिशके! शाबाश!

इस भाषण के समय यूसोपोव 19 नवम्बर 1916 को संसद भवन में बैठा था। उसके मन में भी यही बात थी। उसने अपनी माँ को लिखा-

> हम उस स्थान पर बैठें है जहाँ सबको पता है कि ज्वालामुखी फूटेगा। कंवर ने पुरिशके के साथ हत्या की बात की तो उसने तुरंत हाँ कर दी। एक युवा अफ़सर सुखातिन और डॉक्टर लज़ोवर भी इस योजना में शामिल कर लिए गए।

1 दिसम्बर को हुई मीटिंग में निर्णय लिया गया कि जागीरदार के सबसे बड़े महल में रासपुतिन को बुलाया जाये। उसे कहेंगे कि जागीरदार की पत्नी आइरिना अस्वस्थ रहती है। उसका उपचार करना है। फिर शराब में साइनाईड मिलाकर पिला देंगे। यदि शराब पीने से मना किया तो साइनाईड वाले बिस्कुट खाने को देंगे। उस दिन आइरिना दूर दूसरे महल में रहेगी। दो सप्ताह बाद की तिथि अर्थात् 16 दिसम्बर का दिन निश्चित किया गया।

इधर रासपुतिन अपने प्रशंसकों और महारानी को बता रहा था कि वह इस वर्ष की क्रिसमिस नहीं देख सकेगा। ज़ार सरहद से एक सप्ताह की छुट्टी लेकर महल में आया हुआ था। रासपुतिन को बुलाकर उससे आशीर्वाद मांगा। आशीर्वाद की अपेक्षा साधु ने कहा- आज तो तुम मुझे आशीर्वाद दो बादशाह। यह कहकर उसने आखिरी बार ज़ार का हाथ चूमा।

परिवार के सदस्य बताते हैं कि दिसम्बर के पहले सप्ताह में वह उदास रहने लगा। अपनी सचिव सीमानो को कहा- शीघ्रता से काम समाप्त करो। 13 दिसम्बर को उसने जमा पूंजी को अपनी पुत्री मारिया के नाम कर दिया और अन्य बचे कागज़ों को जला दिया। इससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसे अपनी होनी का पता था परन्तु यदि यह बात थी तो उसने यूसोपोव के निमंत्रण को स्वीकार क्यों

किया? जो दूसरों को जीवनदान देता है, वह स्वयं मरने के लिए क्यों गया? उसके प्रशंसकों के पास इस बात का कोई उत्तर नहीं था। उसका हस्त लिखित पत्र यहाँ प्रस्तुत है :

प्रिय खतरा सिर के ऊपर चक्कर काट रहा है। मुसीबत आएगी भारी। ईसा की दयालु माँ का चेहरा काला पड़ गया है। रूह रात की खामोशी में समा गई है। आसमान क्रोधित है और उपचारहीन। लिखा है- होशियार खबरदार। न घड़ी का पता न पल का। भय के कारण खून जम गया है। इतना अंधेरा कि हाथ को हाथ दिखाई नहीं देता। मैं महान शहादत का जाम पीऊँगा। अपने कातिलों को क्षमा कर प्रभु के चरणों में स्थान ग्रहण करूँगा। बड़े मर जायेंगे, छोटों को भुगतना होगा। अनगिनत मरेंगे। भाई के हाथों भाई का कत्ल होगा। धरती कांपेगी, भूख, अकाल, दुनिया देखेगी। खुशहाली फिर कभी बहुत समय बाद लौटकर आएगी।

12 दिसम्बर ज़ारकी सेलो महल में उसने महारानी के साथ आखिरी बार भोजन किया। ज़ारिना को कहा- बादशाह से कहना ठीक रहे। हौंसला रखे। उसने अपने परिवार के सदस्यों से पूछा- मेरे बिना काम चला लोगे न? दूसरे शहर में जा रहे अपने बेटे से कहा- यदि इस बार क्रिसमिस देख ली तो फिर कुछ नहीं होगा। परन्तु मेरी रूह दर्द में है। पल भर भी विश्राम नहीं।

रासपुतिन ने यूसोपोव का प्यारा नाम- 'छोटू' रखा था। उससे वह देसी जिप्सी गीत सुनता था और सुनकर कहता- खानाबदोशों को लेकर आना अगली बार। उनकी जुबां से सुनेंगे। यूसोपोव ने उसको फोन करके कहा- "मेरी पत्नी, ठीक नहीं रहती है। उसके लिए प्रार्थना करने के लिए 16 दिसम्बर को आप महल में आना।" साधु ने कहा- ले जाओगे तो चलूँगा। 15 दिसम्बर को डॉक्टर ने उस कार का प्रत्येक पक्ष से निरीक्षण कर "सेहत सेवाएँ" लिखवाया जिसमें अगले दिन जाना था। इसी कार में साधु की लाश को दरिया में बहाना था।

16 दिसम्बर की सुबह बहुत ठण्ड थी, कोहरा ही कोहरा था। रासपुतिन शीघ्रता से उठा, जल्दी जल्दी नहाया। फिर चर्च में माथा टेकने गया। 11 बजे प्रतिदिन की तरह संगत दर्शन शुरू हुआ। एक स्त्री अंदर आई और जिस तरफ स्त्रियाँ बैठी थीं वहाँ जाकर बैठ गई। वह चेतन साहित्यकार, पत्रकार और देशभक्त स्त्री थी जिसको लगता था कि साधु देश को हानि पहुँचा रहा है। वह स्त्री डेरावाद के विरूद्ध थी। साधु उठा और उस तरफ चला गया। स्त्रियाँ खड़ी हो गईं, कुछ उसके हाथों को चूमने लगी, कुछ उसके चोले को चूमने लगीं। उसने सभी को पीछे किया और उसी वक्त आई महिला को पास जाकर देखने लगा। वह बताती है- उसकी

आँखों में क्या था पता नही, मैं उस पर से नज़रे हटा नहीं सकी, उसने स्वयं ही दूसरी तरफ मुख किया तो मैंने पूछाआपको पता है कि आप देश को कितनी हानि पहुँचा रहे हो? क्या आपको रूस के इतिहास का बोध है, क्या, आप ज़ार से प्रेम करते हो? उसने उत्तर दिया- सच मानो, मैंने इतिहास नहीं पढ़ा। मैं सीधा-सादा अशिक्षित साधु हूँ। अज्ञानी। केवल पढ़ सकता हूँ। लिखने की स्थिति यह है कि मैं स्वयं का लिखा हुआ नहीं पढ़ सकता। एक किसान होने के कारण, मैं ज़ार को दिल से प्रेम करता हूँ। मुझे पता है कि मुझसे उसके और उसके परिवार को हानि पहुँची है परन्तु मैं कसम खाता उठाता हूँ, छोटी माँ, कि मेरा इरादा हानि पहुँचाना नहीं था... छोटी माँ, मेरा अंत समीप है। मुझे मारेंगे, मेरी मृत्यु के तीन महीने बाद ताज भी नही बचेगा। तुम आई, अच्छा हुआ। मैं जान गया, तुमने दिल से मेरी बात सुनी है। तुमसे मिलना अच्छा भी लगा, भय भी हुआ।

यह सुनकर उस महिला ने निस्संकोच पूछा- आपके शिष्य आपको पवित्र संत क्यों मानते हैं? पिता कहकर क्यों बुलाते हैं?

उसने स्पष्ट उत्तर दिया- यह बैठे हैं तुम्हारे सामने। इनसे पूछो। मुझसे क्या पूछना? यदि इनको मुझमें ऐसी खूबियां दिखाई दे रही हैं जो मुझमें नहीं हैं, तो मैं कोई मूर्ख हूँ कि इनको अपना सम्मान करने से मना करूँ? जाने लगी तो रासपुतिन ने कहा- मुझे तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए आज। मेरी रूह पर बहुत बड़ा भार है।

दोपहर के समय वह थक गया। कहीं से अनजान फोन आया, कहा कि आपका कत्ल करने की योजना है। फोन का अधिक असर न हुआ। शराब पीनी शुरू कर दी। इतनी ज्यादा पी ली कि एक फोन और आया परन्तु उससे उठाया न गया। फिर वह शाम तक सोया रहा।

शाम को गवर्नस रूबोवा और मूना आईं और बहुत ही सुन्दर मूर्ति दिखाई जो महारानी ने रासपुतिन को उपहार स्वरूप भेजी थी। इसके पीछे, महारानी, राजकुमार और राजकुमारियों के हस्ताक्षर थे।

उसने रूबोवा और मूना को बताया कि देर रात को उसे यूसोपोव ने बुलाया है। इरीना का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। लड़कियाँ गुस्से से बोलीं- रात को क्यों बुलाया है उसने? दिन में बुलाने से बदनामी होती है? रात को नहीं जाना वहाँ। रासपुतिन ने कहा- ठीक है ठीक है। नहीं जाऊँगा।

रात होने लगी, स्नान करके नए रेशमी वस्त्र पहने। नये जूते पहने। कढ़ाई की हुई रेशमी कमीज़ पहनी, कमर पर कमरबंद लपेटा। नौकरानी इवानोवा को कहा- छोटू की तरफ जा रहा हूँ। अच्छा?

इस दिन सुबह ही यूसोपोव भी चर्च में माथा टेकने गया था क्योंकि उसे पवित्र कर्तव्य निभाना था। फिर वह कमरे का निरीक्षण करने गया जहाँ रासपुतिन को मारना था। रात होने पर साधु को महल के पिछले दरवाज़े से भीतर लेकर आएगा ताकि कोई देख न ले। महल के एक कोने में ऊँची आवाज़ में ग्रामोफोन चल रहा होगा, बतायेंगे कि पार्टी हो रही है, इरीना उधर है खाने-पीने के बाद ही उसे मिलायेंगे। रात के ग्यारह बजे बैठक के अन्य सदस्य भी पहुँच गए। डॉक्टर ने दस्ताने पहनकर क्रीम के बिस्कुटों और केक पर साइनाईड छिड़क दिया। फिर दूसरे कमरे में चले गए। शराब पीने वाले गिलासों में साइनाईड डाला गया। यह भी ध्यान रखा गया कि यदि अधिक समय तक ऐसे ही रखा रहे तो ज़हर उड़ जाता है। उस समय छिड़का जब रासपुतिन को देना था। यूसोपोव ने कहा- इतने से ज़हर से मर जाएगा वह? डॉक्टर हँसने लगा- एक बार नहीं, दस बार मरेगा इससे।

जागीरदार रासपुतिन के घर पहुँचा, घण्टी बजाई, रासपुतिन ने कहा- अकेले ही हो छोटू, ऊपर आ जाओ, बच्चे सो गए हैं। नौकरानी जाग रही है। नौकरानी ने ये बातें सुनी और दोनों को बाहर जाते हुए देखा। महल में पहुँच गए। दोनों एक गर्म कमरे में बैठे। कंवर साथ के कमरे में से बिस्कुटों की प्लेट लेकर आया। रासपुतिन ने खाने से मना कर दिया। फिर केक दिया गया तो साधु ने यह कहकर मना कर दिया- मेरी बेटी ने कहा है ज्यादा मीठा नहीं खाना। कंवर हठ करने लगा- केवल एक। बस एक। उसने एक बिस्कुट और एक पीस केक खा लिया। बातें करने लगे। कंवर देखता रहा। ज़हर का असर नहीं हो रहा था। कंवर घबरा गया। फिर ज़हर वाला गिलास उठा लाया और शराब पीने के लिए कहा। "विस्की नहीं पीनी", रासपुतिन ने कहा। अच्छा वाईन (फलों की शराब) लेकर आता हूँ। गिलास भरकर साइनाईड मिलाकर वाईन लाई गई। उसने सारी पी ली। बातें करता रहा। कोई असर नहीं।

उसकी मौत का यह पक्ष सर्वाधिक चर्चा में रहा कि उसके ऊपर साइनाईड का असर क्यों नहीं हुआ। कातिल कोई बच्चे नहीं हैं, डॉक्टर भी उनमें शामिल था। फिर कुदरत के विरूद्ध यह घटना क्यों? कातिल यह नहीं चाहते कि उनके इरादों का उसे पता चले। घबराहट के कारण जागीरदार लगातार बातें भी नहीं कर सकता था। दो बार सीढ़ियाँ चढ़कर यह बताने गया कि जहर का कोई असर नहीं हो रहा। बदरूहें उसकी सहायता कर रही हैं, यह सोचकर डॉक्टर बेहोश हो गया।

गिटार की ओर उसकी दृष्टि गई तो रासपुतिन ने कहा- छोटू, गिटार तो बजाओ जरा। गिटार तो बजाई परन्तु उस समय कौन सा सुर निकलता? टूं टां की तो मगर पर सब बेकार। मौत आस-पास कहीं भी नहीं। यदि आज नहीं तो कभी

नहीं। जागीरदार दूसरे कमरे में से बंदूक उठा लाया। रासपुतिन कुर्सी से उठकर घूमने लगा, फिर जागीरदार से कहा- जिप्सियों के गीत सुनने चलें? उसने कहा- नहीं, अब बहुत समय हो गया है। अब नहीं। कमरे में एक बहुत सुन्दर क्रॉस था। साधु, क्रॉस के समीप गया और अपना हाथ ऊपर नीचे, दायें बायें घुमा कर सलाम करने ही लगा था कि कंवर ने कहा- तुम्हारा अंत आ गया। रिवालवर अपनी तरफ किए देखकर मेज़बान की तरफ मेहमान ने गुस्से से नहीं देखा। शांत रहा। कंवर उसके पीछे की तरफ चला गया और पीछे से गोली मार दी। साधु, नीचे बिछी हुई रीछ की खाल पर गिर गया।

गोली की आवाज़ सुनकर दूसरे लोग भी नीचे आ गए। खाल पर ज्यादा खून न लग जाए इसलिए लाश को वहाँ से उठा लिया। सुबह तीन बजे का समय था। एक की डयूटी खून में भीगे कपड़ों को आग में जलाने की थी। बाकी लोग उसे नदी में फेंकेगे। सभी को हौसला हो गया कि उन्हें एक पापी से मुक्ति मिली।

सभी को बाहर लॉन में छोड़कर कंवर एक बार फिर से कमरे में गया। वह अपने शिकार को दोबारा देखना चाहता था। वह बताता है- "मैं झुका, नब्ज़ देखी, रूक गई थी। मुझे इतना क्रोध आया कि मैंने उसका शरीर झिंझोड़ दिया। मैं डर गया जब मैंने देखा कि उसने पहले बांयी, फिर दांयी आँख खोली। अचानक रासपुतिन कंवर के पैरों की तरफ लपका और उसे नीचे गिराकर इस प्रकार पकड़ा जैसे उसका गला दबा रहा हो। मुँह में से झाग और खून निकलता रहा और वह बार-बार मेरा नाम लेता रहा।"

बहुत मुश्किल से खुद को छुड़ाकर अन्य साथियों के पास गया। कंधे पर से कमीज़ फट गई। साथियों को बताया कि अभी जीवित है। वह बात कर ही रहा था कि भारी कदमों की आहट सुनाई दी, दरवाज़ा खुला। रासपुतिन आंगन की तरफ चला आ रहा था और ऊँचे स्वर में कह रहा था- तेरी करतूत के बारे में महारानी को बताऊँगा। जागीरदार पुरिशके अच्छा निशाना लगाने का दावा किया करता था परन्तु अब की बार दो निशाने चूक गए। तीसरा उसकी पीठ में लगा। वह रूक गया। बीस कदमों का फासला था। पुरिशके ने चौथी गोली मारी तो वह गिर गया। पुरिशके ने सिर के बायीं तरफ जूते से ठोकर मारी। इस बार काम खत्म।

उसकी लाश को नदी में फेंक दिया गया। गलती से एक जूता उतर गया और नदी के पुल पर गिर गया, जो कातिलों को दिखाई नहीं दिया। जूते को पहचान पुलिस ने गोताखोरों को बुलाकर लाश को बाहर निकाला। महल में गोलियों की आवाज़ सुनकर निगरानी कर रहा सिपाही आया और यूसोपोव से पूछा- क्या बात है? कंवर ने कहा- कुछ नहीं। निशाने लगा रहे हैं। सिपाही चला गया और कप्तान

को बताया। कप्तान आया। यूसोपोव उसको एक तरफ ले गया और कहा- तुम ज़ार के वफादार हो न? कप्तान ने हाँ कहा तो उसने कहा- रासपुतिन वाला काम खत्म कर दिया। किसी को बताना मत। उसने कहा- ठीक। वापस आकर उसने पुलिस अध्यक्ष को बताया। पुलिस ने महारानी को। समाचार सुनते ही ज़ार सैनिक मुख्यालय से वापस आ गया।

कई अफवाहें उड़ीं, ऐसी भी, कि क्रोधित यूसोपोव ने उस बदमाश साधु का लिंग काट दिया जो अब तक पेरिस, फार्मलीन में संभाल कर रखा हुआ है, उसकी कीमती अंगुठी उतारने के लिए उसकी अंगुली काट दी गई जो कवि यैवतूशंकू के पास है। ये सब गप्पें हैं। पोस्टमार्टम की रिपोर्ट अनुसार सभी अंग सही सलामत थे। शरीर में भारी मात्रा में ज़हर की पुष्टि हुई है, परन्तु इतने समय तक कैसे जीवित रहा, डॉक्टरों के पास इसका कोई उत्तर नहीं, दिलचस्प बात यह है कि नदी में फेंके जाने तक वह जीवित था क्योंकि फेफड़ों में पानी पाया गया। ज़हर से नहीं वह डूबने से मरा था।

ग्रामीण लोग उसकी मौत से शोकाकुल हो गए। ऐसा भी सुना गया, "एक ग्रामीण, महल में चला गया अमीरों से यह सहन नहीं हुआ। उच्च खानदानी लोगों ने मिलकर एक गरीब साधु को मार दिया।" अनेक व्यक्तियों ने उसे शहीद तक कह दिया। "वह गरीबों की सज़ा माफ करवा देता था इसी कारण धनी लोगों ने उसे मार दिया ...।"

खानदानी लोगों ने ज़ार पर रहम करने के लिए कहा तो उसने कहा- रासपुतिन को जीवित रहने का हक कैसे नहीं था? चाहे जागीरदार है, राजकुमार है या किसान, कातिल कातिल है। कत्ल में शामिल व्यक्तियों से कोई सहानुभूति नहीं की जाएगी। परन्तु किसी को सन्देह न हो कि ज़ार उतावलेपन में दण्ड देकर अन्याय कर रहा है, उसने धैर्य पूर्वक जाँच करने के लिए कहा।

22 दिसम्बर को राजधानी के चर्च में उसे दफनाया गया। लाश पहुँचने से पहले महाराजा, महारानी, राजकुमार, राजकुमारियाँ और रिश्तेदार भी पहुँच गए थे। पुलिस-गाड़ी में से ताबूत उतारा जिस पर क्रॉस लगा हुआ था, उसे देख महारानी का रंग पीला हो गया, चीखें मारने लगी। फिर उसने कब्र में रखने के लिए कोई वस्तु उठाई, उस पर महारानी, राजकुमार और राजकुमारियों ने हस्ताक्षर किए। बादशाह खामोश खड़ा रहा और महल में पहुँचकर शाही रजिस्टर जिस पर दैनिक गतिविधियों को लिखा जाता था, उस पर अपने हाथों से यह शब्द लिखें :

आठ बजे परिवार चर्च में गया। हमेशा याद रहने वाले ग्रैगरी के शव वाला ताबूत उतारा गया। 16 दिसम्बर की रात को दरिंदों ने यूसोपोव के महल में उसका कत्ल किया। दफन कर आये हैं उसे।

ज़ार निकोलस. 22.12.1916

मरने से एक पूर्व मास रासपुतिन ने महारानी को पत्र लिखा था : लिखतुम् पोक्रोवसकी गांव का ग्रैगरी रासपुतिन। रूसी लोगों को, पिता (ज़ार) को, रूस की माता को बतानी है मैंने यह बात। यदि मेरे ग्रामीण भाइयों ने मुझे मार दिया फिर महल, बच्चे और रूस सलामत रहेंगे। हे रूस के मालिक, फिर बिल्कुल भी चिंता मत करना। यदि महल के सदस्यों ने मारा तो भाई भाई का गला काटेगा। शाही खानदान में से कोई नहीं बचेगा। जब चर्च का घंटा घोषणा कर दे कि ग्रैगरी नहीं रहा तब तुरंत ही कातिलों का पता लगाना। मौत का पक्का पता है किन्तु कातिल दिखाई नहीं देते। यह पत्र जीवित व्यक्ति का लिखा हुआ नहीं। मेरे लिए दुआ करना। सुखी रहो। ग्रैगरी।

1917 में इंकलाब आ गया। उसकी लाश को कब्र से निकाला गया। रंग काला हो चुका था। महारानी के हस्ताक्षरों वाली सौगात को एक धनी अमेरिकी व्यक्ति ने खरीदा। लाश को प्यानो वाले डिब्बे में बंद कर मिलटरी ट्रक में ले जाकर दूर कहीं जला दिया गया। ठण्डी हो चुकी राख को हवा में उड़ा दिया गया। ग्रामीणों ने इस प्रकार के गीत गाये :

वह पानी में मरा। धरती में दफन हुआ।
आग में जला, फिर हवाओं में मिल गया।

ज़ार और उसके परिवार का कत्ल हो गया। शाही खानदान का अस्तित्व ही मिट गया। नया रूस संसार के नक्शे पर दिखाई दिया। विदेशों में छिपे बैठे रूस के साम्प्रदायिक नेताओं ने यह सोचा भी नहीं था कि ऐसा भी हो सकता है क्योंकि कुछ समय पूर्व 1905 का इंकलाब असफल हो गया था। इंकलाब की पृष्ठभूमि को लेकर अनेक पुस्तकें लिखी गईं परन्तु इस बात को कोई नहीं मानता था कि साधु के कत्ल के कारण रूसी किसानों की सहानुभूति महलों से नहीं रही थी। वर्ष 1916 में उसके द्वारा लिखा गया पत्र हैः- मूर्खों को क्या पता मैं क्या हूँ। जादूगर? हो सकता है। जादूगर को आग में जलाया जाता है। लगाएं मुझे आग। नहीं जानते, मुझे जलायेंगे रूस जलेगा। मुझे दफनायेंगे रूस दफन होगा। मैं और रूस एक हैं।

सत्ता बदल जाने के कारण रासपुतिन के कातिलों को सज़ा न हो सकी। तासकी जैसे प्रबुद्ध नीतिज्ञों ने इस कत्ल की निंदा करते हुए लिखा, "दुष्ट व्यक्तियों

ने बहुत बुरा काम किया है।" हंबरी विलियमज़ का कथन है- रूसी इतिहास पर नजर मारने से पता चलता है कि रासपुतिन के कत्ल को जितना चाहे उचित कहो, इस एक घटना के कारण रोमनोव राज्य डूब गया।" गुंतर ग्रास का कहना है, "स्त्रियाँ उसका सम्मान करती थीं, अफ़सर उसे देख दूर भागते थे।" मेज़र जनरल वाईकोव के अनुसार, "हम सभी महाप्रलय में घिरे हुए हैं।" चकोवासकिया ने लिखा, "बरबादी के लिए लैनिनगार्द सर्वोत्तम स्थान है। शीतल दरिया पर गहरे बादल छाये रहते हैं, सूर्य धमकियां देता हुआ छिपता है। पूरा चांद उदित होता है। काले पानी में पीली चमक दिखाई देती है। यह सब दहला देता है।"

सियासी हिसाब-किताब सदा होते रहेंगे परन्तु नीतिज्ञों ने माना कि यह कत्ल केवल अपराध नहीं, पाप भी था। सिफलिस की मरीज़ वेश्या को पैसे देकर भिखारिन बनाया गया। दान मांगा गया। साधु भिक्षा देने के लिए जेबों में हाथ डाल रहा है और भिखारिन से आशीर्वाद की अपेक्षा चाकू मिल रहा है। जागीरदार यह कहकर साधु को बुला रहा है कि पत्नी को आशीर्वाद देना है, वह बीमार है। वैद्य घर पहुँच गया है। मेज़बान अपने मेहमान को साइनाईड पिला रहा है। गोलियों से बींधा जा रहा है। लाश को ठोकरें मार रहा है। यह उस रोमनोव शाही खानदान के लोगों की करतूत है जिनके बुजुर्ग कहा करते थे, "युद्ध करो। लड़ते समय जोश में नहीं आना। शत्रु को ललकारते हुए सामने से मारो। साजिश न करो।"

मकतूल ने सिद्ध कर दिया कि ज़ार के भतीजे यूसोपोव ने एक किसान को नहीं, अपने सदियों पुराने साम्राज्य को खुद गिराया। रूस का उच्च जागीरदार ऐलेगज़ांदर जो रोमनोव हकूमत का पितामह था, ने कभी पहले घोषणा की थी- "इस पवित्र धरती पर गलती मत करना, क्योंकि यहाँ जाम नहीं, गैलन छलकाए जायेंगे। वोदका के नहीं शैमपेन के। गलती नहीं करनी।"

तासकी

इसहाक डिऊशर रूस के आधुनिक इतिहास का गम्भीर दर्शनवेता है। मूल स्रोतों के आधार पर उसने 1600 पृष्ठों की तीन पुस्तकें लिखीं जिनमें तासकी का जीवन वर्णित है। इसहाक द्वारा 650 पृष्ठों में रचित स्तालिन की जीवनी भी शामिल है। ये सभी स्रोत गम्भीर सामग्री है। इस आलेख के अध्ययन के बाद सम्भव है कि पाठक मूल पुस्तकों के अध्ययन के लिए तैयार हो जाएं। देसी भाषा के लिए Trotsky शब्द का उच्चारण सरल नहीं, लेख लिखने के बाद दो महीने तक यही समस्या बनी रही। एक दिन शाम को डिस्कवरी चैनल पर उसका जीवन दिखाते हुए उसका नाम तासकी बताया गया, ट्राटसकी नहीं। रूसी भाषा में 'ट' की ध्वनि नहीं है।

रूस के बादशाह (ज़ार) की सरकार के विरुद्ध युद्ध करने और विजय प्राप्त करने के लिए अनेक इंकलाबी इसमें शामिल हुए परन्तु जिस प्रकार भाला, योद्धा के हाथ में होते हुए भी उससे आगे ही चलता है, तासकी इस संग्राम का नायक था। साइबेरिया में बंदी बनाया गया था, वहाँ से भाग कर ज़ार के विरूद्ध आन्दोलन शुरू कर दिया। उसके कार्य को प्रोत्साहन मिला। जब 1917 में युद्ध सफल हुआ तो लेनिन ने उसे देश का प्रथम राष्ट्रपति नियुक्त किया। इस उच्च पदवी को उसने लेनिन को सौंपते हुए कहा- मैं दूर तारों से सभ्यताओं का विस्तार और नष्ट होना देखता हूँ। लेनिन लोगों के बहुत नज़दीक है, वह धरती का बाशिंदा है। शासन तो धरती पर ही करना है, इसलिए मैं राष्ट्रपति की उपाधि लैनिन को सौंपकर स्वयं मुक्त होता हूँ।

वह यूरोप की सभी भाषाएँ जानता था और अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति में माहिर था जिस कारण लेनिन ने उसे प्रथम विदेश मन्त्री की पदवी दी जिसे उसने कुछ समय बाद ही छोड़ दिया था। लेनिन के रहने तक तो सभी कुछ ठीक रहा परन्तु लेनिन की मृत्यु के बाद स्तालिन ने तासकी और उसके बच्चों का भी कत्ल करवाया जिनका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। अपने पूरे वंश का विनाश उसने अपनी आँखों से देखा और अंत में स्तालिन के खुफिया विभाग के सदस्य ने मैकसीको में इस नायक की बर्फ तोड़ने वाली कुल्हाड़ी सिर पर मार कर हत्या कर दी।

इसहाक डिऊशर का कथन है- तासकी की जीवन कथा इस प्रकार की है जैसे मिसर के किसी पिरामिड में महान बादशाह का कब्र में रखा शरीर हो, आस-पास कीमती वस्तुएँ रखी हों और यादों को स्वर्ण तख्तियों पर लिखा गया हो परन्तु डाकू इस पिरामिड को लूट लें और कंकाल के अलावा सब कुछ ले जाएं। यात्री यह तो जान जायेंगे कि इसमें कोई बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री थी परन्तु क्या था, कुछ पता नहीं। तासकी कम्यूनिस्ट था इस कारण गैर कम्यूनिस्टों को उसके जीवन और कामों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। स्तालिन के नेतृत्व में रूस की सरकार ने उसका विरोध करते हुए बदनाम किया, यदि उसके किसी हमदर्द ने विरोध में कोई एतराज़ किया तो उसे फायरिंग सकुऐड या साइबेरिया अपने सामने दिखाई दिया। तीन दशकों में स्तालिन ने लाखों की संख्या में स्वतन्त्रता के लिए संघर्षशील कम्यूनिस्टों का कत्ल किया, जो बचे उन्हें कैद कर कारागार में डाल दिया गया।

उससे सम्बन्धित समस्त साहित्य (आरकाईवज़) हारवर्ड यूनिवर्सिटी अमेरिका के हैटिन पुस्तकालय में सुरक्षित है। तासकी के प्रयास स्वरूप रूस से बाहर होने के कारण यह सुरक्षित बची। इसी प्रकार कनफिउशियस के साथ हुआ था। चीन की सरकार ने कनफिउशियस (600 पूर्व ईसा) के लेखन पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। प्रजा को आदेश दिया गया कि जिसके पास भी उसकी रचना है पुलिस स्टेशन में आकर दे दे या आग लगा दी जाये। कनफिउशियस का जो साहित्य आज उपलब्ध है, वही है जो पुलिस स्टेशन में रखा होने के कारण सुरक्षित रह सका। प्राचीन चीन में यही सब हुआ था। आधुनिक रूस ने उसकी याद से जुड़ी किसी वस्तु को नहीं छोड़ा था। कम्यूनिस्ट निज़ाम की समाप्ति के बाद रूसी लोगों की रुचि पुनः तासकी में हुई जिस कारण नवीन तथ्य प्रकट हो रहे हैं। अपराधियों एवं जासूसों के समान स्तालिन का प्रत्येक कार्य गुप्त होता था। वह अपने सम्पर्क में रहने वालों से भी कम ही बात करता था। इसके विपरीत तासकी अजनबी लोगों के समक्ष खुली किताब के समान था। यही कारण है कि तीस वर्ष तक राज्य करने के बाद भी स्तालिन

के विषय में अनेक पक्ष अंधेरे की चादर में लिपटे हुए हैं जबकि तासकी जहाँ कहीं भी रहा, उससे सम्बन्धित व्यक्तियों ने अनेक रहस्यों को प्रकट किया है।

तासकी के विषय में अध्ययन करते हुए मेरे मन में यह ख्याल बार-बार आया कि परमात्मा को मनफी करके महात्मा बुद्ध ने शक्तिशाली धर्म की स्थापना कर जैसे आश्चर्य दिखाया था, उसी प्रकार पदार्थवादी दर्शन को राज्य सिंहासन पर विराजित करने वाला यह नायक सांसारिक अभिलाषाओं के प्रति ऐसे अनासक्त था जैसे कोई तपस्वी साधु। जैसे कोई तीर्थयात्रा पर निकला हो, ऊँचे पर्वत पर पहुँचना है , परन्तु रास्ते का पता नहीं। हज़ारों साथी साथ हैं। कभी दायीं तरफ मुड़ जाते हैं कभी बायीं तरफ। कभी नीचे उतरते है, पुनः उपर चढ़ते हैं, यदि अचानक कोई बर्फ का गोला नीचे आ जाए तो सभी उसके नीचे दब कर मर जायें तो उनमें से बचे हुए पाँच सात व्यक्ति कहेंगे- यह हमारा शत्रु होगा। मरवाने के लिए साथ-साथ लिए घूमता रहा। यदि शिखर पर पहुँच गया - तो फिर ये सभी और इनके साथ संसार भी कहेगा कि तासकी माहिर नायक था और अपने राष्ट्र को शिखर पर अनंत वैभवता के समीप पहुँचा गया। सम्मान एवं अपमान, जीवन और मृत्यु की तरह साथ ही चलते हैं।

ज़ार एलैग्जैंडर द्वितीय (1855-81) के राज्यकाल के समय रूस में उस द्वारा किए गए सुधारों की घोषणा व्यापक हलचल का कारण बनी। उसने जागीरदारों के अधिकारों को कम करते हुए किसानों से कहाआप सब स्वतन्त्र हो, आपसे लगान नहीं लिया जाएगा। किसानों का सोचना था कि शासक वर्ग के कमज़ोर होने से उनको ज़मीन मिल जाएगी परन्तु ऐसा नहीं हुआ। वे ऋण और निर्धनता के भार के नीचे दब कर मरने लगे। उधर जागीरदारों के पास ज़मीन तो रही परन्तु उस पर इतना टैक्स लगा दिया जिसे देना उनके लिए असम्भव था। प्रत्येक वर्ग में व्याकुलता बढ़ने के कारण शासन के लिए खतरा उत्पन्न हो गया। इसी समय में तासकी का जन्म हुआ।

मजूदरों और किसानों को समूहबद्ध करने के लिए आन्दोलन की तलाश में शिक्षित वर्ग शहरों की अपेक्षा गाँवों की तरफ गया। आतंकवादी आक्रमणों की कोई योजना नहीं थी परन्तु धीरे-धीरे परिस्थितियाँ उस तरफ की हो गईं। पुलिस ने एक राजनीतिक नेता का इतना अपमान किया कि वेरा जूलिश नामक स्त्री ने गुस्सें में गोली मारकर पुलिस जरनैल की हत्या कर दी। जूलिश ने पुलिस विरोध में न्यायाधीशों के समक्ष जिन रहस्यों को प्रकट किया, उसे सुनकर अदालत और प्रजा त्राही त्राही करने लगी। अदालत ने उसे मुक्त कर दिया। अदालत से बाहर निकलते ही उसे फिर से बंदी बना लिया गया तो हज़ारों की संख्या में एकत्रित भीड़ उसे छीन ले गई

और वह सुरक्षित भाग गई। इस घटना के बाद ज़ार ने आदेश दिया कि सरकारी अदालतें नहीं, राजनीतिक कैदियों के विरूद्ध फौजी अदालतें मुकद्दमा चलायेंगी। इस निर्णय ने शस्त्रधारी कम्यूनिस्ट आन्दोलन को प्रोत्साहित किया।

तासकी का पिता दाऊद ब्रांसतीन एक अशिक्षित किसान था जो परिश्रम के बल पर एक बड़ा जमींदार बनने का इच्छुक था। माँ ओडीसा शिक्षित यहूदी एवं धार्मिक स्त्री थी, जबकि दाऊद की धार्मिक कार्यों में कोई विशेष रुचि नहीं थी। 26 अक्तूबर 1879 को तासकी का जन्म हुआ और पारिवारिक नाम लिउ दैविदोविच रखा गया। इसी वर्ष स्तालिन का जन्म हुआ था। 38 वर्ष बाद 26 अक्तबूर को ही तासकी ने पित्रोग्राद में आन्दोलन की अगुआई की थी। मधुर स्वभाव के कारण इस बच्चे को परिवार के सदस्यों के साथ मज़दूर भी बहुत प्रेम करते थे।

अपने पिता और मज़दूरों को आपस में बातें करते समय पिता को गालियाँ देते देख वह बहुत दुःखी होता। छोटी-छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मज़दूर अपनी मांगे पूरी कराने के लिए छोटे-छोटे विद्रोह करते, औंधे लेटे जाते और नंगी टांगो को हिलाते रहते। पिता जब उन्हें तरबूज़ देता, सूखी मछली और घास दे देता तो वह प्रसन्न हो जाते, कभी-कभी तो खुशी के गीत गाने लगते। उसे यह सब बहुत अजीब लगता। एक दिन उसके पिता ने एक मज़दूर का इतना अपमानत किया कि सात वर्षीय बच्चा कुछ कर तो नहीं सकता था, किन्तु तकिये में मुँह छिपा कर देर तक रोया।

उडेसा शहर से उसकी माँ का भतीजा माइसी छुट्टियाँ बिताने इनके यहाँ आया। माइसी कुशाग्र बुद्धि वाला साहसी युवक था। तासकी को माइसी और माइसी को तासकी अच्छा लगा।

माइसी ने कहा- इसे मैं उडेसा के अच्छे स्कूल में पढ़ाऊँगा। माता-पिता मान गए और 1888 में माता पिता से आज्ञा लेकर वह चला गया। पढ़ाई में उसकी रुचि बहुत थी और वह बुद्धिमान भी था परन्तु वह कहा करता था- शहर केवल पढ़ने के लिए ही ठीक है रहूँगा तो मैं गाँव में ही।

मैक्स इस्टमैन जो उसका प्रशंसक नहीं था, उसके स्कूल के दिनों के विषय में लिखता है- तासकी अच्छी नस्ल के प्रशिक्षित घोड़े जैसा था जो एक आँख से आगे देखता हुआ तेज़ दौड़ता है, दूसरी आँख से पीछे देखता है कि कहीं कोई मेरे आस-पास तो नहीं।

उसकी रुचि विश्वविद्यालय में गणित शास्त्र पढ़ने में थी, परन्तु थकान कम करने के लिए वह साहित्य का अध्ययन कर लेता। उसने 18 वर्ष की आयु तक कार्ल मार्क्स के विषय में नहीं सुना था न ही उसे राजनीति सम्बन्धी कोई ज्ञान एवं

रुचि थी। वर्ष 1890 में इंकलाबियों ने ज़ार का वध कर दिया। लोगों ने इस घटना की तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया। इंकलाबियों को फांसी दे दी गई परन्तु कोई लहर प्रारम्भ नहीं हुई। किसान दुःखी थे परन्तु सोचते थे कि यह हत्या महल की साजिशों का नतीजा है।

स्कूल से वापस आते समय एक दिन उसने उडेसा के गवर्नर को घोड़ा गाड़ी में आते देखा। वह सीधा खड़ा था और इधर-उधर चेहरे को घुमाता हुआ ऊँचे स्वर में गालियाँ दे रहा था। हथियारबंद पुलिस वाले उसको सलाम कर रहे थे, लोग टोपियाँ उतारकर झुक रहे थे, बंद दरवाज़ों, खिड़कियों से झांकते डर से पीले पड़ चुके चेहरे उसकी तरफ देख रहे थे। तासकी ने कंधे पर लटकते हुए बस्ते को ठीक किया और घर वापस आकर सरकारी जुलूस का विवरण सुनाया। यहूदी माता-पिता के ध्ाार्मिक विचारों से वह पूर्णतः प्रभावित था इसी कारण युवावस्था में उसने अनेक बार मार्क्सवादी लहर का उपहास उड़ाया।

1895 में कॉलेजों, यूनिवर्सिटियों के अध्यापक-विद्यार्थियों में सामाजिक समस्याओं के ज्ञान की रुचि का प्रबलता से विकास हो रहा था। परन्तु सरकार के लिए यह खतरा प्रतीत होता था। स्वतन्त्र विचारों वाले ज्यादातर प्रोफैसर सेवा मुक्त कर दिए गए। जे.एस.मिल्ल, हर्बट सपैंसर और कार्ल मार्क्स के विषय में बात करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। पीटर सबर्ग, मोसिको एवं कीव के विद्यार्थियो से कहा गया कि ज़ार के प्रति वफादारी की सौगन्ध उठाओ, विद्यार्थियों ने इंकार कर दिया। मई 1896 को पीटर्सबर्ग में तीस हज़ार मज़दूरों ने हड़ताल की जो कि पहली विशाल हड़ताल थी।

1897 में उसने पहली श्रेणी में आनर्स के साथ डिग्री की और छुट्टियों में गाँव आ गया। पिता जी को वह कुछ बदला हुआ लगा। एक दिन तासकी ने कहा कि लोग तंग आकर ज़ार का राज्य पलट देंगे। पिता जी बोले- सुनो बेटा, ऐसा नहीं होगा, तीन सदियों तक नहीं।

धीरे-धीरे तासकी को लोगों के दुःखों और राज्य की जबरदस्ती समझ आने लगी। सामूहिक गतिविधियों के कारण उसे साथियों सहित जेल भेजा गया। गवर्नर जेल का दौरा करने आया तो एक कैदी को अलग से काल कोठरी में इसलिए बंद कर दिया क्योंकि उसने गवर्नर को देखकर टोपी नहीं उतारी थी। तासकी ने जेल रक्षक को कहा- तुम सायरन का बटन दबाओ, गवर्नर आएगा, हम सामने खड़े होंगे और टोपियाँ नहीं उतारेंगे। देखेंगे क्या करता है वह। गार्ड नहीं माना तो वह ज़ोर से चिल्लाया- तुम्हें केवल दो मिनट दिए। दो मिनट का समय बीत गया। तासकी ने गार्ड को पीछे धकेला और सायरन का बटन दबा दिया। गवर्नर रक्षकों सहित आया

तो सभी युवक टोपियाँ पहने खड़े रहे। उसने समूह के नेता को गरजते हुए कहा- टोपी क्यों नहीं उतारी मुझे देखकर? तासकी ने भी गरजते हुए कहा- तुमने क्यों नहीं उतारी? मुझे देखकर तुमने टोपी क्यों नहीं उतारी? अंगरक्षक ने उसे भी पकड़ कर कालकोठरी में कैद कर दिया।

कला कला के लिए है," का नारा बुलंद था तब तासकी कहा करता था- यह तो वही बात हुई, कोई कहे हवा पतंग के लिए और पंतग हवा के लिए। पतंग चाहे बादलों तक पहुँच जाए, परन्तु जब व्यक्ति डोर को पकड़े धरती पर ही खड़ा है तो समझो पतंग धरती पर ही है।

तासकी उसका मूल नाम नहीं था। यह उपनाम तो उसने सुरक्षा के लिए रखकर पासपोर्ट बनवाया था। जेल के दिनों में एक जेलर का नाम तासकी सुना तो उसने यही नाम अपना रख लिया- तासकी। यही नाम जीवन भर उसके साथ चला। अक्तूबर 1902 में वह साइबेरिया का कैदी था और इस संघर्ष कैंप में उसकी पत्नी और पांच वर्षीय बेटी भी साथ थी। उसने अपनी पत्नी को अपने भागने की योजना के विषय में बताया। तम्बू में घासफूस का पुतला बनाकर उस पर कम्बल डाल दिया जिससे कि किसी को देर तक पता न चले कि वह भाग गया है। सुबह उसकी बेटी उसे उठाते हुए कहा- पापा उठो। परन्तु वहाँ तो घास-फूस का बना पुतला था। माँ ने रोते हुए कहातुम्हारे पिता अब कभी मिलेंगे या नहीं पता नहीं। अक्तूबर 1902 में वह लंदन में पहली बार लेनिन से मिला जब वह एक छोटे से कमरे में रूपोश जीवन व्यतीत कर रहा था। जब सुबह उसने दरवाज़े पर दस्तक दी तो वास्तव में वह इतिहास का दरवाज़ा खटखटा रहा था। यद्यपि दोनों के स्वभाव में बहुत अन्तर था परन्तु उनकी मित्रता जीवन भर रही।

प्रबुद्ध विद्वान होते हुए भी वह किसानों को सम्बोधित करते समय भाषा और लेखन में उस शैली का प्रयोग करता था जैसे बचपन में अपने पिता और नौकरों के साथ खेतों में बातें करता हो। एक उदाहरण प्रस्तुत है :

- पता है पीटर्सबर्ग में ज़ार अपनी प्रजा को कैसे मिला?
- लोग उसे अपना दुःख बताने के लिए घर से चले।
- पत्नियाँ अपने पतियों सहित और पौत्र पौत्रियाँ अपने दादाओं की अंगुली पकड़ कर।
- 7 जनवरी रविवार का दिन। ज़ार से मिलना है न, अपने बादशाह से, सो सब ने सुन्दर कपड़े पहने।
- दो लाख का काफिला चला।
- महल के सामने पंक्तियों में शस्त्रधारी फ़ौजी निशाना सेधे खड़े थे।

- बूढ़ों ने घुटनों के भार झुक कर कहा- जी हम बादशाह को मिलने आए हैं।
- स्त्रियों और बच्चों ने हाथ जोड़े, गिड़गिड़ाए, जी ज़ार से मिला दो। हमारे बादशाह को।
- फिर बंदूके गरजीं। चारों तरफ खून खून।
- ऐसे मिला ज़ार अपनी प्रजा को।
- सुनी बात भाइयो! ऐसे मिला करता है ए ज़ार दुःख बताने गए गरीबों को।

बहुत विशाल हड़ताल हुई तो ज़ार ने संविधान में संशोधन करते हुए स्वतन्त्रता की घोषणा की। लाखों की संख्या में किसान और मज़दूर अपनी प्राप्ति और खुशी को प्रकट करने के लिए तकनीकी कॉलेज के सामने एकत्रित हुए। सबसे लम्बा और सुन्दर भाषण 17 अक्तूबर 1905 को तासकी ने दिया, "मित्रो, हुकूमत की गर्दन पर आप सभी ने पैर रखा तब स्वतन्त्रता का वादा किया ज़ार ने। ख़बरदार रहना। सिंहासन पर बैठा व्यक्ति न थकने वाला जल्लाद है। खुशी न मनाओ। अभी केवल वादा है यह। कागज़ पर लिखा एक किलो सोने का वादा किलो सोने के भार से बहुत हल्का होता है। हमें सोना मिलेगा, खुशी मनायेंगे। अभी कागज़ मिला है। अभी जेलों के दरवाज़े नहीं खुले। अभी हमारे उजड़े हुए भाई साइबेरिया से वापस नहीं आए। हमारे उपर फायर करते समय ज़ार का आदेश होता है- सिपाहियो, गोलियाँ बचाकर रखने के लिए नहीं दीं। उसने हाथ में ज़ार का ऐलान किया हुआ दस्तावेज़ उठाकर ऊँचा करते हुए कहा- भाइयो यह है ज़ार का वायदा। आज यह वायदा हमारे हाथ में पकड़ा दिया, जब आप सब शांत हो गए- कल इसे वह फाड़ कर फेंक देगा, यह कहकर तासकी ने उस कागज़ के टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिए और दहाड़ते हुए कहा- कागज़ का वायदा नहीं, ज़ार तुमसे स्वतन्त्र होना है। यह गई तुम्हारी कागज़ी स्वतन्त्रता।

रूस की राजधानी में पहली बार ऐसे विद्रोही की सिंह गर्जना सुनाई दी थी।

समाचार पत्रों या पत्रिकाओं में जो लोग गोरकी, लेनिन और तासकी की प्रकाशित रचनाएँ देखतें, सबसे पहले तासकी की रचना को पढ़ते थे। जब फैक्टरी कर्मचारियों को आठ घंटे तक काम करने का अधिकार मिला तो तासकी ने कहा था- हमने कर्मचारियों के लिए आठ घंटे को नहीं जीता आठ घंटों द्वारा हमने कर्मचारियों को जीत लिया है जो अब हमें सहयोग देंगे।

1905 का इंकलाब असफल होने पर उसे बंदी बना लिया गया। उसने कोई रहस्य प्रकट नहीं किया और साहसपूर्वक कहा- ज़ार के विरूद्ध युद्ध किया है और करूँगा। उसका कमरा एक सुन्दर पुस्तकालय बन गया था। सारा दिन वह

अध्ययनरत रहता और कुछ न कुछ लिखता रहता। वह खुश होकर कहता- है न कमाल, अब मुझे गिरफ्तारी का कोई भय नहीं। रूस में कौन है जिसे बंदी बना लिए जाने का भय न हो? अर्थशास्त्र और राजनीति के विषयों पर वह जर्मनी भाषा में लिखता और साहित्यिक लेख फ्रांसीसी भाषा में। उसने 80 पृष्ठों में इंकलाबी विधि विधान को तैयार किया। उसकी इस रचना को रूस में वही स्थान प्राप्त हुआ जो संसार में कार्ल मार्क्स के मैनीफैसटो को प्राप्त था।

जब पुलिस उसे पेशी के लिए अदालत ले जाती तो वहाँ उसके प्रशंसकों की भीड़ एकत्रित हो जाती, सौगातों और पुष्पगुच्छों से उसका स्वागत किया जाता। पुलिस अधिकारी, सरकारी वकील और न्यायाधीशों के मुंशी, लोगों से इन सौगातों को पकड़ कर स्वयं तासकी को दे देते। जब उसे बगावत का दोषी कहा गया तो उसने अदालत से कहा- ज़ार ने स्वतन्त्रता की जो घोषणा की है, उसे पूरा करने के लिए मैं और मेरे मित्र दृढ़ संकल्प हैं। अब अदालत का निर्णय संसार को यह बताएगा कि स्वतन्त्रता केवल ज़ार के लिए है या देश के लिए। यही अदालत ज़ार को बुलाकर पूछे कि उसने अपना वायदा क्यों तोड़ा? देश से वायदा करके उसे तोड़ने का क्या दण्ड होता है? यदि मुझ पर बगावत करने के दोष लगाए जा रहे हैं तो इसका दोषी ज़ार है मैं नहीं क्योंकि मैं ज़ार के जारी किए हुए ऐलाननामे को वास्तविक रूप प्रदान करने के लिए संकल्पबद्ध हूँ। उसने एक जरनैल के कथन को अदालत में प्रस्तुत किया- “हम जब चाहे जिसे भी मिटा दें। दस व्यक्ति मारने हैं या दस हज़ार, यह हमारी मर्ज़ी।

उसने कहा- मुझ पर सरकार को बिखेरने का दोष लगाया गया है, यह दोष तो तब उचित था जब सरकार नाम की कोई चीज़ होती। जीवित व्यक्ति का मांस काट काट कर गलियों में बिखेरने वाली और घास काटने वाली मशीन को सरकारी उपाधि देनी है तो अफ़सोस है। उसकी आवाज़ चारों तरफ गूंजती, लोग अवाक खड़े देखते रहते, यहूदी पिता गर्व से अपने बेटे की तरफ देखता, माँ यह सोचकर रोती रहती कि उसे सज़ा मिलेगी वह भी बहुत सख्त। नौकरी से निकाला गया पुलिस जरनैल 13 अक्तूबर को अदालत में उपस्थित हुआ और बयान देने की आज्ञा मांगी। उसने कहा- पुलिस आफ़िस में वह विज्ञापन छापे गए हैं जो तासकी द्वारा छपवाकर बांटे जाने का आरोप है। पुलिस कत्लोगार्त करना चाहती है तो इंकलाबी इसे टाल देते हैं। मैंने यह समस्त विवरण प्रधानमन्त्री स्तालीपिन को लिखकर भेजा हुआ है, उसकी फाईल देखी जाये। 2 नवम्बर 1907 को अदालत ने निर्णय दिया। बगावत का दोष सिद्ध न हुआ इस कारण मृत्यु दण्ड नहीं दिया गया। अन्य दोषों को सही मान दोषी

को उम्र कैद की सज़ा देकर साइबेरिया भेजने और रूसी नागरिक होने के समस्त अधिकार वापस लेने का निर्णय सुनाया गया।

जेल में विभिन्न प्रकार के कैदी थे जिनमें एक चोरों का सरदार था जिसने आधे संसार में चोरियाँ की थीं। वह तासकी से पूछने लगा- आप सारे संसार के विषय में जानते हो। कनाडा में मेरा चोरी का कारोबार कैसा रहेगा? तासकी ने कहा- वहाँ पूंजी तो लोगों के पास है नहीं, वैसे हैं सभी पूंजीवादी और पूंजीपति। इसलिए ठीक चलेगा। पूंजीवाद को चुराकर ले आओ।

मार्च 1917 में समाचार मिलने लगे कि रूस में कुछ गड़बड़ है। 13 मार्च को तासकी ने घोषणा की- दूसरे रूसी इंकलाब के हम साक्षी हैं और इसमें कूद गए हैं। कुसतुनतुनीया को जीतने के लिए नहीं निकले, किसानों को ज़मीन दिलाने के लिए चले हैं। उसके विषय में यह भी सुना गया- सेना के बिना सेना का वह कमाल का जरनैल है।

10 जून को लोगों को यह समाचार मिला कि 18 जून को पित्रोग्राद में विशाल सभा होनी है। उम्मीद तो नहीं थी, परन्तु पाँच लाख लोग वहाँ एकत्रित हुए। सरकार की ओर से कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया, सभा पूर्णतः सफल रही। इंकलाबियों का प्रभाव कायम हो गया। दर्शकों ने कहा- लेनिन बहुत ही समझदार नेता है परन्तु तासकी के सामने आते ही वह कमज़ोर पड़ जाता है। लोगों में व्याकुलता बढ़ रही थी तो लेनिन ने तासकी से कहा- सरकार हमें बिना मुकद्दमा चलाए ही गोली मार देगी। चलो कहीं छिप जायें। तासकी ने कहा- बिल्कुल नहीं। बंदी बनाए या मारे यह ठीक है, परन्तु यदि छिप गए तो लोगों की अगुआई कौन करेगा? लोग यही समझेंगे कि हम भाग गए। लेनिन अज्ञातवास चला गया। अब तासकी अकेला व्यक्ति था जिसे कमान संभालनी थी।

लोगों ने जिन व्यक्तियों को चुन कर ज़ार की संसद में भेजा उन्होंने जनसामान्य को सम्बोधित करने के लिए मीटिंग रखी जहाँ तासकी भी पहुँचा। संसद की बातों को सुनने में किसी की रुचि नहीं थी, लोग तासकी के विचार सुनने को आतुर थे। तासकी ने भाषण प्रारम्भ किया- मित्रो हमारे द्वारा चयनित प्रतिनिधि हमें ही समझाने आए हैं। मैं तो यह सुनने आया हूँ कि आपने हमारे लिए क्या क्या किया है। हमें हमारे काम की रिपोर्ट चाहिए, उपदेश नहीं। यदि उपलब्धियों के विषय में बतायेंगे तो उपदेश भी सुन लेंगे और धन्यवादी भी होंगे। मृत्यु दण्ड समाप्त किया जाए, हमारी यह मांग कहाँ गई? यह सुनकर उच्च स्वर में सांसद क्रैंसकी बोला- मुझे ईश्वर दण्ड दे, यदि मैं एक भी व्यक्ति को फांसी दिए जाने वाले दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करूँ। तासकी बोला- ठीक है, यदि किसी व्यक्ति को फांसी देनी ही नहीं, तो फिर

फांसी देने का कानून ही क्यों रहे? तुम फांसी की रिवायत के हक में भुगत गए हो क्रैंसकी, तुम्हारी चोरी हमने पकड़ ली है, सरेआम पकड़ ली है।

23 सितम्बर को सर्वसम्मति से तासकी को पित्रोग्राद सोवियत का प्रधान चुना गया तो उसने पूर्ण इंकलाब का नारा दिया। यद्यपि यह होना चाहिए था कि परिभाषा, सिद्धान्त तासकी देता जिसका प्रयोग लेनिन द्वारा किया जाता, परन्तु सब इसके विपरीत हुआ। अज्ञातवासी लेनिन लेख लिखता और तासकी उसका व्यावहारिक प्रयोग करने के लिए लोगों में घूमता।

कार्यकारिणी में निर्णय लिया गया कि यदि जर्मन विजयी होते हुए यहाँ आ जाए तो राजधानी की रक्षा के लिए शस्त्रबद्ध इंकलाबी कमेटी का गठन होना चाहिए। यह सुझाव 18 वर्षीय युवक लाज़ीमीर ने दिया था। इस कमेटी का परिणाम क्या होगा यह न तो उसे पता था न ही अन्य सदस्यों को। यही कमेटी बाद में लाल सेना के नाम से जानी गई। लैनिन फिनलैंड चला गया। तासकी प्रचारक के समान शहरों में भाषण देता घूमता और लोग उसे सुनने के लिए उत्सुक रहते।

16 अक्तूबर को जब क्रैंसकी ने तोपखाने को पित्रोग्राद से प्रस्थान कर सीमा पर जाने का आदेश दिया तो सैनिकों ने इसे मानने से इंकार कर दिया। तासकी को पता चला तो वह यह जानने के लिए कि क्या वास्तव में यह बगावत है या अफ़वाह, उसने उसी क्षण सेना को लिखित आदेश भेजा- मैं आदमियों को भेज रहा हूँ। हमें पाँच हज़ार बंदूकें चाहिए। गजब हो गया। पाँच हज़ार बंदूकें तासकी के पास पहुँच गईं।

22 अक्तूबर को उसने पीपलज़ हाऊस के सामने भाषण दिया- अब या तो विजय या मृत्यु... और कुछ नहीं। उसने कहा- वचन दो, समर्थन की सौगन्ध लो...। असंख्य हाथ लहरों के समान झूमने लगे। किसान को ज़मीन, भूखे को रोटी, बेरोजगार को रोजगार और सोवियत देश को सम्मान मिलेगा। जब उसके बाद यह घोषणा की गई कि अब कोई और व्यक्ति भाषण देगा तो लोग कहने लगे- अब और शेष क्या रह गया है? अकेला व्यक्ति पूरे समुद्र को खींच कर ले जा रहा है। क्रैंसकी बगावत में कूदने के लिए तैयार था। तासकी प्रतीक्षा कर रहा था कि कब क्रैंसकी यह निर्णय करता है जिससे कि लोग बगावत की घोषणा कर दें। क्रैंसकी ने कामरेडों के समाचार पत्र प्रावदा पर निषेध लगाकर छापेखाने को सीलबन्द कर और छापेखाने की ओर जाने वाले मार्ग पर चलने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। उस छापेखाने में काम करने वाली एक लड़की और एक व्यक्ति तासकी के पास आकर कहने लगे- हम सरकारी सील तोड़ कर काम करना चाहते हैं, देखेंगे क्या करती है सरकार। कमाल हैतासकी की आँखें चमकी- गजब, उसने कहा मामूली सील टूटेगी और युद्ध की

घोषणा होगी-बगावत का ऐलान। कमाल। उसने इस लड़की के साथ शस्त्र धारी सैनिकों को सुरक्षा के लिए भेजा। यह घटना 24 अक्तूबर को हुई। सील तोड़कर प्रैस शुरू की गई जिसने ऐसे इंकलाब की घोषणा की जिसमें न तो लेनिन था न ही स्तालिन। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी जिम्मेदारियाँ बता दी गईं।

क्रैंसकी ने तासकी और अन्य सहयोगियों को बंदी बनाने का आदेश दिया तो उससे सचिव ने पूछाकर लोगे गिरफ्तारियाँ? क्रैंसकी ने कहा- क्या पता... शायद...। तासकी ने कहाअब लोहे से लोहा टकराएगा।

तासकी ने लाल सेना बुलाई। बहुत ही आसानी से 24-25 अक्तूबर की रात को पित्रोग्राद महल पर अधिकार कर लिया गया, फिर डाकखानों, बैंकों, रेलवे स्टेशनों, दूरभाष केन्द्रों आदि को कब्जे में लिया गया। कुछ ही घंटों में क्रैंसकी की सरकार नष्ट हो गई और वह भाग कर विदेशी दूतावास में छिप गया। लेनिन अभी भी अज्ञातवास में था। उसने यह समाचार सुना तो विश्वास नहीं हुआ। छिपकर राजधानी में आया और इंकलाबी नेताओं को काम करते हुए देखा, जिनके केश उलझे हुए और न सोन के कारण आँखे सूजी हूई थीं। वे आदेश दे रहे थे जिनका पालन किया जा रहा था। लेनिन ने कहा- “मेरी अनुपस्थिति में इन्होंने पर्वत पार कर लिया।” तासकी ने भयंकर युद्ध किया और महान विजय प्राप्त की। सिविल सहयोगियों की संख्या 25-30 हज़ार थी और लाल सैनिकों की पाँच हज़ार।

तासकी इतना थक गया था कि उसे लगा वह बेहोश हो जाएगा परन्तु टैलीफोन पर संदेशों को सुनना, उत्तर देना, मौखिक संदेश शीघ्र ही भेजने होते थे। समाचार मिला कि विंटर पैलेस में ज़ार की कमेटी आत्मसमर्पण नहीं कर रही। तुरंत आदेश दिया गया कि महल पर तोप के गोले बरसा दिए जाएं। फिर देखना कैसे घुटनों के बल आते हैं। यहाँ लेनिन उसके पास आया। दोनों पृथ्वी पर बैठकर विचार-विमर्श करने लगे कि कल से नयी सरकार की घोषणा करके रूस और संसार में शांति की कामना करेंगे। मन्त्री शब्द बुरा है। हम अपने वज़ीर को कमिस्सर कहा करेंगे। कमिस्सर अर्थात् लोगों का मित्र, प्रतिनिधि।

सरकार बनने लगी तो लेनिन ने कहा- तासकी राज्य का प्रधान होगा क्योंकि इसी के प्रयासों के कारण पुरानी सरकार का सफाया हुआ। तासकी ने नम्रतापूर्वक इंकार करते हुए कहा- लेनिन मुझसे सीनियर हैं। लेनिन देश की अगुआई करेगा। लैनिन पार्टी का निर्देशन चाहता था परन्तु तासकी ने कहातुम्हें जिम्मवारियों से भागने नहीं देना हमें। लेनिन ने चाहा कि तासकी गृह मंत्रालय संभाले। तासकी ने कहा- यह भी नहीं। मैं यहूदी हूँ। कहीं कठोरता का प्रयोग करना पड़ा तो लोगों को तासकी नहीं यहूदी दिखाई देगा। इस दृष्टि से तासकी बिल्कुल

सही था। वह जानता था कि लोगों के शत्रुओं के विरूद्ध यदि युद्ध करता तो प्रशंसा होती। ग्रामीण लोगों में जातिवाद सम्बन्धी अधिक भेदभाव पाया जाता है जिस कारण खतरा उत्पन्न हो सकता था- वह जानता था। उसने विदेशी मन्त्रालय को स्वीकार कर लिया।

वह दोनों एक तरफ नीतियाँ निश्चित करते, सरकारी कर्तव्यों को निभाते और कभी-कभी भयभीत भी हो जाते कि क्या उनकी सरकार स्थिर भी रहेगी? एक दिन लेनिन ने तासकी को कहा- यदि किसी षड्यन्त्रकारी ने हम दोनों का कत्ल कर दिया तो क्या सेरलोव और बुखारिन देश की कमान संभालने के योग्य हैं?

कई बार वह सरकार चलाने की अपेक्षा नीतियाँ बनाते रहते ताकि उनके बाद उनका उत्तराधिकारी किसी दूसरे रास्ते पर न चल पड़े। इनके पास तो न टाईपराईटर था न कोई डिक्टेशन लेने वाला स्टैनोग्राफर। जो कुछ भी लिखना होता हाथ से ही लिखते। दफ्तर के एक छोटे से कमरे में जहाँ काम करते थे वहीं सो जाते थे। कोई भी व्यक्ति जब चाहे मिल सकता था। अमेरिकी पत्रकार लूई बरां लिखता है- समाचार लेने के लिए मैं तासकी के घर जाता। चौबारे में वह और उसकी पत्नी रहते थे। पलाई का पर्दा किया हुआ था, सस्ती चार कुर्सियाँ और एक धुंधला सा शीशा रखा हुआ था। यहाँ जरनैल आते, राजदूत आते, वज़ीर आते। आकाश के नीचे क्या क्या घटित हो रहा है- उनसे इस विषय में विचार विमर्श करते। इतने काम करने से वह खीझ उठता था, कहा करता- कहीं दिमाग ही न हिल जाये।

शपथ लेने के एक सप्ताह के बाद वह अपने एक सहायक के साथ विदेश मन्त्रालय में गया। उसने दफ्तर के कर्मचारियो से कहा- मैं इस संस्था का वज़ीर हूँ। गुप्त रिकार्ड की चाबियाँ दे दो। एक भी व्यक्ति ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। एकटक देखते रहे। वह वापस आ गया। सेना की टुकड़ी लेकर आया और सभी को बंदी बना लिया गया तो चाबियाँ मिलीं। ज़ार द्वारा हस्ताक्षर किए गए कागज़ जो देशों से संधि के सम्बन्ध में थे, उन्हें समाचार पत्रों में छपवाकर उसने कहा- समाजवाद में कोई भी निर्णय गुप्त नहीं होगा।

जरनैल दुखोनिन सेना की एक टुकड़ी के सहयोग से जर्मन के विरोध में युद्ध की कमान कस रहा था। तासकी ने हुक्म भेजा- हम संधि करेंगे। जर्मनी के विरोध में हो रहा युद्ध रोक दो। उसने आदेश मानने से इंकार कर दिया। जब सैनिकों ने देखा कि तासकी युद्ध रोकने के हक में है परन्तु जरनैल नहीं मान रहा तो सैनिकों ने अपने जरनैल की छाती को गोलियों से छलनी कर दिया।

रूस में पहुँचे पश्चिमी देशों के दूतों को विश्वास नहीं हो रहा था कि सरकार बदल गई है। इसलिए वह अजीब अजीब प्रकार की खबरें छपवाते। तासकी

ने सभी से कहा- "यदि तुम जिम्मेदार नहीं बने तो सबकी दुकानें बंद करवा दूंगा।" तासकी की पार्टी के एक पत्रकार चिचेरिन को अंग्रेजों ने लंदन में बंदी बना रखा था क्योंकि वह युद्ध के विरोध में लिखता था। बरतानवी दूत से कहा गया कि चिचेरिन को मुक्त कर वापस रूस भेजा जाये। इंग्लैंड पर कोई असर न हुआ। तासकी ने घोषणा की"जब तक चिचेरिन वापस देश नहीं पहुँचता, तब तक एक भी अंग्रेज को रूस से बाहर जाने न दिया जाए।" कैदी को मुक्त कर दिया गया।

रूस की नयी सरकार ने जर्मन विरूद्ध युद्ध न करने की घोषणा करते हुए संधि पर हस्ताक्षर करने की मांग की। जर्मन बादशाह विलियम कैसर ने अपना दूत भेजा। फ़ौजी जरनैल सीमा पर थे। इधर तासकी भी वहाँ पहुँच गया। जर्मन समझते थे कि यह ऐसे ही कोई आवारा लड़ाकू छोकरा है जिसके पैरों के नीचे सत्ता का बटेर आ गया है और यह बटेर भी पैरों के नीचे से जल्दी ही निकल जायेगा। जब विचार-विमर्श शुरू हुआ तो जर्मनी भाषा में तासकी के तर्क एवं आत्मविश्वास को देख सब चकित रह गए। आश्चर्य यह कि रूस में सेना रही नहीं थी, जो बची थी वह युद्ध के लिए तैयार नहीं थी। एक कमज़ोर देश का नेता शक्तिशाली सरकार के साथ इतने साहस से कैसे बात कर सकता है, आश्चर्य है। जर्मनी के जरनैलों ने कहा कि युद्ध बंद करना हमें स्वीकार है परन्तु रूस की जितनी धरती पर पहुँच चुके हैं उसे नहीं छोड़ेंगे। तासकी ने कहा- यह तो संधि न हुई। जर्मन ने कहा- आपने हमारे विरूद्ध युद्ध की घोषणा क्यों की थी? तासकी ने कहा- मैंने नहीं की थी। जिस ज़ार ने घोषणा की थी न तो वह रहा न उसकी सरकार रही। जो अपराध मैंने नहीं किया उसका दण्ड मुझे क्यों मिले?

उसने लेनिन के साथ फोन पर बात की। लेनिन ने कहा- जो शर्तें मानने के लिए कह रहे हैं मान लो। हस्ताक्षर कर दो। तासकी ने कहा- मैं रूस की धरती जर्मनों को सौंपने वाले कागज़ों पर हस्ताक्षर कर स्वयं पर दोष नहीं लगवाऊँगा। वह वापस आ गया। उच्च स्तरीय राजनीतिक मीटिंग रखी गई। मजबूत तर्क दिए गए। लेनिन बता रहा थाइंकलाब अभी बच्चा है। चलने के योग्य नहीं हुआ। क्यों मारते हो इसे? तासकी ने कहाअपमानजनक संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद यह बच्चा जल्दी मर जायेगा। लेनिन ने कहाठीक है। मेरी बात नहीं मानोगे तो मैं पार्टी और सरकार दोनों से त्यागपत्र दे दूंगा। तासकी रूस की कमान संभाले, विश्व युद्ध करे और विजयी हो। तासकी ने कहा- नहीं। मैं त्यागपत्र देता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो वही करो। तासकी ने त्यागपत्र दे दिया। उसके स्थान पर नियुक्त किये गये विदेश मन्त्री ने जर्मनों की ऐच्छिक संधि पर हस्ताक्षर कर दिए।

पार्टी ने तासकी को रक्षा मन्त्रालय सौंप दिया। कलम फेंक कर उसने बंदूक नहीं उठाई, कलम के साथ-साथ बंदूक उठाई। इंकलाब के समय उसके पास पाँच हज़ार सैनिक थे। ढाई वर्षों में उसने 50 लाख शस्त्रधारी शक्तिशाली सेना भर्ती कर ली। युद्ध के मैदान में वह जिस कुशलता से युद्ध करता, उसकी इस विचित्र कला का किसी को जानकारी नहीं था।

यहाँ यह बताना जरूरी है कि तासकी, ज़ार की हत्या करने के पक्ष में नहीं था। वह चार्ल्स पहिले और लूई सोहलवें के समान ज़ार पर मुकद्दमा चला कर उसे सज़ा दिलाने के पक्ष में था। उसने कहा- मैं ज़ार के विरूद्ध पब्लिक परासीक्यूटर होऊँगा। संसार को पता चले कि उसने क्या क्या किया है। संसार, तासकी और ज़ार को आमने-सामने देखेगा। परन्तु बोलशविक इस बात से भयभीत हो गए। उन्होंने सोचा कि अभी इंकलाब के विरोधी दल रूस और संसार में क्रियाशील हैं। सफलता इस कारण नहीं मिल रही क्योंकि उनकी अगुआई करने वाला कोई नेता नहीं है। ज़ार पर मुकद्दमा चलेगा तो शत्रु एक नायक के पीछे एकत्र हो जायेंगे। अतः इंकलाबियों ने शीघ्रता से ज़ार और उसके परिवार की हत्या कर दी।

एक रजमैंट का प्रधान सेनापति, जरनैल पैंतलीन हो रहे युद्ध में से अपने कुछ साथियों सहित फरंट लाईन का खतरा न उठाता हुआ एक सुरक्षित स्थान पर चला गया। तासकी ने उसे बंदी बना कोर्टमार्शल करने के बाद गोली मरवा दी। उसने सेना को आदेश भेजा- जो कोई भी कायर अफ़सर, सैनिक शत्रु की गोली से बचने के लिए भागेंगे उनके लिए मेरी बंदूक की गोली तैयार होगी।

बोलशविकों ने तासकी की इस बात का समर्थन नहीं किया कि ज़ार की सेना के समय के अफ़सर इंकलाबी सेना का नेतृत्व करें। तासकी ने कहा- नये सैनिकों को कौन प्रशिक्षित करेगा? मुझे ज़ार की बची हुई वस्तुओं को प्रयोग में तो लाना ही है। इन पुराने अफ़सरों ने तासकी के साथ कभी छल कपट नहीं किया। गोरकी ने भी लेनिन से कहा था कि पुराने अफ़सरों को भर्ती करना खतरनाक होगा तब लेनिन ने कहा"इतने कम समय में इतनी विशाल सेना का संचालन करना कोई खेल नहीं है। मुझे बताओ उससे अधिक योग्य और कौन है आज इस संसार में।" इन शब्दों को गोरकी ने स्वयं लिखा था। जब बाद में स्तालिन ने तासकी को देशनिकाला दिया तो गोरकी ने, ***लेनिन के साथ बिताए दिन*** पुस्तक के नवीन संस्करण के समय इन शब्दों को निकाल दिया।

उसने सेना को बताया कि पोलैंड की सेना ने रूसी युद्ध के कैदियों को गोलियों से छलनी कर दिया, हमें ईंट का जवाब पत्थर से देना है? उसने तुरंत आदेश जारी किया- जो भी हाथ, कैदियों और निहत्थे शत्रु पर शस्त्रों का प्रयोग करेगा, वह

हाथ काट दिया जाएगा। खूनी युद्ध में भी मैं तुम्हें नेकी का त्याग करने की आज्ञा नहीं दूंगा।

1706 में तलवंडी साबो की एक घटना याद आई है। भाई डल्ला सिंह ने गुरू गोबिन्द सिंह जी से कहा- मुगल हमारी स्त्रियों और बच्चों तक का वध कर देते हैं। जब तक हम भी ऐसा नहीं करेंगे, वह रूकेंगे नहीं। महाराज ने कहा- हमें नीच लोगों का अनुकरण नहीं करना। पंथ को ऊँचा लेकर जाना है। भाई डल्ला सिंह ने कहा- हजूर ईंट का जवाब पत्थर से नहीं देना चाहिए? गुरू जी ने कहा- एक परमात्मा हम सब का पिता है और हम परिवार के सदस्य हैं, भाई-भाई हैं। भाई जी ने पूछा- यदि यह बात है तो फिर मुगल हम पर अत्याचार क्यों करते हैं? गुरू जी ने कहा- उन्हें अभी मालूम नहीं कि हम सब एक ही परमात्मा के बच्चे हैं। जब उनको समझ आएगा तब रूक जायेंगे। हमें तो पता है इस कारण हम पाप नहीं करेंगे।

वह बारूद के धुएँ की गन्ध में सीमा पर बैठा हुआ भी लेख लिखता रहता। युद्ध के समय में उसके द्वारा लिखा एक लेख है- 'प्रोलेतेरीयन कलचर' जिसमें यह पंक्तियाँ हैं- अनेक विज्ञानों के आश्रय पर ही युद्ध किया जाता है, परन्तु युद्ध, स्वयं विज्ञान नहीं है। यह एक व्यावहारिक कला है, खेलने जैसी कला, गँवार और खूनी कला। मार्क्स की किसी युद्धनीति को लिखना उसी प्रकार तर्क रहित कल्पना है जैसे मार्क्सवाद की सहायता द्वारा कोई भवन निर्माण कला को प्रस्तुत करे या पशुपालन के लिए मार्क्स विधि तैयार करे। युद्ध लम्बा हो जाए तो शत्रु से भी बहुत कुछ सीखने को मिलता है।

लिखता हैमिलटरी के यह सिद्धान्त कि अपनी सप्लाई के विषय में सजग रहो और शत्रु के कमज़ोर भाग पर हमला करो- यह लाखों वर्ष पुराने हैं। गधे को भी पता होता है कि बंद बोरी में सुराख है तो सुराख में से दाने खाने चाहिए। गधा जानता है कि सामने गड्ढा है तो दूसरी तरफ होकर निकलना है। कौन सी अधिक बुद्धिमता है यहाँ पर? युद्ध की क्या परिभाषा होती है? स्वयं को बचाओ शत्रु को मारो। जानवर को भी यह पता है।

निजी कारोबार पर निषेध लगा दिए जाने पर 1919 में परिस्थितियाँ ऐसी हो गई थीं कि किसान उतनी ही फसल उगाता जितनी उसके परिवार को जीवित रखने के लिए जरूरी होती। बची हुई वस्तुओं को फ़ौजी दल छीन लेता। शहरों में अन्न न पहुँचा तो शहर तबाह होने लगे। भूखे कर्मचारी फैक्टरियों में काम कैसे करते? जो भी थोड़ा बहुत उत्पादन होता उसे चुरा कर ले जाते, उसको बेच कर रोटी खा लेते। भयानक अकाल के कारण चारों तरफ सर्वनाश ही सर्वनाश दिखाई देने

लगा। लोग अपने पशुओं को खाने लगे। स्थान-स्थान पर कंकाल बिखरे दिखाई देते, चारों तरफ दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध, रोग ही रोग। लोगों ने अपने डेढ करोड़ भैंसे और गाय, चार करोड़ भेड़ बकरियाँ, सात करोड़ सूअर और सात करोड़ घोड़ों को काट कर मार दिया था क्योंकि वे इनके लिए निरर्थक थे, ये तो सरकारी थे। प्रत्येक किसान के घर शराब की भट्टी जलती। सारा दिन शराब पीते, माँस खाते, उल्टियाँ करते। दस्त लगते। इतनी शराब और इतने रोग पहले कभी नहीं देखे गए। कितनी मौतें कोई रिकार्ड नहीं।

तासकी ने कहा- किसान को इच्छानुरूप फसल उगाने और बेचने दो। उसकी बात अमान्य थी क्योंकि यह एक पूंजीवाद परामर्श था। अक्ल की बात करते समय वह अकेला रह जाता। केवल वही अनुभव कर सकता था कि लोग बोलशविकों से नाराज़ हो रहे हैं। यदि लोगों को बोलने और वोट देने का अधिकार दे दिया जाए तो वह एक नयी सरकार का निर्माण कर इन कामरेडों को यहाँ से निकाल देंगे। अतः डिक्टेटरशिप उचित है। परन्तु हठपूर्वक शासन करना कौन सी नैतिकता है? कोई उत्तर नहीं मिलता। वह बार-बार कहा करता था कि विरोधी पक्ष का होना जरूरी है। कौन सुनता? उसकी बात सुनकर एक दिन बुखारिन ने कहा- दो दलों का नियम बना दिया तो एक दल शासन करेगा और दूसरा दल जेल में रहेगा।

1917 के अक्तूबर इंकलाब तक स्तालिन का कोई विशेष महत्त्व नहीं था। तासकी ने बाद में भी उसे अनदेखा ही किया। यही उसकी गलती थी। मध्यम बुद्धि वाला साजिश प्रिय स्टालिन राजनीति के क्षेत्र में बहुत परिश्रम द्वारा अपना प्रभाव कायम करता हुआ जंगली घास की तरह इस प्रकार फैल गया कि लेनिन की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी बन गया। लेनिन ने एक बार कहा भी था कि स्तालिन को पार्टी का सचिव नियुक्त कर उसने गलती की है। यह भी सुना गया कि बीमार लेनिन को विष देकर मारने वाला स्तालिन ही है क्योंकि स्तालिन ने लाश का पोस्टमार्टम नहीं होने दिया था। तासकी को भी आने नहीं दिया गया। गोरकी की मृत्यु को स्तालिन द्वारा की गई हत्या माना गया।

रूस में अनेक कबीलों, अनेक जातियों के लोग रहते थे, जिनमें से मुख्य रूप में तुर्कमान, बेलारूसी, किरगीज़, उजबेक, आज़ाबाईजानी, तातार, आरमीनी, जारमीनी, ताजिक, बूड़ीऐ और याकूत आदि की संख्या उस समय ढाई करोड़ के लगभग थी। सभी अशिक्षित किसी को भी मार्क्सवाद का ज्ञान नहीं। उनको केवल इतना ही समझ में आया कि अब ज़ार और धनी वर्गों का शासन नहीं रहा, इसलिए अब हम सुखपूर्वक रह सकेंगे।

पोलिट ब्यूरो हुकूमत करने वाला सुप्रीम ढांचा था जिसमें लैनिन, स्टालिन, कामीनीव और बुखारिन सहित पाँच हज़ार सदस्य थे। कामीनीव और जीनोवीव लेनिन से इतने अधिक प्रभावित थे कि उनका लेखन और लेनिन का लेखन समान प्रतीत होता था, दोनों को पहचाना नहीं जा सकता था। वर्ष 1922 में लेनिन को लकवे का पहला अटैक हुआ। उसे अनुभव होने लगा कि देश किसी अन्य दिशा की तरफ बढ़ रहा है। जारजीआ के लोग स्टालिन के अत्याचार के विषय में शिकायतें लेकर आ रहे थे। लेनिन ने कहा"जारजीअन लोगों की पृथक जाति है, एक जाति दूसरी जाति पर आक्रमण नहीं कर सकती। स्तालिन गलत रास्ते पर चल रहा है।" 4 जनवरी को 1923 को उसने स्वास्थ्य खराब होते देख वसीयत लिखी जिसमें यह वाक्य लिखे हुए थे- "स्तालिन कठोर है, लोग उसे सहन नहीं कर सकते। मैं कामरेडों को परामर्श देता हूँ कि स्तालिन को जरनल सचिव की पदवी से हटा दिया जाए और उसके स्थान पर धैर्यशाली, ईमानदार और विनम्र व्यक्ति को नियुक्त किया जाए। तासकी और स्तालिन के मध्य का अविश्वास सामान्य नहीं है। इसके परिणाम अति भयंकर होंगे।" पत्नी के अतिरिक्त किसी को भी इस वसीयत के विषय में कुछ पता नहीं था। स्वास्थ्य कुछ ठीक हुआ तो उसने 6 मार्च को स्तालिन को पत्र लिखते हुए कहातुमसे अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।

लेनिन क्योंकि स्वस्थ नहीं था, उसके स्थान पर पांचवाँ सदस्य जीनोवीव को लिया गया। स्तालिन, जीनोवीव और कामीनीव समूहबद्ध हो गए। इन तीनों में से एक अकेला स्तालिन तासकी के सामने कुछ भी नहीं था, परन्तु तीनों के इकट्ठे हो जाने के कारण उसकी ताकत कम हो गई थी। उन सबका यह निर्णय था कि लेनिन के बाद सत्ता को तासकी के हाथों में नहीं आने देना।

21 जनवरी 1924 को लैनिन का देहांत हो गया। तासकी, काकेशिया में इलाज के लिए गया हुआ था। स्तालिन ने लेनिन को शाही ढंग से विदा करने की योजना बनाई और तासकी लेनिन के समीप न आ सके इसका भी प्रबन्ध कर लिया गया। लेनिन के शव को संभाल कर अजायबघर में रखा गया ताकि भावी पीढ़ियाँ इसे देख सकें। लेनिन की पत्नी और अन्य समझदार लोग इसके विरुद्ध थे परन्तु वह कुछ नहीं कर सके। प्रैस में, कार्यक्रमों में, स्थान-स्थान पर कैमरों में स्तालिन ही दिखाई देता- लेनिन की बातें होती। वह लेनिन का वारिस बनने में सफल हो गया। अपने भाषणों और लेखन में वह स्थान स्थान पर लेनिन के कथनों का विवरण देता जिससे कि सिद्ध हो सके कि केवल वही लेनिन के दर्शन में माहिर है।

मई में रखी गई मीटिंग में लैनिन की वसीयत को पढ़कर सुनाया गया तो स्तालिन हैरान रह गया। उसे इसके विषय में कुछ पता नहीं था कि लेनिन की पत्नी

की इच्छा थी कि इसे प्रैस में दे दिया जाए। कामीनीव और जीनोवीव ने सभी को इस बात के लिए सहमत कर लिया कि जिम्मेदार व्यक्तियों को इस विषय की जानकारी दे दी जाय, प्रकाशित किया तो आन्दोलन को हानि होगी। तीनों के इस निर्णय के आगे तासकी मौन रह गया। उसने पार्टी बहुमत का सम्मान किया।

दुर्दिनों में निर्धनता के कारण लोगों की स्थिति काफी दयनीय थी। तासकी का कहना था कि संसार में समाजवाद तब प्रसरित होगा यदि रूसियों की आय यूरोप के लोगों से अधिक होगी। यदि यूरोप के लोगों से आय कम हुई तो रूस में भी समाजवाद समाप्त हो जाएगा। स्तालिन मार्क्सवाद के विषय में कुछ कहने लगा- तो समाजवादी बुजुर्ग विद्वान रज़ानोव ज़ोर से चिल्लाया- चुप कर मूर्ख- स्वयं का उपहास मत उड़ाओ। यह तुम्हारे वश की बाते नहीं हैं।

स्तालिन द्वारा तासकी को कत्ल किए जाने की योजना का जीनोवीव और कामीनीव को पता लग गया था। वह भी तासकी के विरोधी तो थे परन्तु उसकी हत्या के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने इस बात को कुछ कामरेडों के समक्ष प्रकट कर दिया। स्तालिन ने इन दोनों की हत्या करवा दी और तासकी को 18 जनवरी 1929 को पार्टी से निकाल कर देशनिकाला दे दिया। देशनिकाला के समय में तासकी को समाचार मिलता रहा कि उसके वहाँ से जाने पर बुखारिन की भी हत्या कर दी गई, धीरे- धीरे लेनिन के उन सभी सहयोगियों का जो इंकलाब में उसके साथ थे कत्ल कर दिया गया। उनको मारने से पहले उनका हस्तलिखित बयान लिया गया और माफी मंगवाई गई।

नवम्बर 1923 में पत्नी नादिया सहित स्तालिन अपने मित्र वोरोशिलोव के घर गया। पोलित ब्यूरो दल की राजनीतिक कमेटी के अन्य सदस्य भी थे। भावी नीतियों की योजना बनाई जाने लगी। नादिया ने कहा- तुम लोगों की नीति के कारण हज़ारों लोग तबाह हो गए और अकाल पड़ने से मर गये। अब सरकारी आतंकवाद से लोग भयभीत हैं। सदाचार कहीं भी नहीं रहा। सरकार, वफादार व्यक्तियों को मार रही है।

स्तालिन, एक अपराधी के समान पहले ही तनावग्रस्त था, नादिया को सबके सामने भद्दी गालियाँ दीं। वह उठी, घर गई और स्तालिन के घर पहुँचने से पहले ही आत्महत्या कर ली। वह एक फैक्टरी मज़दूर की विनम्र बेटी थी और कभी लेनिन की सचिव के रूप में भी कार्य किया था। स्तालिन वहाँ आता-जाता था जिस कारण दोनों में मोहब्बत हो गई। जब स्तालिन संघर्ष कर रहा था, तो वह इंजनीयरिंग कॉलेज में पढ़ने जाती थी।

समस्त वातावरण आतंकित हो गया। विद्वान स्तालिन दर्शन पर पुस्तकें लिखने लगे, सेमिनार होने लगे जहाँ स्तालिन की प्रत्येक नीति और निर्णय को शिरोमणि स्वीकार किया जाता। उस देश में जिसने टॉलस्टाय, दासतोवोसकी, चैखोव, पलैखानोव, लेनिन और तासकी जैसे माननीय चिंतक हमें दिए, स्तालिन के राज्य में नाम लेने वाला एक भी साहित्यकार दिखाई नहीं देता था। गोरकी जो लेनिन को डांट देता था, स्तालिन के साथ भी झगड़ता था, खामोश हो गया। 1936 में उसकी मृत्यु हो गई। सैसेनिन और माइकोवसकी नवीन मौलिक संवेदना के शायर थे। दोनों ने आत्महत्या कर ली। इस विषय में समझदार लोग स्वयं ही खामोश हो गए और मूर्खों को खामोश कर दिया गया। स्तालिन के हाथों असंख्य कत्ल होते देख तासकी ने कहा थायह व्यक्ति नमकीन पानी पीकर प्यास बुझाना चाहता है।

10 फरवरी 1929 को तासकी, उसकी पत्नी और बड़े बेटे को उडेसा की बंदरगाह पर ले जाकर जहाज़ पर चढ़ा दिया गया। यह जहाज़ केवल तासकी के देश निकाला के लिए था। न तो कोई यात्री था और न ही कोई सामान। यदि कोई था तो केवल खुफिया पुलिस।

तुर्की के तट पर उतरते समय खुफिया कमांडो अफ़सर ने उसे 1500 डालर दिए। वह लेना तो नहीं चाहता था परन्तु उसके पास एक पैसा भी नहीं था। सोवियत देश की सरकार से प्राप्त होने वाला यह अंतिम वेतन था... रूस के पितामह का जेब खर्च। कमाल पाशा ने उसे शरण दी। रूस के सरकारी समाचार पत्रों ने उसके विरोध में बदनामी का मोर्चा खोल दिया... कि वह पश्चिम के हाथों बिक गया है... कि पूंजीपतियों ने धन की वर्षा कर दी। एक कार्टून में वह 25 हज़ार की थैली को पकड़ता हुआ दिखाया गया। उसने आत्मकथा लिखनी प्रारम्भ कर दी। उसने लिखा- मेरे साथ न छल हुआ है न धक्का। यदि छल हो जाता मेरे साथ, तो भी क्या था? एक व्यक्ति की सत्ता ही क्या है? मेरे प्यारे देश, रूस के साथ छल हुआ है।

उसने यूरोप के सभी देशों को राजनैतिक शरण देने के लिए पत्र लिखे परन्तु कोई सहमत नहीं हुआ। बरतानवी शहर में शरण देने के लिए ऐच.जी. वैलज़ और बर्नाड शाह ने बहुत प्रयास किए परन्तु असफल। शाअ ने लिखा- लेबर वर्ग और समाजवादी पार्टी की सरकार विश्व प्रसिद्ध इंकलाबी को शरण न दे तो शर्म की बात है। बरतानियों की अपेक्षा तो तुर्क ही अच्छे हैं। तासकी लिखता है- इस ग्लोब पर मेरे लिए कोई वीज़ा नहीं। कब्र के लिए भी नहीं।

चर्चिल ने उसके विषय में लिखा है- काले सागर के किनारे अहंकारी कामरेड, कूड़े का ढेर बना हुआ दिन बिता रहा है। शैतान ने बुराई की खाल पहन

रखी है। इस जंगली मुर्गे के बेशक पंख काट दो या पंजे काट दो, हमारे देश में यह बिल्कुल भी सभ्य नहीं बनेगा।

वह जानता था- संसार उसे मनुष्य नहीं, इंकलाब का ज्वालामुखी समझता है, जहाँ पैर रखेगा, सरकारें बदल जायेंगी। यहाँ तुर्क देशनिकाला के समय उसने काफी साहित्य की रचना की जो यूरोप की सभी भाषाओं में प्रकाशित हुआ। माईकल गोल्ड ने लिखा- संसार के साहित्य में तासकी का वह प्रभाव है जो चित्रकला में लिउनारदो द विंसी का।

रूस के लोग निर्धन होते जा रहे थे। बुखारिन ने कहा- समानता उत्पन्न हो गई है। धनी लोगों को मार दिया गया। निर्धन रह गए हैं केवल। स्तालिन और बुखारिन में फासला बढ़ता जा रहा था। रोटी मांगने वालों को गोली से मार दिया जाता था। स्तालिन अपनी ओर से उत्तम परन्तु मूर्खतापूर्ण कोई भी नयी योजना बताता तो समाजवादी राजनीतिक पार्टी के सदस्य धीरे-धीरे बातें करतेयदि तासकी इस समय यहाँ होता तो वह क्या कहता?

खुफिया कमांडो अफ़सर विदेशी यात्रा से वापस आते समय अपने पुराने मित्र तासकी का कुशल समाचार पूछने के लिए उसके घर गया। सहानुभूति व्यक्त कर वह अपने देश रूस वापस आया तो उसे गोली मार दी गई। खुफिया अफ़सर रबीनोविच ने इस सम्बन्धी अपने कुछ मित्रों के समक्ष खेद प्रकट किया कि सज़ा देने से पहले मुकद्दमा तो चलाया जाए। गोलियों से छलनी रबीनोविच की लाश मिली।

एक मीटिंग की समाप्ति पर औपचारिक बातें करते हुए चर्चल ने स्तालिन से पूछा- जब किसानों से ज़मीन छीनी गई थी, तब क्या हुआ था? स्तालिन ने कहा- विश्व युद्ध तो उसके समक्ष कुछ भी नहीं। ढाई करोड़ व्यक्तियों से जब उनके खेत छीने गए, वह दृश्य दिल दहलाने वाला था।

तासकी के बाद बुखारिन, बड़ा बोलशविक नेता ही बचा था जो लगातार स्तालिन को सही मार्ग पर चलने के लिए कहता रहता। उसका भी कत्ल कर दिया गया। उसके बाद महान शुद्धिकरण (The great Purges) के समय लाखों रूसी मारे गए और लाखों को साइबेरिया की बर्फ में डाला गया जिनका सम्बन्ध कभी तासकी से नहीं था फायरिंग सकूऐड के आगे खड़े होकर- "तासकी ज़िन्दाबाद" का नारा लगाते। स्तालिन की गुलामी करते कामरेड दुःखी होकर कहते- हमसे तो तासकी ही अच्छा रहा। सच्ची बात संसार तक पहुँचा तो रहा है।

1930 में जर्मनी की स्थिति को देखते हुए तासकी ने भविष्यवाणी की, "हिटलर ताकत में आएगा। यहूदियों और कामरेडों के सिरों को धरती पर गिराया

जायेगा। अभी युद्ध प्रारम्भ नहीं हुआ, जर्मन के कामरेडों मैं तुम्हारी पराजय की घोषणा कर रहा हूँ।"

उसकी पुत्री ज़ीना और छोटा बेटा सरगेई जो वैज्ञानिक था, रूस में रहे। ज़ीना के पास एक बेटा और बेटी थी। ज़ीना बीमार रहने लगी तो उसने स्तालिन को पत्रों द्वारा प्रार्थना की कि वह अस्वस्थ है, पिता जी से मिलना चाहती है। पहले तो उसे आज्ञा नहीं मिली परन्तु जब डॉक्टर ने कहा कि वह मानसिक रूप से पीड़ित है और कभी भी उसकी मृत्यु हो सकती है तो स्तालिन ने जाने की आज्ञा देते हुए कहा कि दोनों बच्चों में से एक बच्चा मेरे पास अमानत के रूप में छोड़ कर जाओ। वह अपनी बेटी को छोड़कर सात वर्षीय बेटे के साथ पिता को मिलने चली गई। पिता-पुत्री बहुत समय बाद मिले थे। पुरानी बातें करने लगे। यह वह छोटी सी लड़की थी जिसे साइबेरिया में सोता हुआ छोड़कर चला आया था। वह रूस के विषय में बातें करने लगती तो पिता तासकी खामोश हो जाते। उसने राजनीति से सम्बन्धित कोई भी बात नहीं की ताकि वापस पहुँचकर उसकी बेटी को कोई हानि न हो। वह झगड़ने लगती कि पिता जी बात क्यों नहीं करते। वह फिर से अस्वस्थ रहने लगी। एक दिन कहने लगी- मुझे पता चल गया है पिता जी। बच्चों की किसी को कोई आवश्यकता नहीं होती। बच्चे तो पूर्व जन्मों के पापों की सज़ा भुगतने के लिए स्वयं ही जन्म ले लेते हैं। तासकी ने कहा- बेटी मैं तुम्हें ईलाज के लिए जर्मनी भेजता हूँ। वहाँ मेरे मित्र तुम्हारे ईलाज का खर्च करेंगे। ज़ीना जाने के लिए तैयार नहीं थी। उसे जबरदस्ती जब समुद्री जहाज़ पर चढ़ाया गया तो वह रोते हुए कहने लगी वही घास-फूस मिला। मैं तो अपने पिता जी से मिलने आई थी। कहाँ हैं मेरे पिता जी। यह तो वही पुतला है जिसे मैंने छोटी उम्र में देखा था। घास-फूस।

जर्मनी पहुँच कर कुछ महीने बाद ज़ीना ने आत्महत्या कर ली।

बहुत समय तक उसके आस-पास ज़ीना का ही अस्तित्व छाया रहा। तासकी अकसर बड़बड़ाता- उसकी आँखें मेरी आँखे थीं। मेरी नाक, मेरे होंठ, मेरा ही रंग। मैं उसमें मौजूद था। इसी प्रकार क्या पता उस जैसा पागलपन भी मुझमें हो। आह भरते हुए उसने कहा- संसार की परिभाषा और विज्ञान, प्रेम के आगे कैसे खण्डित हो जाते हैं। ज्ञान बहुत कमज़ोर वस्तु है। भावनाएँ, अकल को घुटनों के बल झुका देती हैं।

स्तालिन ने कहा- हम शीघ्र ही जर्मनी में से नाज़ीवाद को समाप्त कर देंगे। तासकी ने कहा- मज़दूरों को इतनी दूर जाकर लड़ने की क्या आवश्यकता है। मज़दूरों का शत्रु, मज़दूर के समीप, बिल्कुल सामने ही बैठा होता है।

तासकी के पाँच वर्ष बाद 1935 में चर्चल का बयान आया कि यूरोप की सुरक्षा के लिए यदि जर्मनी से युद्ध करना पड़े तो करना चाहिए। तासकी ने कहा- समझ तो इन्हें आएगी परन्तु धीरे-धीरे। चर्चिल को आ गयी है परन्तु स्तालिन को नहीं।

तासकी का बड़ा बेटा लोवा जर्मनी में निर्धनता भरा जीवन व्यतीत कर रहा था। पिता ने सोचा, जब माहौल थोड़ा बदल जाएगा, जर्मनी जायेंगे। वह परिवार सहित जर्मनी पहुँच गया, जर्मनी के लोगों को जब पता चला तो उन्होंने कहा- यह देखो, ज़ार के परिवार का कातिल यहाँ भी आ पहुँचा है। ज़ारिना, बादशाह कैसर की भतीजी, जर्मनी की शहज़ादी थी जिस कारण जर्मनी निवासियों ने तासकी को घृणापूर्वक देखा। कुछ मित्रों की सहायता से उसे फ्रांस में कुछ शर्तो के आधार पर कच्चा वीज़ा मिल गया। शर्ते थी कि वह कभी राजधानी नहीं जायेगा और फ्रांसीसी राजनीति पर कभी टिप्पणी नहीं करेगा।

फ्रांस में उसने रूसी इंकलाब के इतिहास के विषय में लिखा। संसार में कोई विरला व्यक्ति ही होगा जिसने शस्त्रबद्ध युद्ध में विजय प्राप्त की हो और स्वयं ही उसका इतिहास लिखा हो। यह शांतचित्त होकर लिखा गया क्लासिकल इतिहास है। वह सपिनोज़ा के वाक्य का प्रयोग करते हुए कहता है- न रोओ न हँसो। समझने का प्रयास करो। बरतानवी इतिहासकार रोज़े, तासकी के विषय में लिखता है- उसकी शैली कारलाइल की शैली के समान है। कारलाइल में रूहानी रहस्य हैं। तासकी के पास इन रूहानी रहस्यों के बोध के लिए तथ्यबद्ध इतिहासकारी है। चर्चिल ने भी युद्ध वृत्तान्त का इतिहास लिखा परन्तु तासकी ने केवल वृत्तान्त ही नहीं लिखा बल्कि उसने वृत्तान्त इतिहास की परिभाषा सम्बन्धी अनेक रहस्यों को व्यक्त किया है। उसकी रूसी भाषा में यूरोप का समस्त साहित्य बोलता है।

माक्रसी स्कूल ऑफ थॉट के अब तक हुए सब इतिहासकारों से वरिष्ठ विद्वान तासकी है। उसकी विद्वता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि कामरेडों ने उसको रद्द किया। अपनी स्वजीवनी में उसने लेनिन को स्वयं की अपेक्षा विद्वान कहा है। वह कहता है- लोगों का जोश भाप के समान है। भाप कुछ नहीं कर सकती यदि पिस्टन और स्लीव में से उसे न निकाला जाए। परन्तु रेलगाड़ी को पिस्टन और स्लीव नहीं चलाते, भाप चलाती है। लिखता है- मरने से कुछ वर्ष बाद लेनिन मेरे सपने में आकर कहने लगा- तुम कमज़ोर दिखाई देते हो। ईलाज क्यों नहीं करवाते? मैंने कहातुम्हारी मौत के बाद बर्लिन में जाकर ईलाज करवाया था, परन्तु जब देखा, वह तो सामने खड़ा है, फिर मैंने वाक्य बदलते हुए कहा- जब तुम अस्वस्थ थे, तब ईलाज के लिए बर्लिन चला गया था।

लेखन की सहजता देखो- पित्रोग्राद के समीप जब लोगों की भीड़ मेरा भाषण सुनने आई थी, उनके आस-पास ज़ार के सैनिक, घुड़सवार बंदूकों से लैस एक घेरा बनाकर खड़े थे। चुपचाप। उनके घोड़ों की टांगों, गर्दनों से नीचे से निकलते हुए मज़दूर घेरे में मेरी तरफ आ रहे थे। घोड़ों की टांगों के नीचे से सरकता हुआ इंकलाब मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा था। ज़ार के सैनिक मूक दर्शकों के समान खड़े देखते रहे। कुछ दिनों के बाद 5 हज़ार बंदूकें मिल गईं। एक के बाद एक जीत प्राप्त होती गई और हमारे पास मिलटरी की गाड़ियाँ आ गईं। घोड़ों की टांगों के नीचे से निकलने वाले मज़दूर गाड़ियों में सवार हो गए थे।

उसका छोटा बेटा सरगेई रूस में से अचानक लापता हो गया। उसे कहाँ ले जाकर कैसे मारा गया कभी पता नहीं चल सका। तासकी लिखता है- मुझे मारना चाहता था स्तालिन। मैं नहीं मिला तो सरगेई से ही काम चला लिया। उसका क्या दोष था? मुझे किस पाप का दण्ड मिला? मैं तो ज़ार के परिवार को मारने के पक्ष में भी नहीं था।

उसकी आयु 55 वर्ष की हो गई परन्तु वह बहुत बूढ़ा हो गया था। तुर्गनेव के वाक्य को याद करते हुए कहता है- "पता है संसार में सबसे बुरी वस्तु कौन सी है? 55 वर्ष की आयु को पार करना" फिर वह स्वयं से कहता- लेनिन बहुत अच्छा रहा, कम आयु में ही मर गया। क्या रखा है यहाँ?

सरगेई की माँ नतालिया ने संसार के नाम एक खुले पत्र द्वारा अपने पुत्र की मासूमियत का वास्ता देकर उसके लिए देशनिकाला मांगा। उसे न मारने की अपील की। लेकिन सब व्यर्थ। उसके बारे में कभी कुछ पता नहीं चल सका।

नार्वे में लेबर सरकार निर्मित हुई तो तासकी ने वहाँ शरण मांगी क्योंकि फ्रांस में उसकी सांस घुटती थी। यहाँ आकर कुछ आराम मिला। लिखता है- रूस में ज़ार की कैद में अनेक यूरोपीय भाषाओं में छपी बाईबल पढ़ता रहा। इस कारण नहीं कि धर्म में से शांति प्राप्त हो बल्कि इस कारण कि उसे पढ़ते हुए मैंने यूरोप की प्राचीन एवं नवीन भाषाओं को सीखा। यहाँ मेरे सामने नारवेजीयन भाषा में प्रकाशित बाईबल रखी है। अब मैं इसे पढ़कर नारवेजीयन सीख लूंगा।

शीघ्र ही नार्वे में रहते हुए उसे भय ने घेर लिया। रूस ने नार्वे के समक्ष रोष व्यक्त किया कि तासकी वहाँ रहते हुए आतंकवाद से सम्बन्धित गतिविधियाँ चला रहा है इस कारण दोनों देशों के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। नार्वे की पुलिस उसके आस-पास तैनात हो गई और हर प्रकार के राजनीतिक बयान पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। तासकी ने दुःखी मन से कहा- यदि चुपचाप ही बैठना था तो मैं रूस में ही बैठा रहता। मुझे वहाँ किसी को क्या कहना था?

लेबर पार्टी का वज़ीर तरिवली, तासकी का पुराना मित्र था। उसने प्रसन्नतापूर्वक तासकी को राजनैतिक शरण दिलवाई थी। आकर तासकी से कहने लगा- तुम्हारे कारण मेरे विरोध में लोग एकत्रित हो गए हैं। आपको चुप रहना होगा। यदि राजनीतिक लेख छपवाते रहे तो आपको देश छोड़ना होगा या मुझे संसद में से निकाल देंगे। तासकी गुस्से में आ गया और गरजते हुए कहने लगा- तुम निकलोगे तरिवली, यकीनन निकलोगे। केवल सरकार में से ही नहीं देश में से भी। नाज़ीवाद के सामने तुमने घुटने टेक दिए हैं। मेरी तरह तुम भी राजनैतिक शरण मांगते फिरोगे। अकेले तुम नहीं। तुम्हारी सरकार भी। दर-दर भटकोगे।

पीर की भविष्यवाणी सुनकर वज़ीर को पसीना आ गया, वह जाने के लिए उठा और हाथ बढ़ाया। तासकी ने उसके साथ हाथ नहीं मिलाया।

पत्नी सहित तासकी मैक्सिको चला गया। स्तालिन उसके अपराधी होने के झूठे बयानों को समाचार पत्रों में छपवा रहा था। उसने लीग ऑफ नेशनज़ को अपील लिखी- माननीय लीग स्तालिन के राजनैतिक आतंकवाद के विषय में संगोष्ठी करे। नार्वे से भी मैंने यह अपील भेजी थी। कोई उत्तर नहीं मिला। यदि मैं दोषी हुआ तो बेशक मुझे स्तालिन को सौंप देना।

चार वर्ष के बाद तासकी की भविष्यवाणी सच साबित हुई। नाज़ियों ने नार्वे पर आक्रमण कर दिया। सेना भाग गई और घबराए हुए मन्त्री समुद्र के तट पर इंग्लैंड जाने वाले जहाज़ की उत्सुक होकर प्रतीक्षा करने लगे। तरिवली ने तासकी के वाक्य भागे हुए साथियों को सुनाये।

फिर उसने न्यूयार्क में एक पब्लिक मीटिंग के नाम संदेश लिखा- मैं प्रमाणों के साथ निष्पक्ष जाँच कमीशन के सामने प्रस्तुत होऊँगा और रूस में जो कुछ भी हुआ या हो रहा है उसकी हकीकत का संसार को पता चलेगा। मैं घोषणा करता हूँ कि यदि कमीशन मुझे झूठा सिद्ध कर दे तो मैं स्तालिन के फायरिंग सकुऐड के आगे खड़ा हो जाऊँगा। समस्त संसार के आगे मेरा यह ऐलान है। परन्तु यदि सिद्ध हो गया कि स्तालिन खूंखार दरिंदा है तो मैं यह नहीं मांगता कि फायरिंग सकुऐड के आगे उसे खड़ा किया जाए। भावी पीढ़ियाँ उसे धिक्कारेंगी। अनंत समय तक वह कलंकित रहेगा। उसके लिए यही दण्ड बहुत है। मेरे विरूद्ध दोष लगाने वाले क्रैमलिन में बैठे व्यक्तियों के मुख पर मैंने यह ऐलान फेंक दिया है। उनके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

पत्नी नतालिया का कहना है, कभी-कभी वह बहुत उदास होता और कहता- किस लिए जी रहा हूँ मैं? यदि मैं मर जाता तो मेरा प्यारा पुत्र सरगेई तो जीवित होता।

यह घरेलू बातें थीं। जब ऐंजलिका ने पत्र लिखा कि वह मास्को के मुकद्दमों और कत्लों के कारण उदास है तो तासकी ने उत्तर दिया- मनुष्य का उदास होना कुदरती है परन्तु तुम्हारे जैसी स्त्री का उदास होना मैं समझता हूँ गैर कुदरती है। फिर तो तुम हार गई। इतिहास अनेक ढंगों द्वारा व्यक्ति से मिलता है। व्यक्ति को पता होना चाहिए कि उसने उससे कैसे मिलना है। तुम सच्ची हो, यदि तुम्हें लगता है कि इतिहास तुमसे गलत कार्य करवाने के लिए तुम्हारे विरूद्ध हाथ उठा रहा है, तो तुम उसके विरोध में दोनों हाथ उठाओ। सुनी मेरी बात?

लीग ऑफ नेशन्स ने कमीशन बिठा दिया। उस ऐतिहासिक मुकद्दमे का उत्तर देने के लिए उसने इस प्रकार मेहनत की जेसे स्तालिनवाद शताब्दियों तक कायम रहेगा। स्तालिन के विरोध में शताब्दियों तक का उत्तर लिखना जरूरी है। जान डेवी की चेयर अधीन कमीशन ऑफ इंकुआरी कायम कर दी गई जिसने 10 अप्रैल 1937 को कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। डेवी ने रूसी राजदूत और संसार की साम्प्रदायिक पार्टियों से अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए कहा परन्तु कम्यूनिस्टों ने कमीशन को अस्वीकार कर दिया। डेढ महीने तक सारा दिन वाद-विवाद होता रहता। रिकार्ड पेश किया जाता रहा।

जर्मनी में रहते लोवा ने पिता को अनेक विद्वानों एवं लेखकों के हल्फिआ बयान एकत्रित करने के लिए कहा। गरीब और बहुत काम करने वाला लोवा बीमार होते हुए भी बहुत काम करता, फिर भी उसे पिता के क्रोध का सामना करना पड़ता। क्रॉस एगज़ामीनेशन में प्रत्येक प्रश्न का उत्तर तासकी नम्रता से देता। बहाने या अस्पष्टता का कोई प्रश्न ही नहीं था। "बहुत सम्मान मिला, असहनीय दुःखों और हार का सामना करना पड़ा परन्तु मानवता के उज्ज्वल भविष्य में से मेरा विश्वास समाप्त नहीं हुआ। विश्वास की यह ज्योति कम होने की अपेक्षा अधिक प्रौढ एवं दृढ़ हो गई। कमीशन के समक्ष उसके यह वाक्य अंतिम थे। उसने धन्यवाद किया और बैठ गया।

उसके शक्तिशाली तर्कों ने कमीशन को झिंझोड़ कर रख दिया। सभी सदस्य बहुत समय तक खामोश बैठे रहे। जान डेवी औपचारिकता निभाते हुए अंतिम शब्द कहना चाहता था, उसने केवल यह वाक्य कहकर कार्यवाही को समाप्त किया- मेरा कहा हुआ कोई भी वाक्य इस समस्त कथन के सामने तुच्छ होगा। तेरह वर्षों बाद डेवी ने कहा था- मैंने अपने सामने साक्षात सत्य को खड़ा देखा। अंग्रेजी उसके लिए विदेशी भाषा थी, परन्तु प्रत्येक बात पूरी तरह स्पष्ट थी, तर्कों की जैसे बाढ़ आ जाती, कोई साज-सजावट नहीं, कोई कवच तलवार नहीं, पूर्णतः जोश में। अजित अमर सत्य।

यह कहकर कि स्तालिन के विरूद्ध साजिश का पता चला है, चार जरनैलों की हत्या कर दी गई और 25 हज़ार अफ़सर साइबेरिया में भेज दिए गए। द्वितीय विश्व युद्ध से पहले ही सेना अपंग हो गई। यह विस्तृत विनाश आंतोनोव से करवाया गया। परन्तु काम पूरा होने के पश्चात् उसे भी जासूस होने का दोषी करार देकर गोली मार दी गई। जल्लाद भी सुरक्षित नहीं थे। यूरोप में खुफिया पुलिस के चीफ, इगनस रीस को प्रत्येक दुःखदायी घटना का पता था। तंग आकर 18 जुलाई 1937 को उसने अपने त्यागपत्र में लिखा- मैं वह उपाधि, 'आर्डर ऑफ दी रैड्ड बैनर', जो मुझे 1928 में दी गई थी त्यागपत्र सहित वापस भेज रहा हूँ। इसे पहनना मेरी शान के विरूद्ध है। 4 सितम्बर को गोलियों से छलनी उसकी लाश पैरिस की एक सड़क पर मिली।

लोवा को अपेंडेसाइटिस का अटैक हुआ तो ऐटिनी, जो उसका सबसे विश्वसनीय मित्र था उसे फ्रांस के सरकारी अस्पताल में ले जाने की अपेक्षा रूसी डॉक्टर के एक छोटे से अस्पताल में ले गया जहाँ आप्रेशन के बाद उसकी मौत हो गई। बाद में पता चला, ऐटिनी रूस की खुफिया ऐजंसी का सदस्य था जिसने लोवा की अस्पताल में हत्या करवाई। 16 फरवरी 1938, मृत्यु के इस दिन उसकी आयु 38 वर्ष थी।

मरने से कुछ महीने पहले उसने अपनी माँ को सांत्वना देते हुए पत्र लिखा था- उदास न हो मामा। बल्कि धन्यवाद करो कि हम रूस से बाहर हैं। यदि वहाँ होते, क्या बनता? वही जो, सरगेई के साथ हुआ।

तासकी ने लिखा- मेरे समय की सारी पीढ़ी का विनाश कर दिया गया। पहले ज़ार ने कत्ल किए, देशनिकाले हुए, अकाल और बीमारियों के कारण लोग मरे, विश्व युद्ध में तबाह हुए। इन सबसे अधिक हत्याएँ तो अकेले स्तालिन ने कीं। केवल लोवा बचा था जिसने अपने माता-पिता को तब देखा था जब हम जवान थे। वह भी गया। ज़ार की जेल में मुझे रोटी देने आता तो जेलरों के साथ झगड़ा करने लगता था, जब वह अपने साथ लाई पुस्तकें मुझे न देने देते। प्रिय लोवा तुम मुझे यह कार्य क्यों सौंप गए कि मैं तुम्हारी श्रद्धांजलि लिखूं। अब तुम्हारी यादें लिखनी होगी बेटा जान।

कुछ समय बाद पता चला कि सरगेई को बंदी बना उसे प्रताड़ित किया गया, बयान लेने के लिए कि उसका पिता हिटलर का सहयोगी है। उसने अपने पिता की शान के विरूद्ध एक शब्द भी नहीं कहा। चुपचाप, शांतचित्त, योद्धाओं के समान कर्तव्य निभाता हुआ शहीद हो गया।

सारे परिवार में से केवल नाती सेवा ही सुरक्षित था जो ज़ीना का पुत्र था। जिसकी लोवा और उसकी पत्नी जीनी ने अपने पुत्र के समान परवरिश की थी। जीनी के कोई संतान न हुई। वह सेवा के साथ ही प्रसन्न रहती। तासकी ने जीनी को कहा कि हमारा नाती सेवा हमारे पास भेज दो। वह भेजने के लिए तैयार नहीं हुई। बहुत समय बाद तासकी ने अदालत द्वारा अपने नाती को प्राप्त किया।

तासकी के लेखन में यहूदी ईसाई संस्कृति के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यह बताते हुए कि अकेला स्तालिन देशभक्त रह गया और लेनिन-तासकी के सभी पुराने मित्रों को देशद्रोही कहकर मार दिया गया, लिखता है- ईसा के बारह शिष्यों में से केवल एक जूडा ने धोखा दिया था। यदि कहीं अकेला जूडा सत्ता संभाल सकता तो सत्ता संभालते ही वह अन्य ग्यारह को देशद्रोही कहकर फांसी पर लटका देता। लूक वाले 70 को भी वह जीवित न छोड़ता कि कहीं भेद न खुल जाए।

अगस्त 1939 में स्तालिन ने जर्मनी-रूस संधि कर ली जिसके विषय में 1933 में तासकी ने लिखा था कि इसके अतिरिक्त स्तालिन के पास अन्य कोई रास्ता नहीं होगा। समस्त लाल सेना को मार दिया गया है तो हिटलर के साथ समझौता करने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

तासकी लिखता है- फ्रांससी इंकलाब के नायकों ने-समानता, स्वतन्त्रता और खुशहाली का नारा लगाया, परन्तु हुआ क्या? इंकलाब तो आ गया, इंकलाब के बाद उद्योग के साथ पूंजीवाद भी आया। इसी प्रकार हम रूसियों ने भी नारा लगाया था-समाजवाद। इंकलाब के बाद प्रत्येक श्रमिक ताकत में भागीदार होगा। परन्तु हुआ क्या? अफ़सरशाही ने सत्ता को संभाला। मज़दूर जहाँ था, वहीं के वहीं रहे। इंकलाब के साथ धोखा हुआ। उसने पुस्तक का नाम ही 'रैवोलियूशन बिटरेड' रखा है। उदास हो वह कहता है- "मज़दूर बहादुर हैं, लड़ सकते हैं, इंकलाब ला सकते हैं परन्तु वह राज्य करने के योग्य नहीं हैं। यह मार्क्सवाद का सबसे बड़ा दुखांत है। चतुर चालाक अपराधी लोग सत्ता संभाल लेते हैं। लोग अत्याचार सहने के लिए तैयार हो जाते हैं। इतिहास, मज़दूर के विरूद्ध है। मैं मज़दूर के पक्ष में हूँ। यह जानते हुए कि समय बलवान है, मज़दूर को खतरा है, मैं मज़दूर के साथ खड़ा हूँ।"

मैक्सिको में रहते हुए कामरेड शतमन और मकडोनलड उसके प्रशंसक हो गए। एक दिन शतमन ने तासकी से अलग होने की घोषणा की। पत्रकारों ने पूछा तो तासकी ने कहा- ये दोनों मूर्ख हैं। दोनों में इतना अन्तर है कि मकडोनलड आलसी है मुझे बेदावा देने में वह अभी कुछ समय लगाएगा।

लेनिन की तरह बीमार होकर कष्ट झेलकर मरने की अपेक्षा वह आत्महत्या करना उचित समझता था। लिखता है- ऐसा प्रतीत होता है कि अकस्मात ही मेरी

मौत हो जाएगी। सम्भव है दिमाग की नाड़ी के फटने से। यह सरल मौत है। 27 फरवरी 1940 को उसने वसीयत लिखी। 3 मार्च को वह डायरी में लिखता है- मेरी पत्नी ने मेरे साथ रहते हुए कष्ट ही सहे। तो क्या हुआ? कुछ समय उसने मेरी शान भी तो देखी। नताशा ने बड़ी खिड़की खोल दी है जिस कारण ताज़ी हवा और रोशनी दोनों ही आ गईं। हरा सुन्दर घास और ऊपर निर्मल, स्वच्छ आकाश कितने मनोहर हैं। इस निर्मलता में मानव बुराई, गुलामी और हिंसा क्यों भर देता है? सम्पूर्ण आनन्द क्यों नहीं भोगता? यदि मेरी और नताशा दोनों की मृत्यु एक साथ हो गई...।" यहाँ वह वाक्य को अपूर्ण ही छोड़ देता है शायद अपने नाती के विषय में कुछ कहना चाहता हो।

जैसे तासकी को मानवता के सुन्दर भविष्य की पूर्ण आशा थी, उसी प्रकार स्तालिन अपने कामों से भयभीत रहता। तासकी ने रूसी लोगों के नाम संदेश लिखा- तुम्हें धोखा मिला है मित्रो। तुम्हारे समाचार पत्र झूठ बोल रहे हैं। तुम्हारी अफ़सरशाही जो तुम्हारे खून की प्यासी भी है और पत्थर दिल भी, हिटलर जैसे लोगों के सामने मोम की तरह पिघल जाती है। तुमने ज़ार की जंजीरे तोड़ दी हैं। अब स्तालिन के खूनी पंजे को हटाना होगा। स्तालिन तुम्हें बताता है कि किसी स्थान पर तासकी ने रेलवे लाईनों को उड़ा दिया, किसी अन्य स्थान पर तासकी ने कारखानों में हड़ताल करवा दी, तीसरे स्थान पर तासकी ने लाल सेना में बगावत उत्पन्न कर दी, अस्पतालों में डॉक्टरों को और किसानों को तासकी ने भड़का दिया है। यदि रूस मेरे आदेशानुसार चल रहा है तो फिर मैंने देश निर्वासित होकर विदेश में शरण क्यों ली और स्तालिन कैसे शासन कर रहा है?

शुभचिंतको को भय था कि उस पर आक्रमण हो सकता है इसलिए सभी सावधान थे और सुरक्षा कर्मचारी पहरा दे रहे थे। 23 मई को सारा दिन लिखने से थक गया और शाम को 4 बजे पलंग पर लेट गया। गोलियों की आवाज़ सुनी। बारूद के धुएं की गन्ध का अनुभव हुआ। सोचा कि शायद बाहर उसके अंगरक्षक जश्न मना रहे हैं। फायरिंग भीतर आने लगी तो वह छलांग लगाकर फर्श के एक कोने में लेट गया। नताशा उसके ऊपर कवच बनकर लेट गई। लगातार गोलियाँ चलती रहीं। दूसरे कमरे में नाती की चीख सुनाई दी-नाना...।

तासकी लिखता है- नाती की चीख जैसी भयानक चीख मैंने पहले कभी नहीं सुनी। हम दोनों का खून जैसे जम गया। सेवा को मार दिया या ले गए। फिर सेवा के कमरे में धमाका हुआ। एक व्यक्ति ने दोनों कमरों में देखा। कोई दिखाई

नहीं दिया। उसने सोचा- काम पूरा हो गया। देर तक मौत की खामोशी। कहाँ गए सभी? अन्य सदस्य? रक्षक? क्या सभी मारे गए?

कुछ देर बाद सेवा की आवाज़ सुनाई दी-नाना! कहाँ हो?

नानी ने भाग कर उसे गले लगा लिया। पैर पर घाव हो गया था। पलंग के नीचे छिपकर उसने स्वयं को बचाया था। छिपा हुआ सोच रहा था कि नाना-नानी मर गए।

तासकी बाहर आया। शस्त्र रहित सुरक्षा कर्मचारी वृक्षों से बंधे हुए थे। उन्होंने बताया- चार बजे के आसपास पुलिस वर्दी में लगभग 20 शस्त्रबद्ध व्यक्तियों ने हम पर हमला किया और हमारे हथियार हमसे छीन कर हमें यहाँ बांध गए। जाते समय तासकी की दो कारें भी ले गए। इन कारों को किले जैसे घर में खतरे के समय कहीं जाने के लिए रखा जाता था। दोनों की चाबियाँ भी कारों में ही थीं।

आधे घंटे के बाद मैक्सिको पुलिस का चीफ आया, स्थिति का निरीक्षण किया। तासकी से पूछा- किसी पर शक? तासकी ने कहा- स्तालिन। और कौन?

पुलिस चीफ को संदेह हुआ शायद तासकी ने स्वयं यह साजिश रची है। इतनी भयंकर फायरिंग में सभी सुरक्षित हैं- यह कैसे हो सकता है। इस दुर्घटना के बाद तासकी शांत है। मामला संदेहात्मक है। गोलियों के 72 निशान चीफ ने खुद गिने थे। उसके घर के आस-पास सुरक्षा और बढ़ा दी गई और दीवारें भी ऊँची उठा दी गईं। ऐसा होता देख मुस्कराते हुए तासकी ने कहा- सभ्यता का निर्माण हो रहा है। मानव उन्नति कर रहा है।

जैकसन नामक एक व्यक्ति कभी कभी उससे मिलने आता, प्रश्न करता और अपने लेखन में सुधार करने के लिए कहता। तासकी अपने खरगोशों को घास खिला रहा था कि पत्नी ने कहा- जैकसन आया है। वह उठा और मेहमान के पास चला गया। कहा- तुम आज स्वस्थ नहीं लग रहे। रंग पीला हो गया है। कोई दवा ले लो। नताशा बताती है- दोनों को कमरे में बिठाकर मैं अपने कमरे में चली गई। तासकी कुर्सी पर बैठा, मेज़ पर रखा उसका लेख पढ़ने लगा। अभी पहले पृष्ठ को पढ़ने के लिए झुका ही था कि सिर पर जबरदस्त प्रहार हुआ। जैकसन ने पूरी ताकत से बर्फ तोड़ने वाली कुल्हाड़ी से उसके सिर पर प्रहार किया।

तासकी जोर से चिल्लाया और खड़ा हो गया। मेज़ पर जो कुछ भी रखा था, किताबें, पेपर-वेट, दवात, टैलीफोन आदि उठा-उठा कर कातिल को मारने लगा। फिर वह कातिल पर झपटा और उसे पकड़ लिया, उसके हाथ को दांतों से काटा और उससे कुल्हाड़ी छीन ली। कातिल घबरा गया और उसने दूसरा प्रहार न किया, न चाकू मारा न रिवाल्वर से गोली चलाई। जब तासकी को लगा कि वह गिरने वाला है, तो

वह कई कदम पीछे हो गया। शत्रु के कदमों में नहीं गिरना चाहता था। घायल चीते के समान लड़ा। इतनी देर में नताशा और रक्षक अन्दर आ गए। उसे बंदूकों के बट्टों से मारने लगे। कातिल चीखने लगा तो तासकी ने कहा- मारो न। मारो न इसे। इससे पूछ-ताछ करो।

नताशा बताती है- खोपड़ी फट गई थी। बहुत गहरा घाव था। क्या हुआ? क्या हुआ तासकी? उसने गले में बाहें डाल दी। तासकी ने कहा- "पहले तो मुझे लगा कि छत से कोई वस्तु मेरे सिर पर गिर गई है। जब पता चला तब तो मैंने कातिल को पकड़ा।"

अपने सेक्रेटरी को कहा- जैकसन ने। उसने किया। जो होना था हो गया। कुछ कदम और पीछे हो गया, फिर फर्श पर लेट गया- "मैं तुम्हें प्यार करता हूँ नताशा।" यह शब्द बिल्कुल स्पष्ट थे। नताशा ने सिर के नीचे तकिया रख दिया घाव पर बर्फ।

"सेवा को बचा के रखना। दूसरा प्रहार करने को तैयार था जैकसन। मैंने करने नहीं दिया।"

अपने सचिव हनसन को कहा- काम खत्म। हनसन ने कहा- कोई बात नहीं। ठीक हो। तासकी ने कहा- न। इस बार वह जीत गए। बार-बार नताशा के हाथ अपने होंठो पर रखता। अंग्रेजी में सचिव से कहा- नताशा का ख्याल रखना। बहुत दुःख सहे हैं इसने। नताशा जोर जोर से रोने लगी। बार-बार उसका घाव चूमा।

कातिल ने अंगरक्षकों से कहा- इतनी जोर से कुल्हाड़ी मारी थी कि मुझे विश्वास नहीं होता कि एक शब्द भी वह बोल सकेगा। मुझे क्या पता था कि वह खड़ा होकर मुझे पकड़ लेगा। मेरी माँ को उन्होंने बंदी बना रखा है। मेरी माँ उनके पास है। मुझसे यह करवाया गया है।

डॉक्टर के आने तक बायीं तरफ का भाग सुन्न हो गया था। अस्पताल ले जाने लगे तो नताशा की आँखों के आगे उसका पुत्र नोवा आ गया। वह रोने लगी- इन्हें अस्पताल नहीं जाने देना मैंने। अस्पताल में डॉक्टर मार देंगे। तासकी ने धीरे से कहा- न लेकर जाओ मुझे वहाँ। हनसन ने कहा- मैं लेकर जाऊँगा। अपने अंगरक्षक साथ लेकर जाऊँगा। मेरी बात मानो। रोको मत। नताशा ने कहा- ठीक है। तुम्हारी इच्छा। मेरी इच्छा के दिन तो कब के बीत चुके हैं।

स्टैचर पर पड़े उसने कहा- मेरा सब कुछ नताशा है हनसन। इसका ख्याल रखना। जब ले जाने लगे तो रक्षक ने कहा- अभी नहीं। और सेना लेकर आओ। यदि रास्ते में फिर से हमला हो गया? तुरंत पुलिस चीफ और सेना लेकर आ गया। चीफ बताता है- सम्माननीय बीबी जी ने सफेद रूमाल से पति के घाव को ढका

हुआ था। खून बह रहे सिर को दोनों हाथों से पकड़ा हुआ था। केवल सिसकियाँ। कातिल के लिए अलग से ऐम्बुलैंस आई।

आगे आगे रास्ता खाली करने के लिए पुलिस के मोटर साईकलों का काफिला, पीछे तेज़ी से सायरन की आवाज़ करती हुई ऐम्बुलैंस आ रही थी। सांस अभी चल रही थी। नीचे झुक कर नताशा ने पूछा- कैसे हो? उसने कहा- कुछ ठीक हूँ। हाथ के संकेत से सचिव को पास बुलाया- राजनीतिक कत्ल है यह। रूस की खुफिया कमांडो सेना का सदस्य। नाज़ी भी हो सकता है- गैसटापो। दोनों ने मिलकर भी यह वारदात करवाई हो, सम्भव है। अधिक संदेह तो रूसियों पर है। दूसरी तरफ कातिल पुलिस को महत्त्वपूर्ण जानकारी दे रहा था। इस कत्ल में नाज़ियों का कोई हाथ नहीं।

अस्पताल के आस-पास भीड़ एकत्र होने लगी। नताशा ने कहा- इस भीड़ में हमारे शत्रु भी होंगे। हमारे मित्र कहाँ चले गए? अस्पताल की नर्स आप्रेशन से पहले बाल काटने आई। तासकी ने कहा- कल तुमने कहा था नताशा, बाल कटवा दो, लो कट गए। फिर सचिव को कहा- मेरे अंतिम वाक्य लिखो। हनसन को रूसी भाषा नहीं आती थी। अंग्रेजी में लिखाया- राजनैतिक कातिल ने मुझे मृत्यु के दर पर पहुँचा दिया है। मेरे कमरे में आकर मारा। मैंने हाथापाई की।.... हम कमरे में गए .... उसने फ्रांसीसी आँकड़े बताने शुरू किए... फिर प्रहार किया....मित्रों को बताना हमारी विजय अवश्य होगी। चौथी इंटरनैशनल बुला लो।

आप्रेशन करने के लिए नर्स कपड़े उतारने लगी तो अंतिम वस्त्र उतारते समय उसने सहजता से कहा- नर्स हाथ न लगाए। नताशा तुम मेरा ये वस्त्र उतारो। नर्सें पीछे हो गई। नताशा ने उसके होठों को चूमा। उसने भी ऐसा ही किया। इसके बाद वह बेहोश हो गया। डॉक्टर खोपड़ी का आप्रेशन करने लगे। तीन इंच गहरा घाव था। खोपड़ी की हड्डियाँ टूटकर दिमाग में धंस गई थीं। बाईस घंटे वह मौत से संघर्ष करता रहा परन्तु होश नहीं आया। नताशा दिन रात हाथों पर हाथ रखे उसकी तरफ इस आशा से देखती रही कि आँखें खोलेगा। अंतिम पल के बारे में बताती है, जब डॉक्टरों ने उसे उठाया तो उसका सिर कंधे पर झुक गया। भुजाएँ इस प्रकार लटक गईं जैसे क्रास पर ईसा मसीह की लाश लटक रही हो। कांटों के ताज़ की जगह सिर पर सफेद पट्टी बंधी हुई थी। चेहरा शांत, पवित्र और स्वाभिमान की रोशनी से भरपूर। प्रतीत हो रहा था जैसे स्वयं को खुद संभाल लेगा।

21 अगस्त 1940 को शाम साढे सात बजे उसका देहांत हो गया। डॉक्टरों ने लिखा, उसका दिमाग असाधारण रूप से बड़ा था, वज़न दो पौंड तेरह औंस। दिल सामान्य व्यक्तियों से बड़ा।

सरकारी रूसी समाचार पत्र परावदा ने एक छोटी सी ख़बर छापी- उसके पागल शिष्य द्वारा तासकी का कत्ल।

अर्थी के पीछे हज़ारों लोगों का काफिला साथ जा रहा था। शहर में से, धनी लोगों के महलों की ओर से निकलता हुआ मज़दूरों की बस्तियों में से निकला। सड़क के दोनों तरफ नंगे पांव फटे वस्त्र पहने असंख्य मज़दूरों ने उसे सलाम किया- शेर तासकी अमर रहे। हमारा तासकी जिंदाबाद! तुरंत ही, किसी ने एक गीत बनाकर गुनगुनाया। गीत को बार बार गाया गया। दर्शनों के लिए उसकी अर्थी को पांच दिन रखा गया। तीन लाख स्त्री-पुरुषों ने उसके अंतिम दर्शन किए। घर के आंगन में कब्र पर सफेद आयताकार संगमरमर रख कर उस पर लाल झण्डा लहरा दिया गया।

नतालिया उसके बाद बीस वर्ष तक जीवित रही। जब सुबह उठती, तो उसकी आँखें आंगन में रखे सफेद पत्थर को पहले देखती।

इसहाक लिखता है- उसका जीवन कोई परी कथा नहीं। हमारी आँखों के सामने घटित हुई यह वास्तविक घटना है जो मिथक से आगे निकल गई।

हिटलर ने एक मीटिंग के समय फ्रांस के राजदूत राबर्ट कोलांदरे से कहा- मेरे सभी रास्ते साफ हो गए हैं। अब मेरे सामने संसार टिक नहीं सकता। मैं विजयी होऊँगा। राजदूत ने कहा- यदि युद्ध लटक गया, मज़दूरों किसानों की दशा और भी दयनीय हो गई तो एक संभावना और हो सकती है- वह है तासकी। कभी सोचा है तासकी विजेता हो सकता है? यह वाक्य सुनकर हिटलर ऐसे उछला जैसे बिच्छू ने काट लिया हो कहाशायद। हो सकता है। यह हो सकता है।

तासकी की लाभहानि के बारे में मुझे टिप्पणी नहीं करनी चाहिए। जान डेवी ने ठीक ही कहा था- तासकी की बात सुनने के बाद कोई भी वाक्य कहना ऐंटी क्लाईमैक्स है।

अंतिका-2

दिलचस्प घटनाएँ घटती रहती हैं। 7 सितम्बर 2009 को किसी अपरिचित का फोन आया- "जी मैं चक्क फतह सिंह वाला ज़िला भठिण्डा से हूँ। आप मुझे नहीं जानते, मेरा नाम बूटा सिंह है। आपकी पुस्तक में से बाबा बन्दा सिंह के जीवन पर लिखा लेख पढ़ा। इसमें आपने एक महापुरुष फतह सिंघ का वर्णन किया है जिसे बाबा बन्दा सिंह ने समाना का हाकिम नियुक्त किया गया था। यह भाई फतह सिंह जी मेरे बाबा जी हैं... हमारे पूर्वज।" मैंने धन्यवाद करते हुए कहा कि इनके विषय में अगर और जानकारी आपके पास हो तो कृपया मुझे दे देना, जिसे मैं पाठकों के सामने प्रस्तुत कर सकूं।" उसने कहा- जब पटियाला आऊँगा तब बताऊँगा।

वह 14 अक्तूबर 2009 को पटियाला आए। बूटा सिंह पुत्र सरदार धीरा सिंह पचास वर्ष की आयु के कम्यूनिस्ट थे। जो जानकारी उन्होंने दी उसके अनुसार भाई भगतु जी गुरू वाणी के पाठक एवं धर्मी सेवक थे। उनके घर में जिउनदास नामक पुत्र ने जन्म लिया। जिउन दास के दो पुत्र संत दास और गउरा जी हुए। गउरा जी ने भुच्चो नामक गाँव की नींव रखी। वहाँ रहने वाले सभी सिद्धुओं को भाई कहकर बुलाया जाता था। संत दास जी के घर में हमारी रचना के नायक भाई फतह सिंह ने जन्म लिया। फतह सिंह के तीन भाई, राम सिंह, बखतू और तखतू थे। चारों भाइयों में से राम सिंह सबसे बड़े थे। इन चारों के नाम से चार चक्कों (गाँवों) की स्थापना हुई।

भाई फतह सिंह दसम पातशाह हजूर के दर्शन करने के लिए तलवंडी साबो गए और अपने गाँव आने के लिए प्रार्थना की। गुरू जी ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। वापस आकर अपने बड़े भाई को यह शुभ समाचार सुनाया तो वह चिंतित हो कहने लगे- यह तुमने क्या कर दिया? हम बिठायेंगे कहाँ महाराज को? कहाँ वे, और कहाँ हम। देखो कितनी गर्म और आँधी भरी हवाएं चल रही हैं। भाई फतह सिंह ने भी अनुभव किया कि इतनी महान शख्सीयत का सम्मान करने का सामर्थ्य हममें नहीं है- गाँव के किसी व्यक्ति में नहीं। वह गुरू जी के पास वापस गए, माथा टेका और कहा- सच्चे पातशाह कृपालु होने के कारण हमारी प्रार्थना को आपने स्वीकार कर लिया परन्तु आपके आसन के लिए कोई उचित स्थान हमारे पास नहीं है। गर्मी समाप्त होने के बाद वर्षा के दिनों में अपने चरणों से हमारे गाँव को पवित्र करें तो हमारा सौभाग्य होगा। यह सुनकर महाराज ने कहा- अब तो वचन हो गया। निश्चित दिन अठारह जेठ को पहुँचेंगे। सात दिन रहेंगे। सब कुछ सही होगा, चिंता मत करो।

तलवंडी साबो में भाई डल्ला सिंह की हवेली सबसे सुन्दर थी। यहाँ इस गाँव में रहने वाले लोगों का रहन-सहन साधारण था। दसम पातशाह किसी हवेली में ठहरने की अपेक्षा बाहर खुले स्थान में तम्बू लगाकर रहना पसंद करते थे। गुरू जी के महल भाई डल्ला सिंह की हवेली में ठहरे हुए थे और स्वयं महाराज भाई डल्ला सिंह के साथ बाहर लगे तम्बू में रह रहे थे। चक्क फतह सिंह वाला के निवासियों ने गाँव के बाहर छप्पड़ के किनारे एक भाग की सफाई कर वहाँ तम्बू लगा दिए। आस-पास के स्थान को भी पूरी तरह से साफ किया गया। घड़े द्वारा दूर-दूर तक पानी का छिड़काव किया गया। जिसके घर में कोई भी कीमती वस्त्र था, वह ले आया। गुरू जी के विराजमान होने के लिए सुन्दर आसन तैयार किया गया। संगत के बैठने के लिए, दरियाँ, चादरें और फुलकारियाँ बिछा दी गईं।

निश्चित दिन महाराज पहुँच गए। उनके कदम रखते समय पानी के छिड़काव किए मैदान में से हवा का ठण्डा झोंका आया तो भाई फतह सिंह को मुस्काते हुए कहा- आप तो कहते थे गर्मी बहुत है मुश्किल होगी। यह गाँव तो पाऊँटा साहिब बना हुआ है। उसी दिन से इस ऐतिहासिक स्थान को पाऊँटा साहिब के नाम से जाना जाता है। पच्चीस जेठ को महाराज वापिस चले गए। मेज़बान परिवार ने माता सुन्दरी जी के वस्त्र, जूतों एवं आसन को संभाल कर रखा हुआ है। गुरू जी शमीर के रास्ते इस चक्क में आए और वापसी में भुच्चो, भागू, किला भठिण्डा और शमीर से होते हुए तलवंडी पहुँचे।

यह परिवार तलवंडी में गुरु जी के दर्शनार्थ जाता रहता था। जब महाराज दक्षिण की ओर प्रस्थान करने लगे, तो उन्होंने भाई राम सिंह को साथ चलने के लिए कहा। राम सिंह ने कुछ झिझक दिखाई। कारण पूछने पर बताया- मेरी घोड़ियाँ प्रसूत अवस्था में हैं महाराज, मुझे क्षमा कर दो। गुरु जी मुस्कराते हुए कहा- इतना प्रेम तो घोड़ियाँ अपने बछेड़ों बछेड़ियों से भी नहीं करती जितना आप उनसे करते हो। इतना मोह किस अर्थ में? चलो जैसी वाहेगुरू की इच्छा। वह चले गए। भाई राम सिंह वापस घर आ गए। घोड़ियाँ का प्रसव तो हुआ परन्तु उन्होंने बछड़े/बछड़ियों पहचाना नहीं। तब से ऐसा होता आ रहा है। गाँव निवासी कई बार घोड़ियाँ लेकर आए परन्तु इस गाँव की घोड़ी अपनी संतान को पहचानती नहीं।

बाबा बन्दा सिंह नांदेड़ से पंजाब की तरफ गए तो मालवा की संगत के नाम हुक्मनामें भेजते रहे कि हमारी सेना में भर्ती हो जाओ। भाई फतह सिंह ने अपने साथ दस योद्धा लेकर कैथल गाँव में बाबा बन्दा सिंह का साथ दिया। यह ग्यारह व्यक्ति खालसा सेना के उन योद्धाओं में से थे जिन्होंने पहले कैथल पर हमला किया पुनः समाना शहर पर विजय प्राप्त की। बाबा बन्दा सिंह ने भाई फतह सिंघ का हैरान कर देने वाला युद्ध कौशल देखकर उन्हें समाना का हाकिम नियुक्त किया।

दायें-बायें युद्ध होते रहे, अंतिम ठिकाना बनूड़ था जहाँ पता चल गया कि मालवा के काफिले में शामिल होने के लिए मझैलों की सेना आ रही है। मलेरकोटला के नवाब मोहम्मद शेरखान द्वारा मझैलों को रोके जाने पर खूनी युद्ध हुआ जिसमें नवाब का भाई और भतीजा दोनों मारे गए और वह पीछे हट गया। इन योद्धाओं का समूह बनूड़ पहुँचा तो जैकारों की ध्वनि से आकाश गूंज उठा।

चपड़चिड़ी के स्थान पर जब बाबा बन्दा सिंह और वज़ीरखान का आमने सामने युद्ध हुआ तो इस युद्ध में, शेर फतह सिंह ने रकाबों पर खड़े होकर दोनों हाथों से तलवार का इतना ज़बरदस्त प्रहार किया कि वज़ीर खान के दायें कंधे में धंसती हुई तलवार छाती के बायीं ओर से निकल गई। खान के शरीर के दोनों टुकड़े घोड़े दायीं और बायीं ओर गिर गए। यह महान चमत्कार 12 मई 1710 को घटित हुआ। मलेरिया नवाब शेर खान भी बहादुरी से युद्ध करता हुआ इस युद्ध में मारा गया। बाज सिंह को सरहिन्द का हाकिम नियुक्त किया गया। भाई फतह सिंह को पंथ ने मालवा के शेर की उपाधि से सुशोभित किया।

भाई फतह सिंघ के पाँच पुत्र- दान सिंघ, सिद्ध सिंघ, संगू सिंघ, कौर सिंघ और हिम्मत सिंघ हुए। बीबी सुरिन्द्र कौर बादल, भाई हिम्मत सिंह के वंश में से

है। पटियाला के महाराजा साहिब सिंघ ने नानकशाही ईंटों से शानदार गुरूद्वारा पाऊँटा साहिब का इस चक्क फतह सिंघ में निर्माण किया।

अंत में बूटा सिंह ने बताया- इस ऐतिहासिक गुरुद्वारे की कार सेवा के लिए दिल्ली से बाबा हरबंस सिंह जी आए। हमने बहुत हाथ जोड़े कि इस गुरुद्वारे को मत गिराओ, वह नहीं माने। सुन्दर चूने से बनी इमारत गिरा दी गई। वे उस बेरी के वृक्ष को काटने लगे जिस पर गुरु जी ने अपना घोड़ा बांधा था, तो हम सभी वृक्ष के आस-पास लिपट गए। कहा- पहले हमें काटो। एक तो अनपढ़ लोगों का गाँव, दूसरे हम दाढ़ी-मूछ मुंडवाए हुए कामरेड। कार सेवा वालों को गाँव के लोगों ने कहा- ये कामरेड हरेक अच्छे काम में बाधा डालते हैं। इन्हें यहाँ से हटाओ। गाँव और कार सेवा वाले लोग हमें खींच कर घसीटते हुए बाहर लाए और उस बेरी को काट दिया।

वह वट वृक्ष अभी भी वहीं हैं जिसके नीचे दीवान सजाया गया। उसे काटने के समय तक हम अपने गाँव वालों को समझाने तथा मनाने में सफल हो गए थे। यह भी धमकी दी कि यदि इस वृक्ष की तरफ कोई कुल्हाड़ी लेकर बढ़ा तो उसे छोड़ेंगे नहीं। लोगों का निर्णय काटने का था, परन्तु बचा लिया गया। चक्क फतह सिंह वाला गाँव संगमरमर से निर्मित इमारत को देखकर दुःखी होता रहता है। परन्तु यह तब तक है जब तक वे व्यक्ति जीवित रहेंगे जिन्होंने प्राचीन ऐतिहासिक इमारत को देखा था। भुच्चो गाँव ने अपनी बेरियाँ अभी तक संभाल कर रखी हुई हैं।”